

॥ श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति ॥

## तीन वाञ्छा

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण का श्रीराधा की भावकान्ति अंगीकार कर श्रीमन्महाप्रभु रूप में अवतीर्ण होने का मुख्य हेतु है- “तीन वाञ्छा ।” ब्रजलीला की समस्त सखियों में प्रधान श्रीललितासखी ही गौरलीला में श्रीमन्महाप्रभु के अभिन्न स्वरूप श्रीस्वरूप दामोदर के रूप में प्रकट होकर श्रीकृष्ण की उन्हीं तीन वाञ्छाओं का परिचय प्रदान करती हैं।

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-

स्वाद्यो येनाद्भुतन्मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः ।

सौख्यं चास्या मदनुभवतःकीदृशं वेतिलोभा-

उद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिद्धौ हरीन्दुः ॥ 1 ॥

“श्रीमती राधा के प्रेम की किस प्रकार की महिमा है, उनके द्वारा अद्भुत प्रेम आस्वादित मेरा माधुर्य कैसा है, मुझे अनुभव कर श्रीमती राधा जो सुख प्राप्त करती हैं वह सुख कैसा है”- इन्हीं तीन विषयों के आस्वादन लोभ के कारण श्रीमती राधा के भाव से समृद्ध होकर श्रीकृष्णचन्द्र शचीगर्भ सिन्धु से गौररूप में आविर्भूत हुए। श्रीकृष्ण ब्रज में अवतरित होकर सभी ब्रजप्रेमिका गणों के ऐश्वर्य ज्ञान गंध शून्य विशुद्ध प्रेम माधुरी का आस्वादन करते हैं, परन्तु उसमें एकमात्र श्रीमती राधारानी के प्रेम के प्रति ही कृष्ण का लोभ और उसी लोभ के वशीभूत होकर श्रीमती राधा की भाव-कान्ति अंगीकार कर अवतरित होने का क्या कारण है? इस प्रकार का प्रश्न हो सकता है। इस विषय में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद कहते हैं-

पूर्वे ब्रज श्रीकृष्णोर त्रिविध वयोधर्म ।

कौमार पौगण्ड आर कैशोर अति मर्म ॥

वात्सल्य-आवेशे कैल कौमार सफल ।

पौगण्ड सफल कैल लैया सखा बल ॥

राधिकादि लजा कैल रासादिविलास ।

वाञ्छा भरि आस्वादिल रसेरनिर्यास ॥

कैशोरवयस, काम, जगत् सकल ।

रासादि लीलाय तिन करिल सकल ॥ 2 ॥

(चै.च.)

नित्य किशोर श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था एवं पौगण्ड अवस्था को अंगीकार किया। बाल्यावस्था के आवेश में श्रीनन्द-यशोमती आदि गुरुजनों के वात्सल्य रस का आस्वादन एवं पौगण्ड अवस्था के आवेश में श्रीदाम सुबल आदि सखाओं के सख्य रस का आस्वादन किया। किशोरावस्था में श्रीराधा आदि ब्रजसुन्दरियों के संग अति रहस्यमय रासादि विलास द्वारा शृंगाररस का आस्वादन किया। समस्त गोपिकाओं में श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ही परमश्रेष्ठ हैं, कृष्ण को शृंगार रसमाधुरी का आस्वादन कराने के निमित्त अन्य समस्त गोपिकाएँ केवल उपकरण या सहायक मात्र हैं। कारण, बहु कान्ताओं की उपस्थिति के बिना रासादि लीलारस का आस्वादन कभी सम्भव नहीं होता। इसलिए कहा गया है- “राधिकादि लैया कैलो रासादि विलास” (चै.च.) अर्थात् समस्त गोपिकाओं में ‘आदि’ अथवा श्रेष्ठ श्रीमती राधारानी एवं तीन कोटि गोपिकाओं के संग शृंगार रस लीलाओं में “आदि” अथवा श्रेष्ठ जो रासलीला है- श्रीकृष्ण ने उसी रासलीला का आस्वादन किया। परम महान प्रेमवती श्रीमती राधारानी के मादनाख्य महाभाव का आस्वादन लाभकर श्रीकृष्ण के चित्त में “तीन-वाञ्छ” का उद्गम हुआ।

एइमत पूर्वे कृष्ण रसेर सदन।  
यद्यपि करिल रस-निर्यास चर्वन॥  
तथापि नहिल तिन वाञ्छित पूरण।  
ताहा आस्वादिते यदि करिलो यतन॥३॥

(चै०च०)

श्रीकृष्ण ने चित्त में समुदित तीन वाञ्छाओं के आस्वादन का प्रयत्न किया था कारण श्रीकृष्ण के चित्त में इन तीन वाञ्छाओं की पूर्ति के प्रति लोभ जगा था। लोभ का स्वभाव ही है लोभनीय वस्तु के आस्वादन के लिए लुब्ध व्यक्ति को चंचल-उत्तेजित कर देना। इसी कारण श्रीकृष्ण ने ब्रजलीला में ही तीन वाञ्छाओं के आस्वादन के निमित्त भरपूर प्रयत्न किया परन्तु ब्रज में श्रीकृष्ण (की यह चेष्टाएं सफल नहीं हुईं)। असफलता पर मनन किया तो समझ पाए—

रस आस्वादिते आमि कैल अवतार।  
प्रेमरसआस्वादिलो विविध प्रकार॥  
रागमार्गे भक्त भक्ति करे ये प्रकारे।  
ताहा सिखाइलो लीला आचरणद्वारे॥

एइ तिन तृष्णा मोर नहिलो पूरण।  
 विजातीर भावे नहे तार आस्वादन॥  
 राधिकार भाव कान्ति अङ्गीकार विने।  
 सेइ तिन सुख कभु नहे आस्वादने॥४॥

(चै.च.)

ब्रजवासीगण के विशुद्ध माधुर्यमय प्रेमरस आस्वादन के निमित्त श्रीकृष्ण ने ब्रज में स्वयं रूप से अवतरित हो कर माता-पिता एवं वात्सल्य रस के आधार गोप-गोपीगण का प्रेमरस बालोचित चांचल्य प्रकाश कर, उनकी ताड़ना भर्त्सना-बंधन आदि ग्रहण कर विविध प्रकार से आस्वादन किया। उसी प्रकार संकोचहीन गौरव बुद्धिहीन सखागण के कांधे चढ़कर, उन्हें अपने कांधे पर चढ़ा कर, सखाओं के उच्छिष्ट ग्रहण आदि सख्य रसमय लीलाओं द्वारा श्रीदाम सुबल आदि सखागणों के सख्य प्रेमरस का आस्वादन किया। किशोरावस्था में धीर ललित आदि नायक गुण प्रकाश कर ब्रजसुन्दरियों के मान कलहान्तरिता, स्वाधीन भर्तृकादि विविध दशाओं में उनका तिरस्कार ग्रहण कर चरण-कमलों में पतन आदि लीलाओं द्वारा एकान्त वश्यता स्वीकार कर उनके अद्भुत माधुर्यमय मधुर प्रीतिरस का आस्वादन किया।

श्रीकृष्ण की इन सब माधुर्यमयी लीलाओं का श्रवण कीर्तन कर, ब्रजवासी जन के भाव पर लुब्ध राग-मार्गीय साधकगण देह से श्रवण-कीर्तन आदि नवधाभक्ति का याजन करते हैं एवं मन से ब्रज-जन के आनुगत्य में सेवोपयोगी देह से दिवा-निशी सेवा चिन्तन द्वारा लोभ मूला रागमार्ग की साधना करते हैं। ब्रजवासी जन की एकान्त वश्यतामयी लीला प्रकाश द्वारा श्रीकृष्ण विश्व साधकगण को यह शिक्षा प्रदान करते हैं। यह समस्त चेष्टाएं श्रीकृष्णप्रेम के विषय तत्त्व के रूप में करते हैं। ऐसा करने पर उनकी—“तीन वाञ्छाएँ”— श्रीमती राधा की प्रणय महिमा कैसी है, श्रीमती राधा द्वारा आस्वादित श्रीकृष्ण का अद्भुत माधुर्य कैसा है एवं श्रीकृष्ण के अनुभव से श्रीराधा जो सुख प्राप्त करती हैं वह सुख कैसा है— अपूर्ण ही रहीं। कारण यह तीनों विषय आश्रय जातीय प्रेम द्वारा आस्वादनीय हैं, विषय जातीय या विजातीय भाव से यह आस्वादन कभी सम्भव नहीं। तब तीन वाञ्छाओं के आस्वादन पर प्रलुब्ध श्रीकृष्ण समझ पाए कि श्रीराधा के भाव-कान्ति को अंगीकार किए बिना अन्य किसी उपाय द्वारा इन तीन वाञ्छाओं का आस्वादन सम्भव नहीं।

अखण्ड अद्वय ज्ञान तत्त्व षड् ऐश्वर्यशाली स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भरपूर चेष्टा करने पर भी इन तीन वाञ्छाओं के आस्वादन में समर्थ नहीं हुए, यह तत्त्व इन तीन विषयों का गुरुत्व दर्शाता है। हम श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद की मधुर लेखनी द्वारा एवं श्रीकृष्ण की उक्ति द्वारा इसी गुरुत्व की आलोचना करेंगे।

ताहार प्रथम वाञ्छा करिये व्याख्यान।  
 कृष्ण कहे आमि हई रसेर निधान॥  
 पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्णतत्व।  
 राधिकारप्रेमे आमा कराय उन्मत्त॥  
 ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल।  
 ये बले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥  
 राधिकार प्रेमगुरु आमि शिष्य नट।  
 सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट॥5॥

(चै.च.)

तीन वाञ्छाओं के गुरुत्व आलोचना के प्रसंग में सर्वप्रथम प्रथम वाञ्छा अर्थात् “श्रीराधा की प्रेम-महिमा” का गुरुत्व निरूपण करेंगे। श्रीराधा की प्रेम महिमा स्थापन करने से पूर्व श्रीकृष्ण निज महिमा को गुरुत्व की बात कहते हैं। श्रीकृष्ण ही निखिल रसों के परम आश्रय हैं, यह कथन “रसो वै सः”, “रसानाम रसतम” इत्यादि श्रुति वाक्यों द्वारा पूर्णतः स्थापित होता है। अर्थात् शान्त, दास्य, साख्य, वात्सल्य और मधुर नामक पाँच प्रकार के मुख्य रसों के एवं हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स, भय इन सात प्रकार के गोप रसों के परम आश्रय कृष्ण हैं।

श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने भक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ के मंगलाचरण श्लोक में श्रीकृष्ण को “अखिल-रसामृतसिन्धु” कहा है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद श्रीमद्भागवतं के मल्लानामशनिनृनाम् नरवरः” इत्यादि श्लोक श्रीकृष्ण के अखिल रसामृत मूर्ति होने के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मथुरा में कंस के रंगालय में श्रीकृष्ण ने प्रवेश किया तब श्रीकृष्ण के दर्शन कर दर्शकों ने निजभाव अनुरूप भिन्न-भिन्न रसों का अनुभव-आस्वादन किया। सभी रसों के आश्रय तत्त्व हुए बिना यह कभी सम्भव नहीं था। यही कारण है जो श्रीधर गोस्वामिपाद “मल्लानामशनिः” श्लोक की व्याख्या भूमिका में लिखते हैं- “तत्र च शृंगारादि

सर्वरस कदम्बमूर्ति भगवान् तत्तदभिप्रायानुसारेण वभो” शृंगार आदि सर्वरस कदम्ब मूर्ति श्रीकृष्ण विभिन्न दर्शकों को निजभाव अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप में अनुभव हुए। श्रीकृष्ण सर्वरसस्वरूप है अतः भक्तवृन्द रसास्वादन की लालसा में अन्य सभी आवेश त्यागकर अखिल रस निधान श्रीकृष्ण के प्रति गाढ़ आवेश से उन्मत्त हुए रहते हैं। यह है प्रथम गुरुत्व। श्रीकृष्ण पूर्णानन्द स्वरूप है यह दूसरा गुरुत्व है। “आनन्दमयोहभ्यासात्” “आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्” “प्रज्ञानन्दम् ब्रह्म” “सताम् ज्ञानानन्दम्” इत्यादि श्रुति वाक्यों में श्रीकृष्ण ही मूलतत्त्व हैं। उन्हें अनुभव करके ही विश्वमानव विशुद्ध आनन्द लाभ कर उन्मत्त होता है। श्रीकृष्ण चिन्मय पूर्णतत्त्व हैं, यह तृतीय गुरुत्व है। श्रीकृष्ण के अनुभवानन्द से मायाबद्ध विश्व मानव माया मुक्ति लाभ कर सर्वथा पूर्णकाम हो जाता है। ऐसे कृष्ण को उन्मत्त कर देना कभी सम्भव नहीं। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं ऐसे गुरुत्वपूर्ण मुझको श्रीमती राधारानी का प्रेम उन्मत्त कर देता है। श्रीराधा प्रेम की यह कैसी विचित्र महिमा है।

तात्पर्य यह है कि लोकजन तीन कारण से उन्मत्त अथवा पागल हो जाते हैं- (1) किसी विषय में अत्यधिक आवेश होने पर, (2) जिस आधार विशेष में जितना सुख या दुःख धारण-शक्ति है उससे अधिक सुख या दुःख उपस्थित हो जाने पर और (3) ज्ञान आछन्नकारी अज्ञान द्वारा। श्रीकृष्ण में यह तीन असम्भव हैं, कारण वे रस के निधान हैं अतः किसी भी विषय में उनका अधिक आवेश उत्पन्न होना सम्भव नहीं। वे पूर्णानन्द स्वरूप हैं, अतः उस आधार में अधिक आनन्द उपस्थित होना असम्भव है। दूसरी ओर जैसे सूर्य के निकट अन्धकार आना सम्भव नहीं उसी प्रकार श्रीकृष्ण के चित्त में किसी भी प्रकार का दुःख आना सम्भव नहीं। वे चिन्मय पूर्णतत्त्व हैं, जड़ से पूर्णतः विपरीत स्वप्रकाश लक्षण वस्तु एवं अखण्ड ज्ञान स्वरूप हैं अतः ज्ञान को ढक देने वाले अज्ञान का उदय होना श्रीकृष्ण के पक्ष में सर्वथा असम्भव है। श्रीकृष्ण के उन्मत्त होने का कोई कारण न रहते हुए भी श्रीमती राधारानी का प्रेम उन्हें उन्मत्त कर देता है। श्रीमती राधारानी के प्रेम का ऐसा महामहत्व है अथवा ऐसी अद्भुत महामहिमा है।

श्रीमती राधारानी के प्रेम की ऐसी अद्भुत शक्ति क्या स्वयं ज्ञान स्वरूप श्रीकृष्ण को भी अज्ञात है? यह अद्भुत शक्ति श्रीमती राधा के मादनाख्य महाभाव से अभिव्यक्त होती है। यह मादनाख्य महाभाव (केवल) एकमात्र श्रीराधारानी में ही विराजित है, यह श्रीकृष्ण में भी नहीं है। अतः मादनभाव

का क्या बल है यह अप्राकृत नवीन मदन को भी अज्ञात है। इस प्रेम की क्रिया श्रीकृष्ण को सतत विह्वल किए रखती है। इसी से वे समझ पाते हैं कि राधाप्रेम गुरु के समान शिष्य श्रीकृष्ण को नर्तक के समान नाना प्रकार से नृत्य कराता रहता है। अर्थात् कोई सुशिक्षित गुरु जिस प्रकार नृत्य-शिक्षाभिलाषी शिष्य नट को नाना रूप नृत्य नचाता है उसी प्रकार श्रीमती राधा का प्रेम – जिसकी माया के वशीभूत हो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के जीव सतत नृत्य करते हैं- उस नटराज को गुरु होकर विविध नृत्य नचाता है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद इन्हीं विविध नृत्यों में से कुछ का परिचय प्रदान करते हैं- “नानानृत्य इति यत्र अयम् भावः सर्वशक्ति सर्वसुख परिपूर्ण सत्य स्वरूपो नित्यज्ञानादिमयोह पयहम् कदाचित् जरति भयात् राधा प्रांगण कोने निहृत्य तिष्ठामि, कदाचित् राधा संग सुखाशया, तदागमन पंथानम् पश्यामि, कदाचित् तदर्थम् छद्मवेशी भवामि, कदाचिलतायाम् तदभ्रान्तो भवामीत्यादिकम् तत् प्रेमेव कारयतीति।” श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान होते हुए भी कभी किसी समय वृद्धा जटिला से भयभीत हो श्रीमती राधा के आंगन के एक कोने में छिपकर खड़े रहते हैं। श्रीउज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ के प्रारम्भ में “सांकेतिकित कोकिलादि निनदम्” इत्यादि श्लोक देखें। वे सर्वसुख परिपूर्ण होते हुए भी श्रीमती राधारानी के संग सुख की आशा में अभिसारिणी श्रीमती राधारानी के आगमन पथ की ओर निर्निमेष नेत्रों से निहारते रहते हैं, सत्य स्वरूप होते हुए भी मानवती श्रीमती राधा का मान भंग करने के लिए कभी जोगी कभी भोगी कभी नाईन आदि का वेष धारण कर मिथ्या हो जाते हैं। नित्य ज्ञान स्वरूप होते हुए भी कभी किसी हेमलता को भ्रान्ति वश राधा समझ बैठते हैं।

**कनकलता धरि आलिङ्गए तुईया कलेवर जाने।  
परसे विवश भई गैलो माधव मूरछे मदनबाणे॥**

(महाजन)

इस प्रकार विविध परिपाटी से श्रीकृष्ण को नृत्य करता है- श्रीमती राधारानी के प्रेम की ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है। सर्व ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधाप्रेम का ऐसा प्रभाव सचमुच अतिविचित्र है। श्रील कविराज गोस्वामिपाद श्रीराधाप्रेम की अन्य एक महिमा की बात बताते हैं-

**एइ प्रेमास्वादे मोरहय जेआह्लाद।  
ताहा हैते कोटिगुण राधा-प्रेमास्वाद॥६॥**

(चै.च.)

श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति की सारवृत्ति प्रेम कृष्ण को उनके स्वरूपानन्द एवं स्वरूप-शक्त्यानन्द की अपेक्षा अधिक आनन्द प्रदान करती है। इसी कारण वे स्वरूपानन्द एवं स्वरूप-शक्त्यानन्द की भी उपेक्षा कर भक्त्यानन्द आस्वादन के निमित्त प्रयत्न करते हैं। वैकुण्ठेश्वर श्रीनारायण महर्षि दुर्वासा के प्रति बोले—

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।  
श्रियञ्चात्यन्तिकीम् ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥7॥

(भा. 9/4/64)

“हे ब्राह्मण, जिनकी मैं ही एकमात्र परमगति हूँ उन सब साधु भक्तों को छोड़ मैं स्वयं की यहाँ तक की आत्यन्तिक श्री की भी कामना नहीं करता।” इसी भक्त-प्रेम की पराकाष्ठा है श्रीराधारानी का प्रेम-कारण उनका प्रेम परम महान है। अतएव श्रीराधाप्रेम के आस्वादन उन्हें चरण कोटि का आनन्द लाभ होता है यह सुनिश्चित है किन्तु श्रीराधा का जो आनन्द है वह श्रीकृष्ण के आनन्द की अपेक्षा भी कोटि गुण या अनन्तगुणा अधिक है। श्रीराधा का आनन्द दर्शन कर श्रीकृष्ण ऐसा अनुभव करते हैं। यह जो कोटि गुणा आस्वादन है यह श्रीराधारानी के प्रेम की एक अति विचित्र महिमा है। इसी विचित्र महिमा सम्पन्न राधाप्रेम को जानने के लिए श्रीकृष्ण लोभी हैं। श्रीराधाप्रेम के महत्व की ओर एक अपूर्वत्व वर्णन करते हैं—

आमि यैछेपरस्पर विरुद्धधर्माश्रय।  
राधा-प्रेम तैछे सदा विरुद्धधर्ममय॥  
राधा-प्रेम विभुयार बाड़िते नाहि ठाजि।  
तथापि से क्षणे क्षणे बाड़ये सदाई॥  
याहा हैते गुरु वस्तु नाहि सुनिश्चित।  
तथापि गुरुर धर्म गौरववर्जित॥  
वाञ्छा हैते सुनिर्मल द्वितीय नाहि आर।  
तथापि सर्वदा वामा वक्र व्यवहार॥8॥

(चै.च.)

श्रीकृष्ण विविध विरुद्ध-धर्मों के समाश्रय हैं- वे विभु होते हुए भी नराकृति हैं, विशुद्ध सत्व-स्वरूप होते हुए भी क्रोधयुक्त हैं, आत्माराम होते हुए भी शत पिपासाओं (कामनाओं) से कातर हैं, ज्ञान-स्वरूप होते हुए भी भ्रान्ति युक्त हैं, पूर्णकाम होते हुए भी प्रीति रसास्वादन के लोलुप हैं, परम स्वतन्त्र होते हुए भी प्रेम-भक्ति के आधीन हैं- उसी प्रकार श्रीराधारानी का

प्रेम भी परस्पर विरुद्ध धर्ममय है। श्रीराधारानी का प्रेम विभु है, जो विभु अथवा व्यापक है वह कभी वर्धित नहीं हो सकता, कारण व्यापक वस्तु के वर्धन की कोई सम्भावना नहीं होती। फिर भी श्रीराधाप्रेम प्रतिक्षण वर्धित होता है। द्वितीय जो वस्तु गुरु है वह गौरव धर्मयुक्त होती ही है, ऐसा ही नियम है; किन्तु श्रीराधाप्रेम सर्वापेक्षा गुरु अथवा परम-महान होते हुए भी गौरव वर्जित है अर्थात् दैन्य आदि संचारी भाव के कारण श्रीराधारानी स्वयं को श्रीकृष्ण-प्रेम शून्य ही समझती हैं। तृतीय श्रीराधा का प्रेम अति सुनिर्मल है अर्थात् उनमें श्रीकृष्ण सुख तात्पर्य के अतिरिक्त निज सुख अनुसंधान रूपी उपाधि का अत्यन्त अभाव है फिर भी उनमें वाम्य-कौटिल्य आदि विविध वक्र व्यवहार देखने में आते हैं। यह सभी कुछ श्रीराधाप्रेम का विरुद्ध आश्रयत्व है, अतः यह सभी कुछ श्रीराधाप्रेम का परम महत्व ही समझा जाता है। श्रीराधारानी के असाधारण गुण भी उनके प्रेम महत्व के परिचायक हैं। जैसे-

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्तयन्ते प्रवरागुणाः ।  
 मधुरेयं नववयाश्चलापाङ्गोज्ज्वलस्मिता ॥  
 चारु-सौभाग्यरेखाढ्यागन्धोन्मादितमाधवा ।  
 सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा रमावाङ्मर्मपण्डिता ॥  
 विनीता करुणापूर्णा विदग्धा पाटवान्विता ।  
 लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्य-गाम्भीर्य-शालिनी ॥  
 सुविलासा महाभाव-परमोत्कर्षतर्षिणी ।  
 गोकुलप्रेमवसतिर्जगच्छेणी-लसद्यशाः ॥  
 गुर्वर्पित-गुरुस्नेहा सखीप्रणयितावशा ।  
 कृष्णप्रियावलीमुख्या सन्तताश्रवकेशवा ।  
 बहुना किं गुणान्तस्या संख्यातीताहरेरिव ॥१॥

(उ.नी.)

“श्रीराधा के श्रीकृष्ण की तरह असंख्य अप्राकृत श्रेष्ठ गुण-समूह हैं उनमें से पच्चीस गुणों का यहाँ वर्णन है। मधुरा-श्रीराधिका का अंग सौष्टव, समस्त चेष्टाएँ सभी अवस्थाओं में चारुता युक्त हैं; नववया- वे नित्य किशोरी हैं; चपलांग- जिनकी अपांग दृष्टि अति चपल है; उज्ज्वलस्मिता-समुज्ज्वल मृदु-मधुर हास्ययुक्ता; चारु सौभाग्य रेखाढ्या- जिनके पदतल एवं करतल में सौभाग्य सूचक अति मनोहर रेखा समूह विद्यमान हैं; गंधोनमादित-माधवा- जिनके अंग-गंध के माधुर्य से माधव उन्मत्त हो जाते हैं; संगीत-प्रसराभिज्ञा- संगीत विद्या में जो अतिशय निपुण हैं; रम्यवाक्-जिनके वाक्य अतिशय



रमणीय हैं; नर्मपंडिता-परिहास-गर्भ मधुर नर्म वाक्य प्रयोग में सुनिपुणा; विनीता-अतिशय विनय गुण सम्पन्ना; करुणापूर्णा-अपार करुणा सागर रूपिनी; विदग्धा-नाना प्रकार के कला विलास में निपुण; पाटवान्विता-चातुर्यशालिनी; लज्जाशीला-सतत लज्जानमिता; सुमर्यादा-सतत सुमर्यादा सम्पन्न, यह तीन प्रकार से स्वभाव में हैं; शिष्टाचार, परम्परा एवं स्वकल्पिता; धैर्यशालिनी, गाम्भीर्यशालिनी; सुविलासा-हाव, भाव, किलकिंचित आदि शृंगार-भाव युक्ता; महाभाव-चरमोत्कर्षिणी-महाभाव के चरम विकास हेतु श्रीकृष्ण में सतत अतिशय तृष्णावती; गोकुल-प्रेमवसति-समस्त गोकुल-वासी जिन्हें यथायोग्य प्रीति करते हैं; जगच्छेनीलसद्यशा जिनके यश से समस्त जगत व्याप्त है; गुर्वर्पित-गुरुजन की अतिशय स्नेह पात्री; सखीप्रणयितावशा-सखीगणों के प्रणय के आधीन; कृष्णप्रियावली मुख्या-श्रीकृष्ण प्रेयसीगणों में सर्वप्रधाना; संततश्रवकेशवा-श्रीकृष्ण सदा जिनके वाक्यों के आधीन हैं।” ब्रज की परकीय भाववती कान्तागणों की आठ प्रकार की अवस्थाएँ देखी जाती हैं-

अथावस्थाष्टकं सर्वनायिकानां निगद्यते।  
तत्राभिसारिका वासकसज्जिका उत्कण्ठिता तथा ॥  
खण्डिता विप्रलम्भा च कलहान्तरितापि च।  
प्रोषित-प्रेयसी चैव तथा स्वाधीनभर्तृका ॥१०॥

(उ.नी.)

अर्थात् अभिसारिका, वासकसज्जिका, उत्कण्ठिता, खंडिता, विप्रलम्भा, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्तृका एवं स्वाधीनभर्तृका- सभी ब्रजनायिकाओं में यह आठ प्रकार की अवस्थाएँ देखी जाती हैं। इन सब अवस्थाओं में भी परम महान प्रेमवती श्रीराधारानी सर्वश्रेष्ठ हैं; यह भी श्रीराधाप्रेम की महामहिमा का सूचक है।

### अभिसारिका

अभिसार अनुराग की अनिवार्य परिणति (पुष्टता) है। कान्त के संग मिलन के निमित्त अनुराग से भर संकेत कुंज गमन ही अभिसार है। महाजन पूर्वराग दशा में श्रीराधारानी की कुंजाभिसार साधना का वर्णन करते हैं-

कण्टक गाड़ि, कमल सम पदतल  
मञ्जीर चीरहिं झाँपी।  
गागरी वारि, चरि करि पिछल  
चलतहि अंगुली चापि ॥

हरि अभिसारक लागि ।  
 दूतर पंथ, गमन धनिसाधये  
 मन्दिरे यामिनी जागि ॥  
 कर-युगेचरण, मुन्दि चलुभाविनी  
 तिमिरपयानक आशे ।  
 मणि कङ्कन-पथ, फणि-मुख-बन्धन  
 शिखई भुजग-गुरु पाशे ॥  
 गुरुजन-वचन, बधिर सम मानई  
 आन शुनइ कह आन ।  
 परिजन वचने, मूगधि सम हासइ  
 गोविन्ददास परमाण ॥ 111 ॥

श्रीराधारानी श्याम अभिसार को जाएंगी, उन्हें अंधकार भरी रजनी में कण्टकाकीर्ण वन पथ से गमन करना होगा; सुकुमारी के चरणों कण्टकाघात हुआ तो अभिसार में बाधा होगी, तभी वे आंगन में कांटे बिछा कर उस पर चलने का अभ्यास कर रही हैं। कहीं ऐसा न हो कि नूपुर आवाज करें इसलिए वस्त्र से नूपुरों को बाँध कर निशब्द चलने का प्रयास कर रही हैं। आंगन में कलसी से जल उड़ेल कर फिसलन भरे पथ पर पंजों के बल चलने का प्रयास कर रही हैं। सुकुमारी संध्या के समय थोड़ा सो लेती हैं फिर सारा रात्रि जागरण कर दूर पथ पर जाने के लिए साधना करती हैं। घोर तामसी निशा में अभिसार को जाना होगा सो अपने घर में दोनों हाथों से नयन मुद्रित कर अंधकार में चलने के निमित्त अभ्यास कर रही हैं। श्रीमती ने नागमण्डलिक (सँपैरा) को अपने हाथों के मणि-कंगन दक्षिणा में देकर साँप को वशीभूत करने का मंत्र सीख लिया है, जिससे घोर वनपथ पर यदि सर्प दंशन करें तो उनके अभिसार में बाधा न हो। वे गुरुजनों की बात बधिर के समान कुछ सुनती हैं और अन्य उत्तर देती हैं। परिजनों की निन्दा-अपवाद आदि श्रवण कर मुग्धा के समान केवल हंस देती हैं। कितना शक्तिमय-कितना वेगमय है श्रीराधारानी का अभिसार!!

नव अनुरागिणी राधा। कछु नाहि मानये वाधा ॥  
 एकलि करलि पयान। पंथ विपथ नाहि मान ॥  
 तेजल मणिमय हार। उचकुच मानये भार ॥  
 कर सने कङ्कण-मुदरि। पहुहि तेजलि सगरि ॥

मणिमय मञ्जीर पाय। दुरहि तेजि चलि जाय॥  
 यामिनि घन अंधियार। मनमथ हिये उजियार॥  
 विधिनि विथारल वाट। प्रेमक आयुधेकाट॥  
 विद्यापति-मति जान। एसे न हेरि आन॥12॥

वर्षाकाल है, घोर तामसी निशा है, आकाश घनघोर घटाओं से आछन्न है। उत्कट विद्युत-आलोक से नयन झुलसे जाते हैं। मुहुर्हुहु (अकस्मात्) बिजली का गर्जन! प्रबल झंझावात बह रहा है। इस दुर्योग भरी रात्रि में दूर वन में श्याम की वंशी बज उठी। श्रवण कर श्रीमती अभिसार के निमित्त अधीर हो उठी। महाजन गाते हैं—

गगने अव घन,                      मेह दारुण  
 सघने दामिनी झलकइ।  
 कुलिश पातन,                      शब्द झनझन  
 पवनखरतर बलगइ ॥  
 आजु दुरदिन भेल।  
 कान्त हामारि,                      नितान्त आगुसरि  
 सङ्केत कुंजहि गेल ॥  
 तरल जलधर,                      वरिषे झरझर  
 गरजे घनघन घोर।  
 श्याम मोहने,                      एकलि कैछने  
 पंथ हेरइ मोर ॥  
 सोभरि मझ तनु,                      अवश भेल जनु  
 अपिर थर थर काँप।  
 ए मझू गुरुजन,                      नयन दारुण  
 घोर तिमिरहि झाँप ॥  
 तुरिते चल अब,                      किये विचारब  
 जिवन मझू आगुसार।  
 राय शेखर,                      वचने अभिसार  
 किये से विधिनी विथार                      ॥13॥

समस्त बाधा विपत्ति को पददलित कर यहाँ तक की प्राणों के मोह को भी त्यागकर श्रीमती का श्याम सेवा के लिए कुंज अभिसार है। जिनका चित्त कुसुम से भी अधिक सुकोमल है, अभिसार के लिए उनकी ऐसी शक्ति, ऐसा

वेग - यह कल्पना से परे की बात है। ऐसी अनुरागमय मिलन माधुरी भी अति अपूर्व है।

“नव अभिसारिणी, कुंजहि भेटल,  
 ओ नवनागर सङ्ग ।  
 पंथ घटित दुख, सबह दूरे गेल,  
 बाढ़ल मनोभव रङ्ग ॥  
 देख देख अनुपम, दुहुँ मुख इन्दु ।  
 दुहुँक दरश रसे, भोरल हरि संगे,  
 उछलल प्रेमक-सिन्धु ॥  
 दुहुँक आलोकने, दुहुँ पुलकाइत,  
 लोचने आनन्द लोर ।  
 विचरल काँप, भाषा भेल गदगद,  
 स्तवध भेल पून भोर ॥14 ॥

कोई भी कान्ता आनन्दघन विग्रह के चित्त में ऐसी उत्कण्ठा ऐसी व्याकुलता आकांक्षा जगाकर सेवा करने में समर्थ नहीं हुई। एकमात्र राधानुराग की ही ऐसी महिमा है।

#### वासक सज्जिका

किसी समय श्रीमती ही पहले कुंज-अभिसार कर वासक सज्जिका दशा में कुंज सज्जा करती हैं। कान्त अति अवश्य ही कुंज आगमन करेंगे ऐसा जानकर जो स्वयं सज्जित रहती है एवं कुंजग्रह को भी सजाती हैं, उसे वासक-सज्जिका कहते हैं। स्मर क्रीड़ा संकल्प, कान्त के पथ की ओर देखना, सखियों के संग विनोद वार्ता, बार-बार दूती के पथ की ओर देखना यही इस नायिका की चेष्टाएँ रहती हैं।

स्ववासकवशात् कान्ते समेषाति निज वपुः ।  
 सज्जीकरोति गेहण या सा वासकसज्जिका ॥  
 चेष्टा चास्याः स्मरक्रीड़ा-सङ्कल्पो वर्त्मवीक्षणम् ।  
 सखीविनोदवार्ता च मुहूर्तवीक्षणादयः ॥15 ॥

(उ.नी.)

सखीर उक्ति—सखी ने कहा  
 पवनक परशाहिं, विचलित-पल्लव  
 शरदहिं सजल नयान ।  
 सचकिते सघने, नयने घनी निरखये

जानल आलय कान ॥  
 माधव समुझल तुया चतुराई ।  
 तमालक कोरे आपन तनु छापसि  
 अब कैछे रहबि छापाइ ॥  
 पुनहि विलम्बे, फिरये सब कानने  
 पुन अनुमानये चिते ।  
 भूललपन्थ, अन्त नाहि पाउल  
 ना बुझिये नागर रीते ॥  
 नुपूर रणित, कलित नव माधुरी  
 शुनइते श्रवण उल्लास ।  
 आगुसरि राइ, कानने अवलोकइ  
 कहतहिं कानुराम दास ॥

उत्कण्ठता

अनागसि प्रियतमे चिरयतूत्सुका तू वा ।  
 विरोहोत्कण्ठता भाववेदिभिः सा समीरिता ॥  
 आस्यास्त चेष्टौ हृत्तापो वेपथूर्हेतुतर्कणम् ।  
 अरतिर्वाष्पमोक्षष्व स्वावस्था-कथनादयः ॥ 16 ॥

(उ.नी.)

“निरपराध प्रियतम के बहुत समय बीत जाने पर भी (संकेत कुंज) न आने पर जो नायिका उत्कण्ठता हो जाती है, भावज्ञगण उसे ही ‘उत्कण्ठता’ नाम देते हैं। सापराध नायक में निरपराध ज्ञान होने पर नायिका उत्कण्ठता होती है एवं निरपराधी नायक में अपराधी ज्ञान होने पर नायिका मानिनी हो जाती हैं। हृत्ताप, कम्प, कारण के विषय में वितर्क, अस्वास्थ्य, अश्रुमोचन, (सखियों से) अपनी अवस्था कथन इत्यादि उत्कण्ठता नायिका की चेष्टाएँ हैं।”

बन्धुर लागिआ, सेज विछाइलूँ  
 गाँथिलुँ फूलेर माला ।  
 ताम्बुल साजानुँ, दीप उजारलुँ  
 मन्दिरहइल आला ॥  
 सइ पाछे ए-सब हइबे आन ।  
 से हेन नागर, गुणेरसागर  
 काहे ना मिलल कान ॥

श्वशुड़ी ननदे, वञ्चना करिया  
 आइलूँ गहन वने ।  
 बड़ साध मने, एरूप यौवने  
 मिलब बन्धुर सने ॥  
 पथ पानेचाहि, कत ना रहिबो  
 कत प्रबोधिब मने ।  
 रस-शिरोमणि, आसिब एखनि  
 द्विज चण्डीदासभणे ॥ 17 ॥

विप्रलब्धा

कृत्वा सङ्केतमप्राप्ते दैवाज्जीवितवल्लभे ।  
 व्यथमानान्तरा प्रोक्ता विप्रलब्धा मणीषिभिः ।  
 निर्वेदचिन्ताश्रुमूर्च्छानिःश्वसितादिभाक् ॥ 18 ॥

(उ.नी.)

“कुंज में मिलन का संकेत करके भी प्राणनाथ का आगमन न होने पर जो नायिका अतिशय व्यथित होती हैं उन्हें विप्रलब्धा कहा जाता है। निर्वेद, चिन्ता, खेद, अश्रु, मूर्च्छा, दीर्घश्वास इस नायिका की चेष्टाएँ हैं।”

दू-कान पातिया, छिल एतक्षण  
 बन्धु-पथपाने चाइ' ।  
 परभात निशि, देखिया अमनि  
 चमकि उठिल राइ ॥  
 पाताय पाताय, पडिछे शिशिर  
 सखिरे कहिछे धनी ।  
 वाहिर हइया, देखलो सजनि  
 बन्धुर शब्द शुनि ॥  
 पुनः कहे राइ, ना आसिल बन्धु  
 मरमे रहल व्यथा ।  
 कि बुधि करिब, पाषाणे बाड़िया  
 भाङ्गिब आपन माथा ॥  
 फूलेर ए डाला, फूलेरएमाला  
 सेज विछाइनु फूले ।  
 सब हइल वासि, आर केन सइ  
 भासागे यमुना जले ॥

कुंकुम कस्तूरी, चुबक चन्दन  
लागिछे गरल हेन ।  
ताम्बूल विरस, फूलहार फणी  
दंशिछे हृदय येन ॥  
सकल लइया, यमुनाय डार  
आर तो ना जाय देखा ।  
ललाटेर सिन्धूर, मुछि' कर दूर  
नयानेर काजर-रेखा ॥  
आर ना राखिव, ए छार पराण  
ना याबो लोकेरमाझे ।  
थिर हउ राइ, चलु चण्डीदास  
आनिते निठुर राजे ॥ 19 ॥

#### खण्डिता

उल्लङ्घया समयं यस्याः प्रयानन्योपभोगवान् ।  
भोगलक्षणांकितः प्रातरागच्छेत् सा हि खण्डिता ॥  
एषा तु रोष-निःश्वास-तृष्णीम्भावादि-भाग् भवेत् ॥ 20 ॥

(उ.नी.)

अर्थात् “संकेत समय का अतिक्रमण कर प्रियतम, अन्य नायिका के भोग चिह्न अंग में धारण कर प्रातःकाल जब कुंज में आगमन करता है तो उसके दर्शनों से नायिका खण्डिता होती है। क्रोध, दीर्घश्वास, मौनावलम्बन इस नायिका की चेष्टाएँ हैं।

खण्डिता श्रीराधा की उक्ति—

भाल हैल आरे बन्धु आइला सकाले ।  
प्रभातेदेखिलूँ मुख दिन जाबे भाले ॥  
बन्धु तोमार शुकायेछे मुख ।  
के साजाले हेन साजे हेरि वासि दूख ॥  
बन्धु तोमाय बलिहारी जाइ ।  
फिरिया दाँडाओ तोमार चाँद-मुख चाइ ॥  
आइ आइ पड़्याछे मुख काजरेर शोभा ।  
भाले से सिन्दूर-विन्दु मुनि-मन-लोभा ॥  
खर-नख दशनेते अङ्ग जर जर ।  
भाले से कङ्कण दाग हियार उपर ॥

नील पाटेर शाटी कोंचार बलनि।  
 रमणी-रमण हैया वञ्जिला रजनी ॥  
 सुरङ्ग जावक-रङ्ग उरे भाल साजे।  
 एखन कह मनेर कथा आइला किबा काजे ॥  
 चारिपाने चाहे नागर आँचले मुख मोछे।  
 गोपाल दासेर लाज धूइले ना घूचे ॥21॥

यही खण्डिता नायिका ही मानिनी हो जाती हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण का श्रीराधा की मान-माधुरी आस्वादन के निमित्त ही चन्द्रा के कुंज में निशियापन एवं प्रातःकाल उनके सम्भोगांक अंग पर धारण कर श्रीमती के कुंज में आगमन होता है। कारण “ब्रजे गोपीगणेर मान रसेर निदान” (चै.च.) सर्वोपरि श्रीमती राधारानी। उनका मानरस यथार्थतः ही एक अद्भुत इन्द्र-जाल है! विश्वमोहन श्रीकृष्ण के लिए एक महामोहिनी शक्ति!! मानिनी श्रीमती की उक्ति—

छूँओना छूँओना बन्धु ऐ खाने थाक।

मुकुर लैया चाँदमुख खानि देख ॥

नयनेर काजर, बयाने लेगेछे-कालर उपरे काल।  
 प्रभाते उठिया, ओ मुख देखिलाम, दिन जावे आज भाल ॥  
 अधरेर ताम्बूल, बयाने लेगेछे, घूमे दुलु दुलु आँखि।  
 आमा पाने चाओ, फिरिया दाँडाओ, नयन भरिया देखि ॥  
 चाँचर केशेर, चिकण चुड़ा, से केन बुकेर माझे।  
 सिन्दुरेर दाग, आछे सर्वगाय, मोरा हेले मरि लाजे ॥  
 नील कमल, झमरु हयेछे, मलिन हयेछे देह।  
 कोन रसवती, पाइषा सुधानिधि, निङाड़ि लयेछे सेह ॥  
 कुटिल नयने, कहिछे सुन्दरी, अधिक करिया तोड़ा।  
 कहे चण्डीदास, आपन स्वभाव, शाड़िते ना पारे चोरा ॥22॥

श्रीमती यह बात कहकर मानिनी हो घूँघट खींचकर मौन हो गई। श्रीकृष्ण मानिनी श्रीराधारानी के श्रीचरणकमलों में बैठकर हाथ जोड़कर श्रीमती का मान भंग का प्रयास करने लगे—

चाह मुख तुलि राइ चाह मुख तुलि। नयान नाचने नाचे हियार पुतली ॥  
 अभिमान दूरे करि चाह एकवार। दूरे जाउ सब मोर हियार आन्धार ॥  
 राइ कत परखसि आर। तुया आराधन मोर विदित संसार ॥  
 पीत पिन्धन मोर तुया अभिलाषे। पराण चमके जदि छाड़ह निःश्वासे ॥



लेह लेह लेह राइ साधेर मुरली। परशिते चाहि तोमार चरणेर धुलि॥  
 तुया मुख निरखिते आँखि भेल भोर। नयन-अञ्जन तुया पर-चित-चोर॥  
 रूपे गुणे यौवने भुवने आगलि। विहि निरमिल तुहे पिपीति पुतली॥  
 एत धने धनी जेइ से केने कृपण। ज्ञानदास कहे-केवा जानिबे मरम॥23॥

अपराधी नायक ने मानिनी के चरणों में पड़ बहुत प्रकार विनय वाक्यों का प्रयोग किया। फिर भी श्रीमती का मान भंग नहीं हुआ। अंत में मान निरसन के लिए दंड-भेद आदि विविध उपायों का अवलम्बन किया, सखियों ने भी नाना प्रकार की बातों से मान निरसन की चेष्टा की किन्तु कुछ फल प्राप्त नहीं हुआ। श्रीमती का दुर्जय मान भंग नहीं हुआ। अन्ततः नायक ने निराश हो अन्यत्र गमन किया। श्रीमती ने रुष्ट भाव से सखियों से कहा, “तुम सब अब उसका नाम भी नहीं लेना।” मेरा मान-कुल-शील-धर्म सभी कुछ नष्ट हो गया और अन्त में मेरी यह दुर्दशा। यदि तुम उसकी और बात करोगी तो फिर मुझे यहाँ नहीं देख पाओगी। यह बात कहकर श्रीमती घूँघट खींचकर रोदन करने लगीं।

कुछ क्षण बीतने पर विशाखा ने कहा, “सखी राधे। तुम्हें अब घूँघट में मुख छिपाकर रोदन करने की आवश्यकता नहीं। श्याम निराश होकर रुदन करते-करते चला गया है और लगता है अब लौटेगा नहीं, अब चल घर को चलें। कृष्ण अब लौटेगा नहीं यह बात सुनते ही श्रीमती घूँघट खोलकर व्यग्रभाव से कहने लगी- “क्या कहा सखी, क्या अब वह लौटकर नहीं आएगा।, वह क्या सचमुच मुझे छोड़ कर चला गया। सखीगण, मैं तो मान में थी परन्तु तुम तो सब देख रहीं थीं फिर उसे जाने क्यों दिया? जाओ, अब शीघ्र उसे लेकर आओ और मेरी रक्षा करो।” सखियाँ बोलीं “राधे, वह अपराधी के समान तुम्हारे चरणों में गिर कितना रोया। नाना प्रकार विनय वाक्यों से तुम्हें कितना प्रसन्न करने का प्रयास किया। तुमने उसे कटु वाक्यों से ताड़ित कर कुंज से निकाल दिया। दुखी होकर, अपमानित हो, मनोव्यथा लेकर वह जाने कहाँ चला गया, अब हम उसे कहाँ पाएँगी?” थोड़ा रोष से भर कर श्रीविशाखा ने कहा—

आसिया नागर, समुखे दाँडाल, गले पीतवास लैया।  
 से चाँद वदने, फिरे ना चाहलि, तु बड़ कठिन मेया॥  
 सो श्याम-नागर, जगत दुर्लभ, किसेर अभाव तार।  
 तोमा हेनो कत, कुलवती सती, दासी हइयाछे जार॥

तार चुड़ा मेने, सुखेते थाकुक, ताहे मयुरे पाखा।  
 तोमा हेन कत, कुलवती सती, दुयारे पाइवे देखा॥  
 अभिनी हैया, मोरे ना कहिया, भेजलि आपन सुखे।  
 आपनार शेल, जतने आपनि, हानिलि आपन बुके॥  
 (एखन) मनेर आगुने, मरह पुड़िया, निभाइवे आर किसे।  
 श्याम जलधरे, आर ना मिलिवे, कहे द्विजचण्डीदासे॥24॥

कलहान्तरिता

या सखीनाम् पुरः पादपतितं वल्लभं रुषा।

निरस्य पश्चात्तपति कलहान्तरिता हि सा।

अस्याः प्रलाप संलपग्लानि-निश्वासितादयः॥25॥

(उ.नी.)

जो नायिका सखीगण के समक्ष पदनत वल्लभ का त्यागकर देती है और उसके उपरान्त अतिशय ताप अनुभव करती है, उसे कलहान्तरिता कहा जाता है। प्रलाप, सन्ताप, ग्लानि, दीर्घ-निःश्वास उसकी चेष्टाएँ हैं।

कलहान्तरिता श्रीराधा की उक्ति—

आपन शिर हाम, आपन हाते कटिनु-काहे करिनु हेन मान।  
 श्रीश्याम सुनागर, नटवर-शेखर, काँहा सखि करल परान॥  
 तप वरत कत, करि दिन जाभिनी, यो कानु को नाहि पाय।  
 हेन अमूल्यधन, मझुपदे गड़ायल, कोपे मुँइ ठेलिनु पार॥  
 आरे सेइ कि हबे उपाय।

कहिते विदरे हिया-शाडिनु से हेन पिया, अति छार मानेरइ दाय॥

जनम अवधि मोर, ए शेल रहिवे बुके, ए पराण कि काज राखिया।

कहे दीन चण्डीदास, कि फल हइवे बल, गोड़ा केटे आगे जल दिया॥26॥

श्रीमती रोते-रोते सखियों के प्रति बोलीं— “हे सखीगण! बन्धु कितने प्रेम से माला गूँथ कर मेरे गले में पहनाना चाहता था, मैंने क्रोध से भर कर उसे दूर हटा दिया। गिरिधारी ने मेरे चरणों में पड़ कितनी प्रार्थना की, मैंने उसकी ओर देखा तक नहीं। हाय! क्यों मेरी मति इस प्रकार भ्रष्ट हो गई। क्यों मैंने हाथ में आई लक्ष्मी को टुकरा दिया। अब मेरे भाग्य में रोदन के अतिरिक्त और क्या बचा बताओ! किसी सखी ने कहा—राधे! ऐसे बहुवल्लभ को प्रेम करने का यही फल होता है। पूर्व में तुम्हें कितना निषेध किया था। उसका रूप देखकर पतंगी के समान उसके रूप की अनल में कूद गई, गुणों का विचार किया ही नहीं। अब केवल ज्वाला ही सार है।

शुनइते कानु, मुरली रव-माधुरी, श्रवणे निवारिलुँ तोर।  
 हेरइते रूप, नयनयुग झाँपलु, तब मोहे रोखलि भोर॥  
 सुन्दरि तैखने कहलाम तोय।

भरमहि ओ सजे, लेह बाड़ाअवि, जनम गोडाअवि रोय॥  
 बिनु गुण परखि, परक रूप लालसे, काहे सोंपलि निज देहा।  
 दिने दिने खोयसि, इह रूप लावणि, जीवइते भेल सन्देहा॥  
 जो तुहँ हृदये, प्रेम-तरु रोपलि, श्याम-जलद-रस-आशे।  
 सो अब नयन-नीर, देइ सिञ्चह, कहतहिँ गोविन्ददासे॥  
 सखी की बात सुनकर श्रीमती बोलीं—

आन्धल प्रेम, पहिले नाहि हेरिनु, सो बहुवल्लभ कान।  
 आदर साधे, वाद करि ता सह, अहनिश ज्वलत पराण॥  
 सजनि! तोहे कह मरमक दाह।

कानूक दोखे, जो धनी रोखइ, सो तापिनी जगमाह॥  
 जो हाम मान, बहुत करि मानलुँ, कानूक मिनतिउपेधि।  
 सो अब मनसिज-शरे भेल जरजर, ताकर दरश ना देखी॥  
 धैरज लाज, मान संगे भागल, जीवन रहत सन्देह।  
 गोविन्द दास, कहइ सती-भामिनी, ऐशान कानुक लेह॥27॥

कलहान्तरिता दशा में श्रीमती रूदन करने लगीं। प्रचण्ड विरह-वेदना से अधीर हो विलाप करते-करते बोलीं—‘सखी, उसका दोष नेत्रों से देखते हुए भी रुष्ट होने का कोई उपाय नहीं है। उसके साथ विवाद कर निदारुण ज्वाला से मेरा अन्तर जल गया। उसके विविध विनय वाक्यों की उपेक्षा कर मेरे चित्त ने मान को ही श्रेष्ठ मान लिया था अब इस क्षण उसके अदर्शन से वही मेरा चित्त मदन-शरों से जर्जरित हो रहा है। अब मान चला गया, उसके संग धैर्य, लज्जा आदि सभी चले गए। अब तो जीवन भी जाएगा। तुम यदि ला सको तो उसे लौटा लाओ और मेरी जीवन रक्षा करो। श्रीमती की अवस्था दर्शन कर कोई सखी श्यामसुन्दर की खोज में निकल पड़ी।

राइक विनय, वचन शुनि सो सखी, चललहि श्यामक आगे।  
 दूरहि ताक, वदन हेरि माधव, मानल आपन सोहागे॥  
 अपरूप प्रेमक रीत।

आदर विनहि, सोइ बहुवल्लभ, दूती नियडे उपनीत॥  
 दूती कहत तूहँ, कैछन पिरीति-रीति बूझइ नाहि पारि।  
 सो यदि मान, भरमे तोहे रोखल, तुहँ काहे आयलि छाड़ि॥

आपन दोष, जानसि यदि मनमाहा, काहे बाड़ायलि बात।

गोविन्द दास, तोहारि लागि साधव, आगे चलह मझू साथ॥28॥

राधा विरही नागर दूती के निकट श्रीमती के मान प्रसादन के निमित्त हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं। यहाँ मनन करने योग्य विषय यह है कि, भक्त-प्रेम की जाति एवं परिमाण के अनुरूप उसकी प्रेम सेवा ग्रहण करने की आकांक्षा श्रीकृष्ण के अंतर में जागरित होती है, यह श्रीकृष्णस्वरूप का स्वभाव सिद्ध धर्म है। श्रीमती राधारानी का परम महान प्रेम श्रीकृष्ण के अन्तर में उनके संग मिलन की जो आकांक्षा जगाता है- वह एकमात्र श्रीराधारानी के अतिरिक्त शत-कोटि गोपियाँ भी पूर्ण करने में समर्थ नहीं होती। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा है- “शतकोटि गोपीते नहे काम निर्वापन। इहातेई अनुमानी श्रीराधार गुण॥” जो भी हो दूती नागर को आश्वासन देकर श्रीमती के कुंज में ले आती हैं एवं पुनः नागर को श्रीमती के चरणों में पड़कर रोदन करते हुए मान-भिक्षा का उपदेश करती है।

दूतीर वचन शुनि, रसिक शिरोमणि, आउल ताकर साथ।

दूरे संगे हेरि, सोइ वर नागरी, अवनत करि रहु माथ॥

करजोड़ि साधय कान।

हाम तूया किङ्कर, पड़िये चरणतल, त्यज धनी दारुण मान॥

एत करि नागर, अन्तर गर गर, ढरकि चरकि पडू लोर।

हेरि सुधामुखी, आकूल भेल अति, सो मुख हेरि विभोर॥

छल छल नयाने, श्याम कर किशलय, धरि कहे गद-गद भाव।

जलदे गोपनविधु, जैछे उदय भेल, कह यदूनन्दन दास॥

राइ हेरल जब सो मुखइन्दु। उछलल मनमाहा आनन्दसिन्धु॥

भाङ्गल मान रोदनहि भोर। कानू कमल करे मोछइ लोर॥

मानजनित दुख सब दूरे गेल। दुहुँ मुख दरशने आनन्द भेल॥

ललिता विशाखा आदि जत सखीगण। आनन्दे मगन भेल देखि दुइजन॥

निकुञ्जरे माझे दुहुँ केलि विलास। दूरहि नेहारत नरोत्तम दास॥29॥

स्वाधीनभर्तृका

“स्वायत्तासन्नदयिता भवेत् स्वाधीनभर्तृका।”

(उ.नी.)

“कान्त जिस नायिका के (आधीन) है सतत उसके समीप ही अवस्थान करता है उसे स्वाधीनभर्तृका कहा जाता है।

श्रीगीतगोविन्द में—

“रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कूरुध्व कपलयो-  
घटय जघने काञ्चीमञ्च श्रजा कवरीभरम्।  
कलय वलयश्रेणीं पुनौ पदे कुरु नूपुरा-  
विति निगदितः प्रीतःपीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥31 ॥

स्वाधीनभर्तृका श्रीराधारानी लीला के अंत में अनुगत नायक श्रीकृष्ण को आदेश करती हैं— हे श्याम! तुम मेरे वक्षजद्वय पर कस्तूरी से पत्र रचना कर दो, कपोल युगल चंदन द्वारा चित्रित कर दो, जघन में मणिमय मेखला पहना दो, कुसुम माला द्वारा कवरीभार बंधन कर दो, कर युगल में वलय श्रेणी एवं चरणद्वय में नूपुर पहना दो। श्रीमती की आज्ञा प्राप्त कर पीताम्बरधारी आज्ञा पालन करते हैं—

हरि निज आँचरे, राइ मुख मोछइ, कुंकुमे तनु पूनमाजि।  
अलक तिलक देइ, सिंथि बनायइ, चिकुरे कवरि पून साजि ॥  
माधव सिन्दुर देयल सिंथे।

कतइ यतन करि, उर पर लेखइ, मृगमद चित्रक पाँते ॥  
ओ मणिमञ्जीर, चरणे परायल, उर पर देवल हार।  
कर्पूर ताम्बूल, वदन भरि देयल, नीछइ तनु आपनार ॥  
नयनक अञ्जन, करल सुरञ्जन, चिबुकहि मृगमदविन्द।  
चरणकमलतले, यावक लेखइ, कि कहव दास गोविन्द ॥32 ॥

प्रोषितभर्तृका

दूरदेशं गते कान्ते भवेत् प्रोषितभर्तृका।  
प्रियसङ्कीर्तनं दैन्यमस्यास्तानवजागरौ।  
मालिन्यमनवस्थानं जाड्यचिन्तादयो मताः ॥33 ॥

(उ.नी.)

श्रीकृष्ण के दूर देश अर्थात् मथुरा अथवा द्वारका गमन करने पर कान्ता प्रोषितभर्तृका हो जाती हैं। प्रिय संकीर्तन दैन्य, कृशता, जागरण, मालिन्य, अस्थिरता, जड़ता एवं चिन्ता आदि इस नायिका की चेष्टाएँ हैं।

एइ तो माधवी -तले, आमार लागिआ प्रिया, योगी जेन सदाइ धेयाय।  
पिया बिने हिया केने, फूटिया ना पड़े गो, निलाज पराण नाहि जाय ॥  
सखि हे! बड़ दुख रहन मरमे।

आमारे छाड़िया पिया, मथुरा रहल गिया, एइ विधि लिखिल करमे ॥

आमारे लइया सङ्गे, केलि कौतुक रङ्गे फूलतुलि विहरइ वने।  
 नवकिशलय तुलि, सेज बिछायइ, रस परिपाटीर कारणे ॥  
 आमारे लइया कोरे, शयने स्वपन देखे, यामिनी जागिया पोहाय।  
 से हेन गुणेर पिया, कोन खाने कार सने, कैछने दिवस गोडाय ॥  
 एतेक दिवस कैल, प्राणनाथ ना आइल, कार मुखे ना पाइ सम्वाद।  
 गोविन्द दास चलु, श्याम बुझाइते, बाढ़ल विरह-विषाद ॥34 ॥

श्रीमती का दुख दर्शन कर दूती मथुरा जाने को उद्यत हुई तो श्रीमती दूती के प्रति बोलीं—

कहिउ कानूरे सेई कहिउ कानूरे।  
 एकवार पिया जेन आइसे ब्रजपुरे ॥  
 निकुञ्जे रहिल मोर एइ हियार हार।  
 पिया जेनो गलाय परये एकवार ॥  
 एइ तरु-शाखाय-रहिल सारी सुखे।  
 एइ दशा पिया जेन शुने इहार मुखे ॥  
 एइ वने रहिल मोर रंगिणी हरिणी।  
 पिया जेन इहारे पूछये सब वाणी ॥  
 श्रीदाम सुबल आदि जत तार सखा।  
 इहा सवार सने तार पुन हवे देखा ॥  
 दुखिनी आछये तार माता यशोमती।  
 आसिते जाइते तार नाहिक शक्ति ॥  
 तारे आसि जेन पिया देय दरशन।  
 कहिओ कानूरे एइ सब निवेदन ॥  
 शूनिया आकुल दुती चलु मधूपूर।  
 कि कहब शेखर वचन नाहि फूर ॥

श्रीराधारानी की प्रेम के कारण उत्पन्न यह अति अद्भुत अवस्थाएँ राधाप्रेम का परम महत्व (दर्शाती) हैं। श्रीराधारानी के प्रेम की यह सब अति आश्चर्यमय दशाओं का अनुभव कर श्रीकृष्ण ने प्रलुब्ध हो उसके आस्वादन की चेष्टा की किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ। इसका कारण भी वे समझ गए। श्रीराधा ही उस प्रेम की एकमात्र आश्रय तत्त्व हैं एवं श्रीकृष्ण विषय तत्त्व हैं। वे केवल विषयजातीय सुख का आस्वादन कर सकते हैं आश्रय जातीय सुख लाभ उनके लिए सर्वथा असम्भव है। विषयजातीय सुख की अपेक्षा आश्रयजातीय सुख कोटि-कोटि गुणा अधिक आस्वादाय है। इसी कारण वे

उसके आस्वादन की उत्कट आकांक्षा से अधीर हो गए एवं समझ गए कि इस सुख का आस्वादन करने के लिए उन्हें इस प्रेम का आश्रय होना होगा। श्रीकृष्ण की उक्ति पर श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं—

सेइ प्रेमर राधिका परम आश्रय।  
 सेइ प्रेमर आमि हइ केवल विषय॥  
 विषयजातीय सुख आमार आस्वाद।  
 आमा हैते कोटिगुण आश्रयेर आह्लाद॥  
 आश्रयजातीय सुख पाइते मन धाय।  
 यत्ने आस्वादिते नारि कि करि उपाय॥  
 कभु यदि एइ प्रेमर हइये आश्रय।  
 तवे एइ प्रेमनन्देर अनुभव हय॥  
 एत चिन्ति रहे कृष्ण परम कौतुकी।  
 हृदये बाइये प्रेमलोभ धक्धकि॥35॥

(चै.च.)

यहाँ तक श्रीराधारानी के प्रेम के महत्व की जो बात कही गई है— अर्थात् श्रीकृष्ण को उन्मत्त एवं उन्हें विह्वल (व्याकुल) करना, उन्हें नाना प्रकार नृत्य नचाना, श्रीकृष्ण की अपेक्षा कोटिगुण प्रेम की आस्वादन चमत्कारिता, नाना प्रकार से विरुद्ध धर्माश्रयत्व, विविध भाव वैचित्रीपूर्ण दशा प्राप्त होना इत्यादि महत्व सम्पन्न प्रेम की एकमात्र श्रीराधारानी ही परम आश्रय हैं। मादनाख्य-महाभाव की ही यह सब सामर्थ्य है। मादनाख्य महाभाव एकमात्र श्रीराधा में ही विद्यमान है। इस सम्पत्ति पर एकमात्र श्रीराधारानी का ही अधिकार है। यह श्रीकृष्ण में भी नहीं है। श्रीमत् रूपगोस्वामी लिखते हैं—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोध्यं परात्परः।

राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥36॥

(उ.नी.)

अर्थात् ह्लादिनी का परम सार परात्पर यह मादन भाव सर्व-प्रकार के भावों का उद्गम कराता है, यह सर्वदा एकमात्र श्रीराधारानी में ही विराजता है। “राधायामेव” यह “एव” कार रहने से समझा जाता है कि एकमात्र राधारानी के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस मादनाख्य महाभाव का आश्रय नहीं हो सकता। यहाँ तक की श्रीकृष्ण अन्य विविध प्रीति के विषयरूप से आश्रय होते हुए भी किन्तु महाभाव के विषय रूप से आश्रय नहीं। तात्पर्य यह है—

भक्त जब श्रीभगवान् को प्रेम करते हैं तब भक्त उस भगवद् विषयक प्रीति के आश्रय एवं श्रीकृष्ण प्रीति के विषय होते हैं।

भक्त की प्रीति के अनुरूप प्रीति करना, यह श्रीकृष्ण स्वरूप का एक स्वभाव है। अतः श्रीकृष्ण जब भक्त को प्रेम करते हैं, तब वे विषय तत्त्व रूप से उस भक्त विषयक प्रीति के आश्रय हो जाते हैं एवं भक्त को उसके प्रेम के अनुरूप प्रीति करते हैं। किन्तु श्रीराधा के मादन प्रेम के वे विषयरूप से आश्रय नहीं हो पाते हैं। अतः मादन के अनुरूप राधारानी के प्रति प्रीति प्रकाश करना भी उनके लिए साध्यतीत है। इसलिए वे श्रीराधा प्रेम के अनुरूप कुछ भी प्रीति न कर पाने के कारण उनकी प्रीति के निकट सभी प्रकार से ऋणी होकर रह गए। तभी कहते हैं—

**सेई प्रेमेर श्रीराधिका परम आश्रय ।**

**सेई प्रेमेर आमि हई केवल विषय”**

अतः प्रेम का विषयजातीय जो आनन्द है केवल वही आनन्द श्रीकृष्ण आस्वादन करते हैं। मादनाख्य महाभाववती श्रीराधारानी का आनन्द देख श्रीकृष्ण अनुभव करते हैं— श्रीराधा का आनन्द उनके अनुभूत आनन्द की अपेक्षा कोटि गुणा अधिक है। मादनाख्य महाभाव की एकमात्र आश्रय श्रीराधारानी के उसी अति सुविशाल आनन्द लाभ के निमित्त श्रीकृष्ण के हृदय में प्रबल इच्छा अथवा संकल्प जाग्रत होता है। चेष्टा करके भी वे उसका आस्वादन नहीं कर पाते एवं उस आस्वादन के विपुल लोभ को भी वे संवरण नहीं कर पाते। इस अतिशय लोभनीय आनन्द आस्वादन का उपाय चिन्ता करने पर वे समझ पाए—

**कभू यदि एई प्रेमर हइये आश्रय ।**

**तबे एई प्रेमानन्देर अनुभव हय ॥ (चै.च.)**

अर्थात् यदि किसी समय इस आश्रयजातीय भाव के अर्थात् मादनाख्य महाभाव का आश्रय हो पाऊँ तभी इस प्रेमानन्द का अनुभव कर पाऊँगा।

**एत चिन्ति रहे कृष्ण परम कौतुकी ।**

**हृदये बाढये प्रेमलोभ धक्धकि ॥ (वही)**

‘कौतुकी’ शब्द का एक आभिधानिक अर्थ है ‘कौतूहल’ अर्थात् किसी अपूर्व वस्तु को जानने के लिए आग्रह अथवा उत्सुकता। श्रीराधारानी के अति चमत्कार विस्मयकर अति विचित्र मादनाख्य-महाभाव के अनुभव निमित्त कौतूहली श्रीकृष्ण की तीव्र आकांक्षा जागी। उनके हृदय में इस प्रेम का लोभ



धक्-धक् कर वर्धित होने लगा। अग्नि जिस प्रकार ज्वलनशील वस्तु के संयोग होने पर धक्-धक् कर वर्धित होती है, श्रीराधारानी के प्रेमास्वादन की लालसा भी श्रीकृष्ण के अन्तर में उसी प्रकार वर्धित होने लगी। प्रथम वांछ की बात कहकर अब द्वितीय वांछ का उल्लेख करते हैं—

एइ एक आर शुन लोभेर प्रकार।  
सुमाधुर्य्य देखि कृष्ण करेन विचार॥  
अद्भुत अनन्त पूर्ण मोर मधुरिमा।  
त्रिजगते इहार केह नाहि पाय सीमा॥  
एइ प्रेमदारे नित्य राधिका एकलि।  
आमार माधुर्य्यामृत आस्वादे सकलि॥  
यद्यपि निर्मल राधार सत्प्रेम दर्पण।  
तथापि स्वच्छता तार बाड़े क्षणे क्षण॥  
आमार माधुर्य्येर नाहि बाढिते अवकाशे।  
ए दर्पणेर आगे नव नव रूपे भासे॥  
मन्माधुर्य्य राधाप्रेम दोहे होइ करि।  
क्षणे क्षणे बाड़े दोहे केह नाहि हारि॥  
आमार माधुर्य्य नित्य नव नव हय।  
स्व स्व प्रेम अनुरूप भक्ते आस्वादय॥  
दर्पणादये देखि जदि आपन माधुरी।  
आस्वादिते लोभ हय आस्वादिते नारि॥  
विचार करिये यदि आस्वाद उपाय।  
राधिकास्वरूप हैते तवे मन धाय॥३७॥

(चै.च.)

श्रीकृष्ण साक्षात् अखण्ड माधुर्यघनमूर्ति अथवा रसघनमूर्ति हैं। उनका माधुर्य अद्भुत, अनन्त एवं पूर्णतम है) अन्य किसी भगवत् स्वरूप में ऐसा माधुर्य नहीं है। अनन्त सिन्धु जिस प्रकार असीम होता है, श्रीकृष्ण माधुर्य भी उसी प्रकार निःसीम एवं अचिन्त्य है। इस त्रिभुवन में कोई भी इसकी सीमा प्राप्त कर सके ऐसा सम्भव नहीं। जिस प्रकार विश्व में कोई भी अनन्त समुद्र की जलराशि का पान कर उसे पचा नहीं सकता, एकमात्र अगस्त्य ऋषि ने ही अपने असाधारण सामर्थ्य से सप्तसिन्धु का जल गण्डूष में पानकर लिया था; उसी प्रकार एकमात्र श्रीराधारानी ही अपने मादनाख्य महाभाव के द्वारा श्रीकृष्ण माधुर्यसिन्धु को विशेषरूप से पान करने में समर्थ हैं। श्रीराधारानी के अतिरिक्त

मादनाख्य महाभाव अन्यत्र कहीं भी नहीं इसी कारण केवल श्रीराधारानी ही नित्य अथवा अविरत वृन्दावन बिहारी साक्षात् शृंगार-रसराजमय मुरलीधर श्रीकृष्ण की अनन्तमाधुरी समस्त रूप से आस्वादन करती हैं। मादनाख्य महाभाववती, विभु होते हुए भी प्रतिक्षण वर्द्धनशील अद्भुत विरुद्ध गुण सम्पन्न श्रीकृष्ण की अखण्ड माधुरी, इसी मादनाख्य महाभाव के कारण निर्बाध रूप से आस्वादन करती हैं।

श्रीकृष्ण माधुर्य समर्ण आस्वादन करने में श्रीराधा की अरुचि उत्पन्न हो सकती है कारण इसमें वितृष्णा उत्पन्न होने की सम्भावना है, इस प्रकार के सन्देह को समाप्त करने के लिए राधाप्रेम एवं श्रीकृष्ण माधुरी दोनों ही की क्षण-क्षण नवनवता का वर्णन करते हैं—

यद्यपि निर्मल राधार सत्प्रेम दर्पण।

तथापि स्वच्छता तारबाढ़े क्षणे क्षण।

आमार माधुर्येर् बाढ़िते नाहिं अवकाशे।

ए दर्पणेर् आगे नव-नव रूपे भासे।

श्रीराधा का प्रेम अति सुनिर्मल है। प्रेम जितना निरुपाधि होता है उतनी अधिक उसकी निर्मलता होता है। कान्ता प्रेम की पाँच प्रकार की उपाधियाँ हैं— स्वसुख तात्पर्य, ऐश्वर्य-ज्ञान, सौन्दर्य आदि गुणानुसंधान, संबन्धानुसंधान, रमण-रमणी इत्यादि का अनुसंधान। प्रथम दो स्वसुख-तात्पर्य एवं ऐश्वर्यज्ञान किसी भी ब्रजवासी में नहीं है। उसके बाद के दो गोपियों में नहीं हैं। वे स्वाभाविक भाव से श्रीकृष्ण को प्राणों के प्रबल आकर्षण से प्रेम करती हैं, वे रूपवान अथवा गुणवान, यह सब विचार कर वे प्रेम नहीं करतीं। “असुन्दरः सुन्दरशेखरो वा, गुणैरविहीनो गुणीनाम वरो वा। द्वेषी मयि सात करुणाम्बुधिर्वा, श्यामः स एवादय गतिर्ममायम्॥” (उ.नी.) अर्थात् वे असुन्दर हो अथवा सुन्दर शेखर हों, वे मेरे प्रति विद्वेष परायण हों अथवा दया के सागर हों, वे ही श्याम मेरी एकमात्र गति हैं। ब्रज के दास, सखा और माता-पितागण का प्रभु, सखा एवं सन्तान के रूप में सम्बन्धानुसार ही प्रेम प्रकाश पाता है। कारण किसी एक सम्बन्ध का अवलम्बन करके ही प्रीति आत्म सत्ता लाभ करती है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की परकीय-भाव युक्त कान्ताएँ हैं, उनकी श्रीकृष्ण-प्रीति किसी सम्बन्ध के कारण नहीं प्रत्युत उनकी प्रीति के आधीन श्रीकृष्ण (सम्बन्ध) के प्रति उनका “प्राणनाथ” यह प्रकाश पाता है। अतः सम्बन्धानुसाररूपी उपाधि गोपियों के प्रेम में नहीं है सर्वोपरि अतिसूक्ष्म “मैं रमणी हूँ, वे रमण हूँ”

इस प्रकार की उपाधि भी श्रीराधारानी के प्रेम में नहीं। अतएव श्रीराधारानी का प्रेम सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से उपाधि रहित है- अति सुनिर्मल है। श्रीराधा के उसी सुनिर्मल प्रेम को “सत्प्रेम” कहा जाता है, अर्थात् ध्वंस के शत-सहस्र कारण विद्यमान होते हुए भी श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधा का भावबंधन ध्वंस-रहित है।

माधुर विरह में श्रीराधा के दिव्योन्माद के अनुभाव को दृष्टान्त के रूप में देखा जा सकता है। भ्रमर-गीत में भ्रमर के प्रति श्रीराधारानी कहती हैं- “तदलमसितसख्यैयदुस्त्यजस्ततकथार्थः” श्रीराधारानी श्रीकृष्ण प्रीतिकर उनके विरह में जो निदारूण दुःख भोग करती हैं, उससे उनका “निर्वेद” संचारी भाव इतना प्रबल हो प्रकट होता है कि वे भ्रमर के प्रति कहती हैं, “असित के संग सख्य का अब और प्रयोजन नहीं।” निर्वेद संचारी की प्रबलता से “काला” शब्द भी मुख से उच्चारण न कर “असित” कहती हैं, अर्थात् “श्वेतवर्ण के विपरीत जो हैं उनके संग साख्य का मेरा प्रयोजन नहीं है।” भ्रमर जैसे गुंजन करते-करते कहता है- “हे देवि! यदि वह इतना दोष-युक्त है, तब आप सतत उसी की बात क्यों करती हैं?” इसके उत्तर में श्रीमती कहती हैं “अरे! तुम्हारे बन्धु का त्यागकर रहा जा सकता है किन्तु उसकी कथा-रूप सम्पत्ति का त्याग करना अत्यन्त कठिन है। इसके द्वारा प्रेम ध्वंस होने के शत-शत कारण विद्यमान होते हुए भी प्रेम का ध्वंस-राहित्य सूचित होता है।

श्रीराधारानी का यह सत्-प्रेम दर्पण के समान अति स्वच्छ है। रूप ग्रहण योग्यता न्यूनाधिक अनेक वस्तुओं में रहते हुए भी वह दर्पण में ही सर्वाधिक परिमाण में प्रकाशित होती है, कारणरूप तेजोधर्म है- दर्पण भी तेज-स्वरूप है। श्रीकृष्ण का रूप साक्षात् मन्मथ-मदन है एवं श्रीराधा का भाव “मादन” है। यही मादनाख्य-महाभाव ही अप्राकृत नवीन मदन श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य को ग्रहण करने में परिपूर्णतम रूप से उपयोगी है, यही दर्पण के संग श्रीराधाप्रेम की तुलना करने की सार्थकता है। दर्पण का और एक स्वभाव है कि यह सौन्दर्य की दीप्ति को बढ़ाता है एवं रूप-माधुर्य भी दर्पण की स्वच्छता और ज्योतिर्मयता की वृद्धि करता है। उसी प्रकार जैसे श्रीराधारानी का प्रेम श्रीकृष्ण माधुर्य की वृद्धि करता है। वैसे ही श्रीकृष्ण माधुर्य श्रीराधाप्रेम का वर्धन करता है। अतएव श्रीराधाप्रेम के द्वारा श्रीकृष्ण माधुर्यास्वादन की नवनवता की किसी भी रूप से असंगति नहीं होती।

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण अनन्त माधुर्य के सागर हैं, इस माधुर्यास्वादन का एकमात्र उपाय है। ब्रजजन का शुद्ध-माधुर्यमय प्रेम। ह्लादिनी-सार विग्रहा श्रीराधा का मादनाख्य महाभाव ही उस प्रेम का पूर्णतम विकास है। इसी कारण श्रीराधा के सान्निध्य में श्रीकृष्ण का माधुर्यसिन्धु जिस प्रकार उच्छलित अथवा तरंगायित होता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के सान्निध्य में श्रीराधा का प्रेम-सिन्धु भी विपुल रूप से उच्छलित हो उठता है। श्रीकृष्ण निज-मुख से यह व्यक्त करते हैं—

**मन्माधुर्य राधा प्रेम दोहें होड़ करि ।**

**क्षण-क्षणे बाड़े दोहें केह नाही हारी ।**

इस भाव से अचिन्त्य अनन्त वर्धमान श्रीकृष्णरूप है तभी मदनमोहन रूप है। 'राधासंगे यदा भाति तदा मदनमोहनः।'

प्रवाह का जल जिस प्रकार प्रतिक्षण नूतन होता है, श्रीकृष्ण का माधुर्य भी उसी प्रकार प्रतिक्षण अभिनव होता है। "आमार माधुर्य नित्य नव नव हय।" भक्तजन अपने प्रेम के अनुरूप ही उस माधुर्य का आस्वादन लाभ करते हैं। "स्व-स्व प्रेम अनुरूप भक्त आस्वादय ॥" इसके पूर्व कहा गया है, श्रीराधा ही सम्पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन करती हैं, अन्य कोई भी श्रीकृष्ण माधुर्य का सम्पूर्ण रूप से आस्वादन नहीं कर पाता। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जो नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित है, उसे सभी समभाव से ग्रहण कर सकते हैं। प्रत्यक्ष वस्तु किसी भी प्रकार बाधित नहीं होती। लोक-प्रसिद्धि भी है— "प्रत्यक्षम् केन बाध्यते" अर्थात् प्रत्यक्ष वस्तु को किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। तब केवल श्रीराधा ही श्रीकृष्ण माधुर्य का समग्र आस्वादन करती हैं, यह बात किस प्रकार सुसंगत है? इसके उत्तर में कहा गया है—

**कृष्णोर माधुर्य नित्य नव नव हय ।**

**स्व स्व प्रेम अनुरूप भक्त आस्वादय ॥"**

अभिप्राय यह है कि, वस्तु का अस्तित्व ही वस्तु ग्रहण का कारण नहीं, अर्थात् नेत्रों के समक्ष वस्तु रहने पर उसे ग्रहण करा जा सकता है ऐसा नहीं है प्रत्युत इन्द्रिय-शक्ति ही वस्तु ग्रहण के प्रति कारण है। जिसकी जिस परिमाण में इन्द्रिय शक्ति है वह तदनुरूप ही वस्तु ग्रहण करने में सक्षम है। नेत्रहीन व्यक्ति के सम्मुख वस्तु होने पर वह उसका दर्शन नहीं कर पाएगा, उसी प्रकार सम्मुख विद्यमान होते हुए भी सभी श्रीकृष्ण-माधुर्य का पूर्णास्वादन

कर पाएँगे ऐसा नहीं है। दर्शक का प्रेम ही है श्रीकृष्ण माधुर्य ग्रहण के प्रतिकारण। प्रेमविहीन किसी भी प्रकार श्रीकृष्ण माधुर्य का आस्वादन नहीं कर सकता। प्रकट लीला काल में असुर इस कथन का दृष्टान्त हैं। माधुर्य-मूर्ति श्रीकृष्ण के दर्शन करके भी उनका माधुर्यास्वादन तो दूर रहा, वे क्रोध व ईर्ष्या से उनका हृदय जल उठा था। और फिर प्रेम की जाति और परिमाण के अनुरूप ही श्रीकृष्ण-माधुर्य का आस्वादन सम्भव होता है। श्रीराधारानी का प्रेम जाति एवं परिमाण में परम-महान है, अतः एकमात्र श्रीराधा ही समग्र श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन में समर्था हैं। इसी कारण निज-माधुर्य-लुब्ध श्रीकृष्ण की श्रीराधारानी के भाव एवं कान्ति ग्रहण के निमित्त इच्छा जागी।

दर्पणादये देखि यदि आपन माधुरी।  
आस्वादिते हय लोभ आस्वादिते नारि॥  
विचार करिये यदि आस्वाद उपाय।  
राधिका स्वरूप हैते तबे मन धाय॥३८॥

दर्पण आदि में श्रीकृष्ण अपना निज रूप-माधुर्य दर्शन कर उसके आस्वादन के निमित्त प्रलुब्ध हो गए। किन्तु आस्वादन प्राप्त कर नहीं पाए। आस्वादन की चेष्टा करने पर श्रीराधारानी का स्वरूप ग्रहण करने के निमित्त इच्छा जागी। श्रीराधा का मादनाख्य-महाभाव ही समग्र श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन के प्रति कारण है, यह बात हम इसके पूर्व उल्लेख कर चुके हैं। वही मादनाख्य महाभाव ही श्रीराधारानी का स्वरूप है। “महाभावोज्ज्वलो-च्चिन्तारत्नोदभावितविग्रहाम्” “महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप।” इत्यादि महाजन वाक्यों से यह जाना जाता है। भाव एवं स्वरूप एक ही वस्तु हैं, स्वरूप ग्रहण करने से ही भाव ग्रहण होता है, तभी कहते हैं “राधिका स्वरूप हैते तबे मन धाय।”

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि स्वयं के सौन्दर्य-माधुर्य के प्रति कोई प्रलुब्ध नहीं होता, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं के माधुर्य के प्रति लुब्ध क्यों हुए? इसी के उत्तर में कहा जा रहा है-

कृष्णमाधुर्यैर एक स्वाभाविक बल।  
कृष्ण आदि नरनारी करये चञ्चल॥  
श्रवणे दर्शने आकर्षये सर्व्वमन।  
आपना आस्वादिते कृष्ण करये यतन॥३९॥

(चै.च.)

यहाँ श्रीकृष्ण माधुर्य कहने पर ब्रजविहारी श्रीकृष्ण का ही माधुर्य समझना होगा, कारण श्रीब्रजेन्द्रनन्दन का असाधारण माधुर्य चतुष्टय एकमात्र ब्रजलीला में ही विद्यमान है। श्रीमत् रूप गोस्वामीपाद लिखते हैं-

सर्वाद्भुतचमत्कार लीलाकल्लोलवारिधिः ।  
 अतुल्यमधुर प्रेममण्डितप्रियमण्डलः ॥  
 त्रिजगन्मानसाकर्षि-मुरलीकलकूजितः ।  
 असमानोर्द्ध-रूपश्री-विस्मापित-चराचरः ॥  
 लीला प्रेम्ना प्रियाधिकां माधुर्यं वेणुरूपयोः ।  
 इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥40 ॥

(भ.र.सि.-2/1/41-43)

(1) सभी को चमत्कृत करने वाली कल्लोलित लीलारस सिन्धु, (2) (अतुलनीय माधुर्ययुक्त महाभाव प्रेम-द्वारा सभी भक्तों का मण्डनकारी), (3) मुरली के अव्यक्त मधुर निनाद से त्रिजगत का चित्ताकर्षण और (4) असमोर्ध्व रूप-माधुर्य से स्थावर-जंगम समग्र विश्व का विस्मयोत्पादन। लीला, प्रेममय प्रियजनों के संग विद्यमानता और रूपमाधुर्य यह चार ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के असाधारण गुण हैं। “चतुर्धामाधुरीस्तस्या ब्रज एव विराजते।” ब्रजेन्द्रनन्दन\* श्रीकृष्ण के माधुर्य की ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि यह माधुर्य स्वयं श्रीकृष्ण के लिए भी आकर्षक केवल आकर्षक ही नहीं उनके लिए भी अतीव विस्मयकारी है। श्रीमद्भागवत कहती है- “विस्मापनम् स्वस्य च।” अर्थात् श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी श्रीकृष्ण को भी विस्मित करती है।

“रूप देखि आपनार, कृष्णोर हय चमत्कार  
 आस्वादिते मने उठे काम।”

(चै.च.)

कृष्ण आदि” इस “आदि” के अर्थ से श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य में भूमा-पुरुष का भी आकर्षण है, यह श्रीमद्भागवत से जाना जाता है। श्रीमद्भागवत 10/89 अध्याय में वर्णित है, एक द्वारकावासी ब्राह्मण के पुत्र को जन्म लेते ही भूमा पुरुष श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से अपने लोक को ले जाता है। उसकी धारणा है कि मृत्युलोक में आकर उसे श्रीकृष्ण दर्शन होना असम्भव है। श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के देव हैं; अवश्य ही ब्राह्मण के हित के लिए

टिप्पणी : \*मेरे द्वारा प्रणीत “माधुर्य तत्त्व विज्ञान” ग्रन्थ इस माधुर्य चातुष्टय के सन्दर्भ में दृष्टव्य है।

बालक को लेने भूमापुरुष के लोक में आएँगे। उससे उसे श्रीकृष्ण दर्शन का सौभाग्य लाभ होगा। श्रीकृष्ण ने भी पुत्रशोकातुर ब्राह्मण के हित के लिए, विशेषतः भूमापुरुष की इच्छापूर्ण करने के लिए अर्जुन के संग भूमापुरुष के लोक में गमन किया। भूमापुरुष ने उनके दर्शन कर “द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुना” इत्यादि श्लोक में स्वयं स्वीकार किया कि वह श्रीकृष्ण दर्शन की इच्छा से ही ब्राह्मण कुमार को निजलोक लेकर गया था। श्रीकृष्ण माधुरी जब स्वयं श्रीकृष्ण को एवं भूमापुरुष तक को, स्वयं की ओर आकर्षित करती है तब वह कोटि-कन्दर्प-विमोहन श्रीकृष्ण रूप रमणीगण को आकर्षित करेगा इसमें सन्देह कहाँ है। श्रुतियों की श्रीकृष्णरूप के प्रति आकर्षण की बात वृहद्-वामन पुराण में वर्णित है-

**कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः।**

**कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्य संशयः॥४१॥**

श्रुतियों ने कहा, “हे श्रीकृष्ण! कोटि-कन्दर्प लावण्यमय तुम्हारा माधुर्य दर्शन कर कामिनी भाव से तुम्हें कान्तरूप से प्राप्त करने के लिए हमारा चित्त कन्दर्प वेग से क्षुब्ध हो रहा है।” यहाँ तक कि जब साक्षात् वैकुण्ठेश्वरी की श्रीकृष्ण माधुर्य के प्रति आकृष्ट होने की बात जानी जाती है तब अन्य रमणियों की तो बात ही क्या। श्रीमद्भागवत कहती है-

**यदवाञ्छया श्रीर्ललना चरत तपो, विहास कामान् सुचिरमधृतव्रता।**

(भागवत 10/16/36)

अर्थात् “कमलादेवी श्रीकृष्ण की चरणरेणु प्राप्त करने की आकांक्षा से वैकुण्ठ विलास आदि भोग त्यागकर चिरकाल तक वृन्दावन में तपस्या करती हैं।” अतएव विश्व के नरगण से भूमापुरुष, स्वयं श्रीकृष्ण तक, नाग पत्नियों से कमलादेवी, महाभाववती गोपियों तक सभी नर-नारी की चित्ताकर्षक अथवा चित्त-चांचल्यकर है श्रीकृष्ण माधुरी। “दर्शने श्रवणे आकर्षय सर्वमन” दर्शन की तो बात ही नहीं, दर्शन के अतिरिक्त उनके रूप-गुण-लीलामाधुर्य के श्रवण से ही श्रवणकारी के चित्त में श्रीकृष्णमाधुरी आस्वादन के निमित्त विपुल लालसा जाग्रत होती है। जो सतत श्रीकृष्ण माधुर्य का अनुभव अथवा आस्वादन प्राप्त करते हैं उन सभी माधुर्यानुभवी महत्-गणों के मुख से श्रीकृष्ण कथा श्रवण करने से श्रीकृष्णमाधुरी आस्वादन के निमित्त विपुल लोभ जाग्रत होता है। नर-नारी की तो बात ही क्या- पशु, पक्षी, वृक्ष-लता आदि तक श्रीकृष्ण-माधुर्य से पुलकित हो जाते हैं-

त्रैलोक्य सौभगमिदन्व निरीक्ष्यरूपम्  
यद्रोद्विजदुममृगा पुलकान्यविभ्रन्

(भा. 10/29/40)

गोपियाँ कहती हैं, 'हे कृष्ण, तुम्हारा यह त्रैलोक्य सुन्दर रूप दर्शन कर-  
गौ-समूह, हरिण आदि मृग समूह, पक्षी यहाँ तक की वृक्ष आदि भी पुलकित  
हो जाते हैं।'

श्रीकृष्ण माधुर्य की यह एक असाधारण स्वाभाविक शक्ति है कि उनके  
संग किसी भी रूप से किसी भी इन्द्रिय का योग होने से, वह उसके आस्वादन  
के निमित्त लोभ उत्पन्न करती है। विश्व में ब्रह्मा से एक शूद्र कीट तक,  
चित्त-जगत में लक्ष्मीदेवी, भूमापुरुष यहाँ तक की श्रीकृष्ण स्वयं भी अपने  
माधुर्य की इस स्वाभाविक शक्ति से आकृष्ट होते हैं। श्रीकृष्ण जग दर्पण  
आदि में निज-माधुर्य का श्रवण करते हैं तब स्व-माधुर्यास्वादन के निमित्त  
प्रलुब्ध हो जाते हैं। श्रीकृष्ण-माधुर्य अपने स्वाभाविक सामर्थ्य से श्रीकृष्ण  
के अन्तर में तीव्र लालसा की सृष्टि कर उन्हें चंचल कर देता है।

श्रीकृष्ण माधुर्य का और एक असाधारण एवं अद्भुत स्वभाव है कि  
जैसे संसार में लोभनीय वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर वस्तु विषयक आकांक्षा  
की निवृत्ति हो जाती है परन्तु श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन करने पर आकांक्षा  
निवृत्ति होना तो दूर अपितु आकांक्षा (पिपासा) उत्तरोत्तर वर्धित होती जाती  
है। इस माधुर्य का निरन्तर आस्वादन करते रहने पर भी तीव्र आकांक्षा का  
बिन्दु मात्र भी उपशम नहीं होता। जितना आस्वादन उतनी पिपासा, जितनी  
पिपासा उतना आस्वादन।

“ए माधुर्ययामृत सदा जेई पान करे ।  
तृष्णा शांति नहे तृष्णा बाढ़े निरन्तर ॥”

(चै० च०)

केवल भक्तगण ही कृष्ण-माधुर्य का आस्वादन करते हैं, कारण प्रेम ही  
कृष्ण माधुर्य आस्वादन का एकमात्र हेतु है यह हमने पूर्व में ही कहा है। किन्तु  
सभी भक्तों को कृष्ण माधुर्य का एक समान आस्वादन प्राप्त नहीं होता एवं  
एक समान रूप से तृष्णा-वृद्धि भी नहीं होती। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य  
और मधुर इन पंचविध भावों के भक्तों के मध्य शान्त भाव के भक्तगण जो  
भगवत् माधुर्य अनुभव करते हैं उसमें कोई वैचित्री नहीं होती, कारण उनका



भाव ऐश्वर्य प्रधान होने के कारण उन्हें यथायथ श्रीकृष्ण-माधुर्य का आस्वादन ही नहीं होता।

ब्रज में दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर इन चार प्रकार के भावों के भक्तगणों को उनके भावानुरूप कृष्णमाधुर्य का आस्वादन लाभ होता है एवं उनके आस्वादन की पिपासा एवं कृष्ण माधुरी भी अनुक्षण वर्धित होती है। भाव की निविड़ता के संग आस्वादन का तारतम्य है। परकीया-भाववती ब्रजबालाओं को महाभाव से ही सर्वाधिक श्रीकृष्ण माधुर्य लाभ होता है एवं उनकी आस्वादन पिपासा की सर्वाधिक वृद्धि होती है और उनके सम्मुख श्रीकृष्ण-माधुरी निःसीम भाव से वर्धित होती है। इसी कारण श्रीचैतन्यचरितामृत में उनका ही दृष्टान्त प्रदत्त है-

अतृप्त हड़या करे विधिरे निन्दन।  
अविदग्ध-विधि भाल ना जाने सृजन॥  
कोटि नेत्र नाहि दिल सवे दिल दुड़।  
ताहते निमेष कृष्ण कि देखिब मुई॥

(श्रीमद्भागवत से (10/82/39))

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं  
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।  
दृगभिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-  
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्॥42॥

“जो ब्रजांगनाएँ श्रीकृष्ण दर्शन में बाधा उत्पन्न होने के कारण नयनों की पलकों के सृष्टा विधाता को अभिशाप देती हैं, उन्होंने बहुत समय बाद कुरुक्षेत्र में उनके चिर-अभीष्ट श्रीकृष्ण के दर्शन कर उन्हें नयनरूपी द्वारों से हृदय में धारण कर गाढ़ आलिंगन किया। इस दर्शन एवं आलिंगन से उनमें जो जिस भावदशा का उदय हुआ था। वह श्रीकृष्ण के संग नित्य मिलिता रुक्मिणी प्रभृति महिषियों के लिए भी दुर्लभ है।” यह ब्रजगोपिकागणों के ही महाभाव का अनुभाव है। एकमात्र इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन कर महिषीगण अथवा लक्ष्मी इत्यादि कोई भी इतना अधिक अतृप्त नहीं हुई कि विधाता को शाप दे सकें। विशेषतः ब्रजांगनागण नरलीला में एक साधारण मानवी का ही अभिमान पोषण करती है अतः उनके निकट सृष्टिकर्ता विधाता परम पूज्य हैं। उन्हीं ब्रह्मा की निन्दा करने से उनकी कृष्ण माधुर्य दर्शन से अतृप्ति जनित असहनशीलता की पराकाष्ठा ही प्रकाश पाती है।

वस्तुतः यह कोई नहीं सोचता कि पलक झपकने से दर्शन में कोई बाधा उत्पन्न होती है। किन्तु महाभाववती ब्रज-गोपिकाओं की श्रीकृष्ण दर्शन की ऐसी आकुल पिपासा है कि नयनों की पलक भी उनके कल्पकाल परिमित बाधा प्रतीत होती है। वे सोचती हैं, विधाता का कर्तव्य है कि जो श्रीकृष्ण दर्शन करते हैं उन्हें कोटि-कोटि निष्पलक नेत्र दान करें, हमें मात्र दो नेत्र दिए उन पर भी पलकों की बाधा दी है। अतएव सृष्टिकर्ता विधाता की सृष्टि विषय में कोई निपुणता (कौशल) नहीं है। गोपिकाओं की यह व्याकुल पिपासा ही उनके कृष्ण माधुर्य आस्वादन-चमत्कारिता का परिमाणक है। इसी कारण कंस महाराज की रंगभूमि में श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन करके भी मथुरा-नागरीगण गोपिकाओं के भाग्य की प्रशंसा करती हैं—

**गोप्यस्तुपः किमचरन् यदमूक्ष्य रूपं  
लावण्यसारमसमोर्द्धमनन्यसिद्धम् ।  
दृग्भिः पिवन्त्यनुसवाभिनरंवम् दुराप-  
मेकान्तधाम यशसः प्रिय ऐश्वरस्य ॥**

( भा. 10/44/14 )

मथुरा नागरियाँ कहती हैं, “ब्रजांगनाओं ने ऐसी कौन सी तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप इन लावण्य सार, असमोर्द्धव (जिनके समान और अधिक नहीं) अनन्य सिद्ध (जो अन्यत्र कहीं सम्भव नहीं हो सकता), प्रति क्षण-क्षण नूतन, दुर्लभ एवं यश, सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य के एकमात्र आश्रय स्वरूप श्रीकृष्ण के इस रूप का नयनों द्वारा आस्वादन करती थी।”

इस श्लोक का तात्पर्य यह है, कोई मथुरा नगरी श्रीकृष्ण के दर्शन कर अपनी संगिनियों से कहने लगीं— “सखियों, श्रीकृष्ण जो माधुर्य सम्पदा लेकर मथुरा में उपस्थित हुए हैं इस माधुर्य से ब्रज का माधुर्य बहुत अधिक है, क्योंकि गोपिगण परम पतिव्रता, धैर्य-गाम्भीर्यशालिनी होते हुए भी उस माधुर्य के आस्वादन के कारण धैर्य, लज्जा, पातिव्रत धर्म आदि विसर्जन कर आकुल पिपासा से उन्मादिनी हुई हैं। यदि हमारे निकट वही माधुर्य उपस्थित होता, तब हम सब भी सर्वत्याग कर आस्वादन में गाढ़ आवेश लाभ करतीं। तभी सोचती हूँ कि गोपियों का भोग्य माधुर्य तो ब्रज में ही है। इसी अभिप्राय से वे “अदस” शब्द की उत्तर षष्ठी विभक्ति का “अमुश्य” पद प्रयोग कर रही हैं। वस्तु यदि नेत्रों के समक्ष हो तो ‘इदम्’ शब्द का प्रयोग होता है— यदि नेत्रों के अगोचर हो तो ‘तत्’ शब्द का प्रयोग होता है और यदि वस्तु दिखाई न देती हो

तो 'अदस' शब्द का प्रयोग होता है। अर्थात् वह माधुर्य ब्रज में ही है एवं गोपियाँ ही उसका आस्वादन करती हैं, इसी अभिप्राय से 'पिबन्ति' इस वर्तमान काल की क्रिया पद का प्रयोग किया गया है।

उसी कृष्ण माधुर्य का ही वे छः विशेषणों द्वारा परिचय कराती हैं। प्रथमतः कहती हैं, वह श्रीकृष्ण माधुर्य 'लावण्यसारम्' (लावण्य का सार है) अर्थात् ऐसा कान्तियुक्त जैसे प्रत्येक (चमकदार) वस्तु का श्रेष्ठ अंश उसमें हो। अर्थात् श्रीअंग-कान्ति चमक-दमक की परावधि स्वरूप हैं। यदि प्रश्न उठे कि ऐसा लावण्यसार तो अन्यान्य भगवत् स्वरूपों में भी हो सकता है तो इसके उत्तर में कहते हैं "असमोर्द्धवम्" अधिक होना तो दूर की बात है इसके समान माधुर्य भी किसी भगवत् स्वरूप में नहीं। यदि कोई कहे अन्य भगवत् स्वरूपों में जो माधुर्य नहीं वह श्रीकृष्ण में कहाँ से आया? इसी कारण कहती हैं- 'अनन्यसिद्धम्' यह माधुर्य अन्य किसी भगवत् स्वरूप से नहीं आया यह श्रीकृष्ण में स्वतः सिद्ध है, कारण वे स्वयं भगवान् हैं सभी भगवत् स्वरूपों के मूल एवं अंशी। अतएव निखिल ऐश्वर्य के 'एकान्तधाम' अर्थात् नित्य आश्रय! यदि कोई प्रश्न करें, एक ही रूप का पुनः-पुनः दर्शन करने पर भी ब्रजदेवियों के दर्शन में वह चमत्कारित्व किस प्रकार जन्मता है? तभी कहती हैं "अनुसवाभिनवम्" अर्थात् प्रतिक्षण-प्रतिक्षण कृष्णरूप नूतन है। अतः गोपीगण के अविराम श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य के दर्शन एवं आस्वादन में चमत्कारिता का कोई अभाव नहीं होता। फिर कोई कह सकता है, जब वह माधुर्य ब्रज में ही है तो ब्रज के सभी प्रेमिकगण उसका आस्वादन करेंगे, केवल गोपियों का ही वह भोग्य है यह बात क्यों कही गई? तभी कहती हैं "दूरापम्" अर्थात् अन्य ब्रजप्रेमियों में महाभाव नामक प्रेम का अभाव होने के कारण एकमात्र महाभाववती ब्रजगोपियाँ ही साक्षात् शृंगार श्रीकृष्ण की इस रूपमाधुरी का आस्वादन करती हैं, अन्यो के लिए यह दुर्लभ है। सखियों, ब्रजगोपियों ने कौन सी अपूर्व तपस्या की थी वह यदि किसी अनुभवी व्यक्ति से जान पाती, तब हम सभी भी वही तपस्या कर गोपी हो जन्म ग्रहण करतीं और वह माधुर्य आस्वादन कर पाती। भाव के आवेग में मथुरा नागरियाँ तपस्या की बात कहती हैं (परन्तु) वस्तुतः किसी भी तपस्या के द्वारा गोपी होकर श्रीकृष्ण माधुर्य का आस्वादन करना सम्भव नहीं है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की नित्य-प्रेयसियाँ हैं वे नित्यकाल से श्रीकृष्ण माधुर्य का आस्वादन करती हैं।

जो रागानुगा भक्ति के आश्रय में ब्रजगोपिकाओं के आनुगत्य में भजन करते हैं, वे ही भजन की सिद्धि होने पर ब्रजगोपी हो जन्म ग्रहण करते हैं एवं उनके आनुगत्य में श्रीकृष्ण माधुर्यास्वादन में सक्षम होते हैं। अतएव—

अपूर्व माधुरी कृष्णोर अपूर्व तौर बल।  
जाहार श्रवणे मन हय टलमल॥  
कृष्णोर माधुरी कृष्णे उपजाय लोभ।  
सम्यक् आस्वादिते नारे मने रहे क्षोभ॥  
एइत द्वितीय हेतु कैल विवरण।  
तृतीय हेतुर एवे शुनह लक्षण॥44॥

(चै.च.)

माधुर्यमूर्ति श्रीकृष्ण की अपूर्व माधुरी है। यह माधुरी एकमात्र ब्रजेन्द्रनन्दन के अतिरिक्त अन्य किसी भगवत् स्वरूप में नहीं। इन ब्रजेन्द्रनन्दन के असाधारण माधुर्य की ऐसी अपूर्व शक्ति है कि यह स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन के चित्त में भी आस्वादन के निमित्त दुर्वार लोभ की सृष्टि करती है, जो ब्रजलीला में वे चेष्टा करके भी आस्वादन नहीं कर पाते; इसी कारण उनके चित्त में विपुल शोभ का उदय होता है। यही द्वितीय वाञ्छ “कैछन मोर मधुरिमा” के उद्गम का कारण है। अब यहाँ तृतीय वाञ्छ का “कैछन भावे तिहों मोर” अर्थात् श्रीकृष्ण को अनुभव कर श्रीराधारानी को कितना सुख अथवा आनन्द होता है, इस वाञ्छ का उल्लेख करते हुए प्रथमतः गोपियों के सुख अथवा आनन्द का स्वरूप निरूपण करते हैं कारण ऐसा न होने पर गोपी-शिरोमणि श्रीराधारानी के सुख का स्वरूप ज्ञान नहीं होगा। सर्वप्रथम कहते हैं—

गोपीगणेर प्रेम अधिरूढ़ भाव नाम।  
विशुद्ध निर्मल प्रेम कभु नहे काम॥45॥

(चै.च.)

स्वसुखवाञ्छ ही सुख का कारण है किन्तु गोपिकाओं को स्वसुख कामना के बिना भी श्रीकृष्ण अनुभव जनित सुखोल्लास प्राप्त होता है। कारण के बिना ही कार्योत्पत्ति होना (कार्य का हो जाना), यही गोपीप्रेम की विशेषता है। सूर्य जिस प्रकार अपनी किरण-माला द्वारा निखिल विश्व के अन्धकार को विदूरित कर वस्तु प्रकाश करता है, उसी प्रकार अनुराग की जो अवस्था निःसीमता प्राप्त कर अनुरागी के हृदय में व्याप्त स्वसुख तात्पर्य रूपी अंधकार को विदूरित कर अपने प्रत्येक सम्बन्धी जन के हृदय को अनुरागमय

कर देता है उसी अवस्था का नाम महाभाव है। गोपियों में रूढ़ एवं श्रीराधारानी और उनके गणों में रूढ़ की अपेक्षा भी परमोत्कर्ष प्राप्त अधिरूढ़ महाभाव है। सर्वोपरि श्रीराधारानी में अधिरूढ़ महाभाव का चरम विकास 'मादनाख्य' महाभाव एवं विरह में मोहन भाव और उसका चरम अनुभाव दिव्योन्माद आदि प्रकाश पाते हैं।\*

'काम' और 'प्रेम' दोनों शब्द इच्छ धातु से उत्पन्न हैं। "प्री" धातु के उत्तर में "क्" प्रत्यय करने से 'प्रिय' पद सिद्ध होता है, उसके उत्तर भाव में 'इमन्' प्रत्यय करने से "प्रेम" यह पद सिद्ध होता है। और फिर 'कम्' धातु के उत्तर में ('घ' उत्पन्न) प्रत्यय करने से 'काम' शब्द उत्पन्न होता है। इन दोनों धातु का अर्थ है 'इच्छ'। यद्यपि 'काम' एवं 'प्रेम' दोनों इच्छ धातु से उत्पन्न होते हैं फिर भी 'काम' स्वसुख वांछापूर्ण है एवं प्रेम स्वसुख वांछा विहीन श्रीकृष्ण इन्द्रिय सुख वांछामय है।

अतएव काम एवं प्रेम में अर्थगत विषमता न रहते हुए भी तात्पर्यगत विपुल विषमता है। काम आत्मेन्द्रिय-सुखवासनामय लोहे के समान मलिन है एवं प्रेम कृष्णेन्द्रिय सुखवासनामय शत-शत बार तपाए हुए स्वर्ण के समान उज्वल है। काम (आत्मसुख) आत्मेन्द्रिय सुखवासना के कारण अमानिशा का अंधकार है, प्रेम कृष्णेन्द्रिय सुखवासना के कारण स्वप्रकाश दिवालोक है।

काम आत्मेन्द्रिय सुखवासना का दुर्गन्धमय नरक और प्रेम कृष्णेन्द्रिय प्रीति वासना का नन्दन कानन। अतः गोपियों का प्रेम 'विशुद्ध निर्मल' है। यद्यपि विशुद्ध एवं निर्मल दोनों शब्द एकार्थ वाचक हैं तब भी गोपिकाओं के प्रेम में अति सूक्ष्म-सूक्ष्म उपाधियों का भी अभाव है यह समझाने के लिए विशुद्ध निर्मल प्रेम कहा गया है। यद्यपि गोपिकाओं के चित्त में स्वसुखवासना रूप काम की गंध भी नहीं है तब भी उनके चित्त में श्रीकृष्ण अनुभव जनित विपुल सुखोल्लास प्रकाश पाता है, इस विषय में बाद में विस्तार से चर्चा की जाएगी। अतएव गोपी-शिरोमणि श्रीराधा का श्रीकृष्ण अनुभव जनित सुखोल्लास दर्शन कर श्रीकृष्ण का उसके आस्वादन के निमित्त वांछा का उद्गम होना कोई विचित्र बात नहीं। प्रश्न हो सकता है, गोपिका के प्रेम को भी तो "काम" नाम दिया जाता है? श्रीमद्भागवत में कहा गया है- "गोप्यः

---

टिप्पणी : \* श्रीउज्वल नीलमणि ग्रन्थ में महाभाव के विचित्रतामय प्रकाश देखें।

कामात्” (भा. 7/1/30)। हाँ, किसी एक विशेष कारण से ही गोपीप्रेम ‘काम’ नाम प्राप्त करता है—

आसम् प्रेमविशेषोऽयं प्राप्ताः कामपि माधुरीम्।

तत्तत्क्रीड़ा-निदानत्वात् काम इत्युचते बुधैः ॥45/अ॥

(भ. र. सि. 1/2/284)

अर्थात् गोपियों का प्रेम विशेष किसी अनिर्वचनीय माधुरी को प्राप्त कर उस-उस क्रीड़ा का कारण होता है सो पण्डित जन इस प्रेम विशेष को “काम” संज्ञा (आशय) देते हैं। काम व्यभिचारी-बहु विषयगामी है, प्रेम एक निष्ठ है; उसकी गति सिन्धुगामी गंगा प्रवाह के समान अविच्छिन्न श्रीकृष्ण की ओर है। काम को हेयांशस्वसुखानुसंधान से वर्जित कर यदि उसके द्वारा भगवद् सुख-अनुकूलता का अनुसंधान हो, तब यही काम शास्त्रों में परम-पुरुषार्थ रूप में बहुत प्रशंसित होता है। तब केवल काम का उपादेय (उपयोगी) अंश पिपासा ही शेष रहती है एवं वही अदम्य वेगवती पिपासा प्रेम के अनुगत होकर साध्य वस्तु को नए-नए भाव से आस्वादन कराती है।

सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।

काम क्रीड़ा-साम्य तार कहि काम नाम ॥46॥

(चै.च.)

बाहरी रूप से क्रीड़ा समान है किन्तु भीतर आत्मेन्द्रिय सुखवासना का अत्यन्त अभाव है— यह गोपीप्रेम का अति दुर्ज्ञेय रहस्य है। प्राकृत जगत में भी जिस प्रकार कार्य समान होते हुए भी लक्ष्य में भेद देखा जाता है उसी प्रकार ‘काम’ एवं ‘प्रेम’ में अर्थगत भेद न होते हुए भी उद्देश्यगत विपुल भेद विद्यमान है। जैसे किसी उद्यान में दो व्यक्ति पुष्प चयन कर रहे हैं, एक व्यक्ति अपनी घ्राणेन्द्रियों की संतुष्टि के लिए एवं दूसरा व्यक्ति भगवत् सेवा के निमित्त कुसुम संग्रह कर रहा है। दोनों के कार्य में कोई भेद नहीं, किन्तु प्रथम व्यक्ति का उद्देश्य निजेन्द्रिय भोग रूप मायिक वृत्ति होने के कारण बंधन की सृष्टि करेगा एवं द्वितीय व्यक्ति का उद्देश्य भगवत् सेवा अथवा भगवत् भक्तिरूप स्वरूप शक्ति की वृत्ति होने के कारण प्रेमोन्मेष में सहायक होगा। दोनों में आकाश-पाताल का पार्थक्य विद्यमान है। श्रीराधा-भाव में महाप्रभु की उक्ति—

ना गणि आपन दुःख, सबे वाञ्छि तार सुख

तार सुखे आमार तात्पर्य ॥47॥

मोरे यदि दिले दुःख, ताँ हड़ल महासुख,  
सेइ दुःख मोर सुखवर्ध्य ॥47॥

(चै.च.)

ब्रजगोपियों की समर्था रति है। सम्भोग इच्छा को रति के अनुगत कर रखना ही समर्था-रति का लक्षण है जिस प्रकार अग्नि के संग तादात्म्य प्राप्त लोहा का निज वर्ण एवं शीतलता गुण अपसारित हो जाता है और उसमें अग्नि की दाहिका शक्ति एवं प्रकाश गुण संक्रमित हो जाता है, उसी प्रकार रति अथवा श्रीकृष्ण के सुखविधान के निमित्त प्रगाढ़ अनुराग के सहित सम्भोग इच्छा तादात्म्य प्राप्त होने से निज सुख इच्छा सम्पूर्ण भाव से दूरीभूत हो जाती है एवं हृदय अनुराग के कुंकुम वर्ण से रंजित हो जाता है। वहाँ रति की सम्पूर्ण मुख्यता रहती है एवं सम्भोगेच्छा गौण हो जाती है।

कञ्चिद्विशेषमायान्त्या सम्भोगेच्छा ययाभितः।

रत्या तादात्म्यमापन्ना सा समर्थेति भण्यते ॥48॥

(उ.नी.)

श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद इस श्लोक की टीका में लिखते हैं- “सम्भोगः खलु द्विविधः- प्रियजन द्वारा स्वेन्द्रियतर्पणसुखमयः स्वद्वारा तदिन्द्रियतर्पणसुखभावनामयश्चेति। तत्र पूर्वेच्छा कामः-स्वहितोमुखत्वात्। उत्तरेच्छात् रतिः प्रियजनहितोन्मुखत्वात्। तत्र चोत्तरसम्भोगे प्रियजनस्पर्शसुखं भवतेयवेति। यद्यपि तदिच्छा दुर्वारा, तथापि बलवत्तवात् किञ्चिद्विशेषमायान्त्या यया रत्या मिलितस्तवात्तत्तायात्मयमापन्ना भवति सः रतिः सवर्वातिक्रमिसामर्थयात् समर्थेति भन्यात् इति” लोचनरोचनी) तात्पर्य यह है, सम्भोग दो प्रकार का है- (1) प्रियजन द्वारा निजेन्द्रिय तर्पण सुखमय, (2) निजद्वारा प्रियजन की इन्द्रिय तर्पण सुख भावनामय पहला काम, क्योंकि उसमें निजेन्द्रिय सुखवासना रहती है। दूसरा रति क्योंकि उसमें प्रियजन की इन्द्रियसुख भावना विद्यमान है।

(यद्यपि उत्तरेच्छा अथवा रति में प्रियजन का स्पर्श आदि सुख अवश्य ही प्राप्त होता है, कारण वह अतिशय दुर्वार है तथापि रति के अतिशय बलवान होने के कारण वह कोई अनिर्वचनीय वैशिष्ट्य प्राप्त कर रति के संग मिल जाता है एवं तादात्म्य प्राप्त करता है)-

अन्यान्य मधुरारति (साधारणी, समंजसा) की अपेक्षा अधिक सामर्थ्य होने के कारण उसे ‘समर्थारति’ संज्ञा दिया गया है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की सेवा

कर रही कृतकृतार्थ होती हैं, निज-सुख के प्रति उनकी बिलकुल (चिंता) लक्ष्य नहीं है। “कान्त-सेवा सूख पूर, संगम हड़ते सुमधूर, यह बात केवल ब्रजबालाएँ ही कह सकती हैं। अतः ब्रजबालाओं का अति विशुद्ध निष्काम प्रेम ही “काम” आख्या प्राप्त करता है तभी श्रीउद्धव प्रभृति परम भगवत् प्रियगण भी इस काम प्राप्ति के निमित्त आकांक्षा करते हैं।

प्रेमेर गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्।  
इत्युच्छद्भवाद्योऽप्येतं भगवत्प्रियाः ॥49 ॥

(गौतमीय तन्त्र)

जो श्रीकृष्ण सुख साधन के निमित्त जितना बड़ा त्यागकर पाते हैं, वे उतने ही बड़े प्रेमी हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण सुख साधन के निमित्त प्राणों की अपेक्षा अधिक दुस्त्यज्य आर्य पथ आदि का परित्याग कर देती हैं-

लोकधर्म वेदधर्म देह धर्म कर्म।  
लज्जा धैर्य देहसुख आत्मसुख अमर्म॥  
दुस्त्यज आर्यपथ निज परिजन।  
स्वजने करये जत ताड़न भर्त्सन॥  
सर्वत्याग करि करे कृष्णोर भजन।  
कृष्णसुखहेतु करे प्रेम सेवन॥  
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग।  
स्वच्छ धौत वस्त्रे जैछे नाहि कोन दाग ॥50 ॥

(चै.च.)

गोपीगण लौकिक आचरण, वेदविहित वर्णाश्रम धर्म प्रभृति नियमित कार्य; स्नान, भोजन, शयन, निद्रा आदि देह धर्म; कायिक एवं मानसिक चेष्टारूप कर्म; लज्जा अर्थात् अकरणीय कार्य में घृणा बुद्धि, धैर्य-चित्त चांचल्य के कारण उपस्थित होने पर भी स्थिर रहना, देहसुख-भोग-विलास आदि; आत्मसुख अर्थात् देह के अतिरिक्त आत्म अनुभव जनित परमानन्द; आर्यपथ अथवा स्त्रीजन के लिए प्राणों की अपेक्षा भी अधिक दुस्त्यज्य पातिव्रत-धर्म; पिता, माता, आत्मीय स्वजन आदि; निज जन द्वारा ताड़न-भर्त्सन आदि; अन्यान्य सभी कुछ त्यागकर श्रीकृष्ण का भजन करती हैं।

प्रश्न उठ सकता है, जगत में भी किसी-किसी रमणी को उत्कट काम की प्रेरणा से वेद-धर्म आदि त्यागकर अन्य पुरुष का भजन करते देखा जाता है, तब ब्रजांगनाओं का यह त्याग किस प्रकार प्रशंसित हो सकता है? इसके ही उत्तर में कहा गया है- “कृष्णसुख हेतु करे प्रेम सेवन।” संसार में जो निज



सुख साधन के लिए धर्म आदि का त्याग करता है उसका नाम “काम” है, वह अति जघन्य, निन्दित, दुखमय नरक गति प्रदान करता है। इस जगत में निज सुख के लिए ही पति आदि सभी प्रिय होते हैं, पति के सुख के लिए पति प्रिय नहीं होता। “न वा अरे पतूयः कामाय पति प्रियो भवति.....आत्मनस्त कामाय सर्वम् प्रियम् भवति” (श्रुति) निष्काम विशुद्ध प्रेम एकमात्र श्रीकृष्ण के प्रति ही होता है, कारण वे ही जीव के आत्मा की अपेक्षा भी कोटिगुण प्रिय हैं। ब्रजदेवीगण श्रीकृष्ण-सुख के निमित्त विशुद्ध प्रेमसेवा करती हैं, निज सुख के प्रति वे पूर्णतः शून्य है इसी कारण उनका त्याग परम प्रशंसित है।

गोपियों की श्रीकृष्ण सुखार्थ की गई इस प्रेम सेवा को श्रीकृष्ण में दृढ़ अनुराग कहा जाता है। उनकी श्रीकृष्ण-सेवन के निमित्त अनन्त आकुलता पिपासा का नाम ही दृढ़ अनुराग है। इहलोक, परलोक, धर्म, अधर्म, मान, अपमान, देह, इन्द्रिय, आत्मा, स्वजन, बन्धु, बान्धव इत्यादि का अनुसंधान रहित कर देना ही अनुराग का असाधारण कार्य है। श्रीउज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में राग के लक्षणों में कहा गया है—

**दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते।**

**यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स रागः इति कीर्त्यते।**

प्रणय की जिस उत्कृष्ट अवस्था में श्रीकृष्ण प्राप्ति की सम्भावना से अतिशय दुख भी सुख रूप में प्रतिभात होता है, रसिकगण उसे ‘राग’ नाम से अभिहित करते हैं। अर्थात् अनन्त दुखराशि स्वीकार करके भी यदि श्रीकृष्ण को पाया जाता है, तो वह अनन्त दुख भी श्रीकृष्ण प्राप्त होने के कारण सुख के समान ही प्रतीत होता है। उसमें भी परम मर्यादा सम्पन्ना पतिव्रता कुलरमणीगणों के लिए पातिव्रत्य ध्वंस सभी दुखों में सबसे अधिक दुखदायक है जैसे अग्नि में दग्ध होना, मृत्यु की अपेक्षा भी अधिक दुख जनक, पातिव्रत्य नष्ट होने की परिस्थिति होने पर वे अनायास ही मृत्यु को वरण कर लेती है।

श्रील ब्रजदेवीगण ने श्रीकृष्ण के लिए आकुल पिपासा के आवेग में उसी अतिशय दुखद पातिव्रत्य ध्वंस को भी परमानन्द अनुभव किया था इसी कारण इनका राग अर्थात् आकुलतामय पिपासा अति गाढ़ है। और जब यही राग प्रतिक्षण नव-नवायमान हो नित्य अनुभूत श्रीकृष्ण को भी नव-नव रूप में अनुभव कराता है तब उसका नाम होता है अनुराग। गोपियों का श्रीकृष्ण में दृढ़ अनुराग या विशुद्ध अनुराग है। स्वच्छ अथवा निर्मल धुले वस्त्र में जैसे कोई काला दाग छुप नहीं सकता, वह दृष्टिगोचर हो ही जाता है, उसी प्रकार

विशुद्ध अनुराग के भीतर काम अथवा आत्मेन्द्रिय-सुखवासना की कोई सत्ता छुपी नहीं रह सकती। यदि होती है तो वह वाणी अथवा देह की किसी चेष्टा से प्रकट हो ही जाती है। और फिर वह विशुद्ध अनुराग भी नहीं होता (हो सकता)। दृष्टान्त रूप में जैसे रुक्मिणी हरण के समय श्रीकृष्ण जब पराजित रुक्मि राजा को बद्ध अवस्था में रथ पर ले आए, तब रुक्मिणी देवी के श्रीकृष्ण अनुराग के भीतर छिपा भ्रातृ स्नेह उजागर हो गया था।

प्रश्न उठ सकता है, यदि गोपियों की निजसुख की अभिलाषा नहीं होती, तब वे श्रीकृष्ण संग आदि क्यों करती हैं? कारण प्रयोजन के न रहने पर किसी की भी किसी विषय में प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं होती। इसी कारण कहा गया है-

अतएव गोपीगणे नाहि कामगन्ध।  
कृष्णसुख लागि मात्र कृष्णेर सम्बन्ध ॥51॥

(चै.च.)

गोपियाँ श्रीकृष्ण के सहित सम्बन्ध या संग आदि जो कुछ भी करती हैं वह केवल श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिए ही करती हैं। उनकी कायिक, मानसिक और वाचिक चेष्टाएँ सभी श्रीकृष्ण सुख-केन्द्रित हैं। इसीलिए गोपीप्रेम लोकातीत, अकल्पनीय एवं अकथनीय है! गोपिकाओं में स्वसुखवासना का जो अत्यन्त अभाव है वह गोपीगीत के अन्त में उनकी स्वयं की मुखोक्ति से प्रमाणित होता है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु,  
भीताः शनैः प्रिय दधिमहि कर्कशेषु।  
तेनाटवीमटसि तदव्यथते न किम स्वित्,  
कृपादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥52॥

(भा.-10/31/19)

“हे प्रिय! तुम्हारे यह अति सुकोमल चरणकमल हमारे कठिन स्तन मण्डलों से आघात पाएंगे यह सोचकर हम भयभीत हो उन्हें धीरे-धीरे वक्ष पर धारण करती हैं, तुम उन्हीं चरणकमलों द्वारा इस रजनी में वन-वन भ्रमण कर रहे हो, तीक्ष्ण, सूक्ष्म शिला आदि द्वारा क्या वे व्यथित नहीं होते? अवश्य ही व्यथित होते होंगे ऐसा विचार कर हमारा चित्त अत्यधिक व्याकुल हो रहा है, क्योंकि तुम ही हमारे जीवन हो।”

यहाँ विशेष रूप से विचारणीय विषय यह है कि, मधुररस में प्रिया प्रिय को वक्ष पर धारण कर सुख से आत्महारा हो जाती हैं। ब्रजदेवीगण कोटि

प्राणों से अधिक प्रियतम साक्षात् मन्मथ-मन्मथ श्रीकृष्ण के चरण वक्ष पर धारण कर निज सुख से आत्महारा न होकर, श्रीकृष्ण के चरणों में कठिन स्तनों से आघात लगने की सम्भावना से उन्हें धीरे-धीरे वक्ष पर धारण करती हैं। प्रश्न उठ सकता है कि यदि ऐसा है तो वे श्रीकृष्ण चरण वक्ष पर धारण नहीं भी तो कर सकती हैं? इसके उत्तर में कहा गया है- रसिक शेखर श्रीकृष्ण जब उनके वक्षों पर अपने श्रीचरण अर्पण करते हैं, तब उनका सुखोल्लास श्रीगोपियाँ उनके श्रीमुख दर्शन से स्पष्टतः समझ जाती हैं। अतः उन्हें सुख भी देना होगा किन्तु उन्हें दुख न हो, कुच मण्डलों से उनके श्रीचरण में आघात न हो सो धीरे-धीरे धारण करती हैं। इससे रसिकजन मानस व वैद्य (गोपियों) में अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म निजसुख कामनाओं का अत्यन्त अभाव प्रदर्शित होता है। रूढ़ महाभाव का एक लक्षण है- श्रीकृष्ण के सुख सद्भाव में भी खेदान्वित होना “खिन्नत्वम् तत्सौख्यहृदयदार्तिशंकया।” (उ.नी.) यह महाभाववती ब्रजसुन्दरीगणों की निजस्व भाव सम्पदा है। अन्यों की बात तो दूर रही, श्रीरुक्मिणी प्रभृति महिषीवृद् का भी इस भाव-सम्पद पर अधिकार नहीं।

पूर्व में भी कहा गया है, गोपियों की निज देहसुख आदि की कोई अभिलाषा नहीं है, केवल श्रीकृष्ण सुख के लिए ही उनका श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध है। यदि ऐसा है तो गोपियाँ निजदेह को मार्जित-भूषित क्यों करती हैं? यह तो निजदेह के प्रति प्रीति या देहसुख का ही परिचायक है? श्रीमद्भागवत में वर्णित है, रास रजनी में जब श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण की वंशी बजी थी, तब कोई गोपी अपने अंग में चंदन लेपन कर रही थी, कोई उबटन द्वारा अंग मार्जन कर रही थी, कोई गोपी नयनों में अंजन लगा रही थी-

“लिम्पन्त्याः प्रभृजन्तोऽन्याः अंजन्त्यः काश्च लोचने। (भा० 10/29/17)

उसके उत्तर में कहते हैं-

तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीत।  
 सेहो त कृष्णेर लागि जानिह निश्चित ॥  
 'एइ देह कैलू आमि कृष्णो समर्पण।  
 तार धन तार इहा सम्भोगसाधन ॥  
 एदेह-दर्शन-स्पर्श कृष्ण-सन्तोषण।  
 एइ लागि करे देहेर मार्जन-भूषण ॥53 ॥

(चै.च.)

अपनी देह-इन्द्रिय की सुखवासना न होने पर भी गोपियाँ जो निज देह के प्रति प्रीति प्रकाश करती हैं, वह भी श्रीकृष्ण सुख के लिए ही हैं। निज सुख के लिए नहीं। उनकी भावना है- उन्होंने अपनी देह श्रीकृष्ण को समर्पित की है, इसलिए यह गोपी देह श्रीकृष्ण की ही सम्पत्ति है, उनकी स्वयं की नहीं। उनकी महाभावमयी देह श्रीकृष्ण सेवा का श्रेष्ठतम उपचार (उपकरण) है, श्रीकृष्ण के सम्भोगानन्द लाभ का चरम साधन है उनकी यह देह। उनके देह दर्शन से स्पर्शन से श्रीकृष्ण सुखी होते हैं यह उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति है। उनके असंस्कृत, अमार्जित देह के दर्शन से ही जब श्रीकृष्ण सुखी होते हैं तो उस देह को मार्जित भूषित करने से श्रीकृष्ण के आनन्द में समधिक वृद्धि होगी इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं। इसी कारण वे देह को मार्जित-भूषित करती हैं, निजदेहसुख के लिए नहीं। सभी प्रकार से गोपिकाओं की देह, मन और प्राणों की वृत्ति श्रीकृष्ण सुख पर केन्द्रित है। रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण ने भी यह अनुभव किया है। वे श्रीअर्जुन से कहते हैं-

**निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।**

**ताभ्याः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥54॥**

(लघुभागवतामृतम्)

श्रीकृष्ण कहते हैं, “हे अर्जुन! यह गोपियाँ अपनी-अपनी देह को भी मेरी सम्पत्ति जानकर मार्जन-भूषण आदि द्वारा उसका अनुरक्षण करती हैं, इन गोपियों के अतिरिक्त मेरे निगूढ प्रेम का पात्र और कोई नहीं।” गोपियाँ सोचती हैं, उनकी देह उन्होंने श्रीकृष्ण के सुख विधान के निमित्त श्रीकृष्ण को समर्पित कर दी है अतः देह पर उनका कोई अधिकार नहीं, उस पर श्रीकृष्ण का ही सम्पूर्ण अधिकार सिद्ध होता है। अतः वे श्रीकृष्ण की वस्तु का ही अनुरक्षण कर रही हैं इसी मानसिकता से वे देह का मार्जन-भूषण आदि करती हैं, तभी उनके समान श्रीकृष्ण की रहस्यमय प्रेम-पात्री द्वितीय और कोई भी नहीं।

इस प्रकरण में आलोच्य विषय है श्रीकृष्ण के संग मिलन होने पर श्रीराधा को किस (जाति) प्रकार का सुख होता है, उसी के आस्वादन के लिए श्रीकृष्ण में लोभ का उदय होता है, यही तृतीय वाञ्छ भी है। और फिर यहाँ कहा गया है, गोपिकाओं में निजसुख वाञ्छ का लेशमात्र भी नहीं है। सुख की कामना न रहने से उन्हें सुख भी नहीं होगा, अतः गोपी शिरोमणि

श्रीराधा के सुख के प्रति श्रीकृष्ण के प्रलुब्ध होने का कोई प्रश्न हीनहीं उठता। इसी विषय के समाधान के निमित्त कहा है-

आर एक अद्भुत गोपीभावेर स्वभाव।  
 बुद्धिर गोचर नहे जाहार प्रभाव॥  
 गोपीगण करे जवे कृष्ण दरशन।  
 सुखवाञ्छा नाहि, सुख हय कोटिगुण॥  
 गोपिकादर्शने कृष्णे जे आनन्द हय।  
 ताहा हैते कोटिगुण गोपी आस्वादय॥  
 ताँसभार नाहि निज सुख अनुरोध।  
 तथापि बाढ़ये सुख पड़िल विरोध॥  
 ए विरोधे एई देखि समाधान।  
 गोपिकार सुख कृष्णसुखे पर्यवसान॥55॥

गोपियों के भाव का एक अद्भुत अर्थात् आश्चर्यमय स्वभाव अथवा एक अदृष्ट, अश्रुतपूर्व, असाधारण धर्म है। सुखवांछा होने पर ही सुखोदय होता है, साधारणतः यही नियम है, किन्तु गोपिकाओं के प्रेम का अथवा महाभाव का असाधारण धर्म यही है कि सुखवांछा के बिना भी सुख का उदय होता है। कारण के बिना कार्य का होना, यह अचिन्त्य प्रभाव विचार पद्धति से परे हैं। यह अचिन्त्य प्रभाव ही है- गोपियाँ जब श्रीकृष्ण दर्शन करती हैं तब उनकी सुख वांछा न होते हुए भी वे कोटि गुण सुख प्राप्त करती हैं। गोपियों का दर्शन कर श्रीकृष्ण को जो आनन्द होता है, श्रीकृष्ण के दर्शन कर गोपियों को उसकी अपेक्षा कोटि गुणा अधिक सुख प्राप्त होता है। गोपियों की सुख वांछा के बिना ही कोटि गुणा सुख का उदय इस (अचिन्त्य प्रभाव) विरोध का अथवा कारण के बिना ही कार्योत्पत्ति का एकमात्र समाधान यही है कि “गोपिकार सुख कृष्ण सुखे पर्यवसान।” अर्थात् श्रीकृष्ण की सुख-उत्पत्ति दर्शन कर गोपियों की सुख-उत्पत्ति होती है फिर गोपियों का वह सुख दर्शन कर श्रीकृष्ण का सुखोल्लास अतिशय वृद्धि प्राप्त करता है।

अतएव श्रीकृष्ण से गोपियाँ जो सुख लाभ करती हैं वही सुख श्रीकृष्ण को सुखी करता है। अर्थात् गोपी का सुख श्रीकृष्ण सुख का पोषण करता है। अतः यही प्रतिपन्न (स्वीकृत) होता है कि गोपियों का स्वतन्त्र भाव से कोई सुखानुसन्धान नहीं है। तभी श्रील कविराज गोस्वामी पाद कहते हैं-

किन्तु कृष्णोर सुख हय गोपी-रूपगुणे ।  
 ताँर सुखे सुख-वृद्धि हय गोपीगणे ॥  
 अतएव सेइ सुखे कृष्णासुख पोषे ।  
 एइ-हेतु गोपी-प्रेमे नाहि कामदोषे ॥

.....  
 प्रीति विषयानन्दे तदाश्रयानन्द ।  
 ताँहा नाहि निज सुख वाञ्छार सम्बन्ध ॥  
 निरुपाधि प्रेम जाँहा ताँह एइ रीति ।  
 प्रीति विषयसुखे आश्रयेर प्रीति ॥56 ॥

(चै.च.)

प्रीति के विषय श्रीकृष्ण हैं एवं प्रीति की आश्रय गोपियाँ हैं, प्रीति के विषय श्रीकृष्ण के आनन्द में आश्रय गोपियों का आनन्द है, वहाँ निजसुख वाञ्छ का कोई सम्बन्ध ही नहीं। जहाँ-जहाँ निरुपाधि प्रेम है, वहाँ-वहाँ प्रीति के विषय श्रीकृष्ण के सुख में आश्रय भक्तगणों का सुख अनुसंधान होता है। यह शुद्ध प्रीति का स्वभागवत धर्म है।

श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति एवं सम्वित शक्ति का सार अंश ही भक्ति है। यहाँ 'सार' का अर्थ भगवद् अनुकूलता की अभिलाषा या प्रवृत्ति है उसे ही यहाँ "सार" कहा गया है। यह भगवद् सेवा की प्रवृत्ति एकमात्र भगवद् सेवा में ही पर्यवसित होती है, अर्थात् भगवद् सेवा के द्वारा स्वतन्त्र भाव से मेरा कोई निज भोग्य सुख भी पूर्ण होगा, यह उद्देश्य अथवा कामना से नहीं। भक्त के हृदय में निज सुख कामना (स्वार्थ) कभी नहीं जगती।

प्रश्न हो सकता है, यदि भक्त के चित्त में सुख प्राप्ति की कामना न हो तब सुख भी नहीं होगा; भगवद् सेवा कर भक्त यदि सुख प्राप्त न करें (तब वह सुखी होगा कैसे)? यदि ऐसा होता है तो भक्ति की अपरुषार्थता ही प्रकाशित होती है, क्योंकि सुख अथवा आनन्द ही तो जीव का पुरुषार्थ है? और यदि सुख की कामना होती है तो निरुपाधि अथवा निष्काम भक्ति किस प्रकार सिद्ध होगी? इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर में भक्ति-शास्त्र कहते हैं- भगवत् सेवा से भक्त के चित्त में "मुझे सुख हुआ अथवा होगा" इस प्रकार स्वतन्त्र भाव से कोई सुखानुसंधान न होते हुए भी भगवत् सेवा से श्रीभगवान् के सुखोल्लास के अनुभव से भक्त के हृदय में एक सुख एक उल्लास स्वयं ही उदित होता है।

जिस प्रकार किसी वृक्ष के मूल में जल सिंचन करने से उसके शाखा-पल्लव आदि अपने आप ही उल्लसित हो जाते हैं, उसी प्रकार सर्वाश्रय श्रीभगवान् के सुख अनुभव से तदाश्रित भक्त के चित्त में एक स्वरूपोल्लास-सुख स्वतः ही उदित हो जाता है। इस सुख से भक्त का चित्त प्रमत्त नहीं होता एवं उसकी भगवत्-सेवा की स्पृहा और अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार का भगवत्-सेवा स्पृहामय सेवा-सोल्लास-सुख ही निरुपाधि या निष्काम भक्ति है।- यही है परमपुरुषार्थ। इस निष्काम भक्ति की पराकाष्ठा या चरम सोपान महाभाववती ब्रजगोपिकाओं के श्रीगोविन्द पदारविन्द-निषेवन में दिखती है। इसका अनुभव केवल तादृश महामहत की कृपा सापेक्ष है।

सेइ गोपीगण मध्ये उत्तमा राधिका।

कल्पे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वाधिका ॥57 ॥

(चै.च.)

गोपीप्रेम को परम विशुद्ध काम गंधहीन प्रतिपादन कर कौमुदि न्याय से राधारानी के प्रेम का सर्वापेक्षा विशुद्धत्व प्रतिपादित करते हैं। महाभाववती गोपीगणों में मादनाख्य महाभाववती श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी ही सर्वापेक्षा परमश्रेष्ठा हैं। रूप, गुण, सौभाग्य, प्रेम या मधुर रस से श्रीकृष्ण सेवा का श्रेष्ठ उपचार; सभी कुछ श्रीराधारानी में अन्य गोपियों की अपेक्षा अति विलक्षण रूप से विराजता है। यह सभी कुछ उनके मादनाख्य महाभाव से उत्थित है। इसी कारण सभी कुछ श्रीकृष्ण वशीकरण में महामहोपाधि स्वरूप है।

श्रीराधारानी भाव की ही मूर्ति हैं, भाव एवं मूर्ति में कोई भेद नहीं है। “महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरानी, सर्वगुणखनी सर्वकान्ता शिरोमणि।” अन्यान्य गोपियों में महाभाव है, किन्तु श्रीराधा का श्रीविग्रह महाभाव के ही उपादान से गठित है। अतः उनका सभी कुछ भावमय है, भाव के अतिरिक्त उनका कोई परिचय नहीं। श्रील कविराज गोस्वामीपाद इसी भाव की मूर्ति का परिचय प्रदान करते हैं—

महाभाव चिन्तामणि-राधार स्वरूप। ललितादि सखी ताँर कायव्यूह रूप ॥  
राधाप्रति कृष्णस्नेह सुगन्धि उदत्तन। ताते अति सुगन्धि देह उज्ज्वल वरण ॥  
कारुण्यामृत धाराय स्नान प्रथम। तारुण्यामृतधाराय स्नान मध्यम ॥  
लावण्यामृतधाराय तदुपरि स्नान। निजलज्जा-श्याम पटशाटी परिधान ॥  
कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण वसन। प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन ॥

सौन्दर्य्यं कुंकुम, सखीप्रणय चन्दन। स्मित-कान्तिकर्पूर-तिने अङ्ग-विलेपन ॥  
 कृष्णोर उज्ज्वलरस मृगमदभर। सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर ॥  
 प्रच्छन्न-मान-वाम्य धम्मिल्ल-विन्यास। धीराधीरात्मक गुण अङ्गे पटवास ॥  
 राग-ताम्बूलरागे अधर उज्ज्वल। प्रेमकौटिल्य नेत्रयुगले कज्जल ॥  
 सुहीत सात्त्विकभाव हर्षादि सञ्चारी। एइ सब भाव-भूषण सब अङ्गे भरि ॥  
 किलकिञ्चितादि भाव-विंशति-भूषित। गुणश्रेणी-पुष्पमाला-सर्वाङ्गे पूरित ॥  
 सौभाग्यतिलक चारु ललाटे उज्ज्वल। प्रेमवैचित्य रत्न हृदये तरल ॥  
 मध्यवयास्थिति-सखीस्कन्धे करन्यास। कृष्णलीला-मनोवृत्ति सखी आश-पाश ॥  
 निजाङ्ग-सौरभालये गर्व पर्यङ्क। ताते वसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसङ्ग ॥  
 कृष्ण-नाम-रूप-यश अवतंश काने। कृष्ण-नाम गुण-यश प्रवाह वचने ॥  
 कृष्णके कराय श्यामरस मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णोर सर्वकाम ॥  
 कृष्णोर विशुद्ध-प्रेम रत्नेर आकर। अनुपम गुणगण-पूर्ण-कलेवर ॥58 ॥

(चै.च.)

भक्तवृन्द, प्रेम की मूर्ति का यही परिचय है। अमृत सिन्धु जो गिरता है, वही जैसे अमृत हो जाता है। उसी प्रकार महाभाव के सिन्धु में गिरकर सभी कुछ भावमय हो गया है। उनके रूप, गुण, सौभाग्य आदि के परिमाण का कौन निरूपण कर सकता है? स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी जिसका पार नहीं पाते, वहाँ जीव की क्या बिसात।”

याँहार सौभाग्यगुण वाञ्छे सत्यभामा।  
 याँर ठाजि कला-विलास शिखे ब्रजरामा ॥  
 याँर सौभाग्यादि गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती।  
 याँर पतिव्रता-धर्म वास्ते अरुन्धती ॥  
 याँर सद्गुणगणोर कृष्ण ना पान पार।  
 ताँर गुण गणिवे केमने जीव छार ॥59 ॥

श्रीकृष्ण विलास में श्रीराधा के सौन्दर्य्य सौभाग्य आदि गुणों का समधिक विकास होता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, श्रीराधा स्वयं भगवती हैं। श्रीकृष्ण असमोर्ध्व ऐश्वर्य्य मूर्ति हैं- श्रीराधा महाप्रेम महाभाव की छवि हैं। दोनों के मिलन की अनिर्वचनीय शोभा है। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामीपाद अपने श्रीश्रीविशाखानन्द स्तोत्र में लिखते हैं-

गोविन्दानङ्ग-राजीवे भानुश्रीवार्षभानवी।  
 कृष्णहृत्कुमुदोल्लासे सूधाकर करस्थितिः ॥



कृष्णमानसहंसस्य मानसी सरसी वरा ।  
 कृष्णचातक जीवातु नवाम्भोद-पयश्रुतिः ॥  
 ★ ★ ★ ★ ★  
 कृष्णमञ्जुल-तापिंछे विलसत्-स्वर्णयुथिका ।  
 गोविन्द-नव्यपाथोदे स्थिरविद्युल्लतादद्भुता ॥  
 ग्रीष्मे गोविन्द सर्वाङ्गे चन्द्र-चन्दन-चन्द्रिका ।  
 शीते श्यामशुभाङ्गेषु पीतपट्ट-लसत्पटी ॥  
 मधौ कृष्णतरुल्लासे मधुश्रीर्मधुराकृतिः ।  
 मंजु मल्लाररागश्रीः प्रावृषि श्यामहर्षिणी ॥  
 ऋतौ शरदि रासेक रसिकेन्द्रमिह स्फुटम् ।  
 वरीतुं हन्त रासश्रीर्विहरन्ती सखीश्रिता ॥  
 हेमन्ते स्मरयुद्धार्थमटन्तं राजनन्दनम् ।  
 पौरुषेण पराजेतुं जयश्रीमूर्तिधरिणी ॥60 ॥

“श्रीगोविन्द के अनंग-कमल विकास के लिए जो भानुश्री अथवा सूर्यरश्मि हैं, श्रीकृष्ण के चित्तकुमुद विकास के लिए जो सुधाकर किरणमाला हैं। जो श्रीकृष्ण के मानस हंस की सुखविहार स्थली मानससरसी हैं, श्रीकृष्ण चातक की जीवातु नवजलद की वारिधारा हैं...जो श्रीकृष्णरूप मंजुल तमाल के संग स्वर्णयुथिका के समान विलसित हैं, गोविन्द नवजलधर में अद्भुत स्थिर-विद्युल्लता हैं, ग्रीष्मकाल में जो गोविन्द के सर्वांग में कर्पूर, चंदन और चन्द्रिका हैं, शीतकाल में श्याम-शुभांग में मनोहर पीत रेशमी वसन हैं। वसन्त में जो कृष्ण तरु की उल्लासदायिनी मधुराकृति वासन्तीश्री हैं, वर्षा में श्याम जलद की हर्षदायिनी मंजुमल्लार राग हैं। शरत काल में जो रास रसिक श्रीकृष्ण को सर्वसमक्ष वरण कर साक्षात् रास श्रीरूप में (सखियों के संग) विहार करती हैं। हेमन्तकाल में मदन-समर के निमित्त भ्रमणकारी ब्रजेन्द्रनन्दन को पौरुष रस द्वारा पराजित कर जो मूर्तिमति जयश्री के रूप में विराजित हैं। इसी कारण श्रीराधा सर्व ब्रजकान्तागण-शिरोमणि हैं। पद्म-पुराण में लिखा है-

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।  
 सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥61 ॥

“जैसे श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रियतमा हैं, उनका कुण्ड भी अर्थात् श्रीराधाकुण्ड भी श्रीकृष्ण को वैसे ही प्रियतम है। (समस्त) गोपियों

में श्रीराधा श्रीनन्दनन्दन की अत्यन्त रस के राजा हैं, श्रीराधा अखण्ड रस की राज्ञी हैं। भाव एवं रस के विचार से भाव आराधक एवं रस आराध्य होता है, इसी आराध्य-आराधक सम्बन्ध से यह कृष्ण वाञ्छापूर्तिरूपी आराधना में सर्वश्रेष्ठा के रूप में पुराणों में “श्रीराधिका” नाम से ख्याति लाभ करती हैं। श्रीराधा के संग श्रीकृष्ण की रास आदि लीलारस की परिपुष्टि के निमित्त अन्यान्य गोपीगण रास के उपकरण स्वरूप हैं। जिस प्रकार अन्न के आस्वादन वृद्धि के निमित्त विविध व्यंजन आदि का प्रयोजन होता है, अन्न के अतिरिक्त व्यंजन आदि की आस्वादन चमत्कारिता कुछ भी नहीं रहती उसी प्रकार श्रीराधारानी के संग श्रीकृष्ण की मधुर लीलारस की परिपुष्टि के लिए अन्यान्य गोपीगण रस की सहायकारिणी के रूप में प्रकाश पाती हैं। प्राणों के बिना जैसे इन्द्रियाँ देह का कुछ भी सुख-साधन नहीं कर पाती उसी प्रकार श्रीराधा के बिना गोपीगण भी श्रीकृष्ण के सुख का कुछ भी हेतु नहीं हो पाती।

राधासह क्रीडारस वृद्धिर कारण।  
 आर सब गोपीगण वसपकरण॥  
 कृष्णोर वल्लभा राधा कृष्ण-प्राणधन।  
 ताँहा बिना सुखहेतु नहे गोपीगण॥62॥

(चै.च.)

श्रीगीतगोविन्द में वर्णित वसन्त रास में कवि जयदेव की अनुभवमय वाणी ही इस विषय में ज्वलन्त साक्ष्य प्रदान करती है।

कंसारिरपि संसारवासनावद्धशृङ्खलाम्।  
 राधामाधाय हृदये तत्याजब्रजसुन्दरीः॥  
 इतस्ततस्तामनुसुत्य राधिकामनङ्गवाणव्रणखिन्नमानसः।  
 कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुजेविषसाद माधवः॥63॥

श्रील कविराज गोस्वामीपाद इन दो श्लोकों का अति अपूर्व अर्थ प्रकाश करते हैं—

ए दुःश्लोकेर अर्थ विचारिले जानि।  
 विचारिते उठे जेन अमृतेर खनि॥  
 शतकोटि-गोपीसङ्गे रासविलास।  
 तार मध्ये एकमूर्ति रहे राधापाश॥  
 साधारण प्रेम देखि सर्वत्र समता।  
 राधार कुटिल प्रेम हड़ल वाता॥

क्रोध करि रास छाड़ि गेला मान करि ।  
 तारे ना देखिया व्याकुल हइया श्रीहरि ॥  
 सम्यक् सार वासना कृष्णेर रासलीला ।  
 रासलीला-वासनाते राधिका शृङ्खला ॥  
 ताहा विनु रासलीला नाहि भाय चिते ।  
 मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेक्षिते ॥  
 इतस्तत भ्रमि काँहा राधा ना पाइया ।  
 विषाद करेन काम-बाणे खिन्न हैया ॥  
 शतकोटि गोपीते नहे काम निर्व्वापण ।  
 इहातेइ अनुमानि श्रीराधिकार गुण ॥64 ॥

(चै.च.)

भक्त के प्रेम की जाति एवं परिमाण के अनुरूप उनकी प्रेमसेवा ग्रहण करने की आकांक्षा श्रीभगवान् के चित्त में जागरित होती है, यह भगवत् स्वरूप का स्वभाव-सिद्ध धर्म है। श्रीराधा का प्रेम परिमाण में परममहान एवं जाति में भी सर्वोत्कृष्ट परकीयभावमय मधुर प्रेम है। उनका अनन्य साधारण मादनाख्य प्रेम अप्राकृत नवीनमदन श्रीकृष्ण के चित्त में जो उनकी प्रेमसेवा ग्रहण के निमित्त उदग्र आकांक्षा जगाता है, वह अन्य किसी गोपी के द्वारा पूर्ण होना सम्भव नहीं। इसी को ही कहा है “शतकोटि गोपीते नहे काम निर्व्वापण” यहाँ “काम” कहने का तात्पर्य श्रीराधा के मादनाख्य प्रेम की सेवा ग्रहण के निमित्त प्रबल आकांक्षा है। इस आकांक्षा की पूर्ति एकमात्र श्रीराधा द्वारा ही सम्भव है, कारण मादन प्रेम एकमात्र श्रीराधारानी में ही विराजित है।

तभी—

गोविन्दानन्दिनी राधा गोविन्दमोहिनी ।  
 गोविन्दसर्व्वस्व सर्व्वकान्ता-शिरोमणि ॥65 ॥

(चै.च.)

श्रील कविराज गोस्वामीपाद इसके दृष्टान्त में गौतमीय तंत्र का एक श्लोक उद्धृत कर स्वयं उसकी एक अपूर्व व्याख्या करते हैं—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।  
 सर्व्वलक्ष्मीमयी सर्व्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥

देवी कहि द्योतमाना परमासुन्दरी ।  
 किंवा कृष्णक्रीड़ापूजार वसती नगरी ॥

कृष्णमयी कृष्ण याँर भितरे बाहिरे ।  
 याँहा याँहा नेत्र पड़े ताँहा कृष्णस्फुरे ॥  
 किंवा प्रेमरसमय कृष्णोर स्वरूप ।  
 ताँर शक्ति ताँर सह हय एकरूप ॥  
 कृष्णवाञ्छा-पूर्तिरूप करे आराधने ।  
 अतएव राधिका नाम पूराणे बाखाने ॥66 ॥

(श्रीमद्भागवत से 10/30/28)

अनयाराधितो नूनं भगवान हरिरीश्वरः ।  
 यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥

अतएव सर्व्वपूज्या परम-देवता ।  
 सर्व्वपालिका सर्व्वजगतेर माता ॥  
 सर्व्वलक्ष्मी शब्द पूर्व्वे करियाछि व्याख्यान ।  
 सर्व्वलक्ष्मीगणोर तिंहो हय अधिष्ठान ॥  
 किंवा सर्व्वलक्ष्मी कृष्णोर षड्विध ऐश्वर्य्य ।  
 ताँर अधिष्ठात्री शक्ति सर्व्वशक्तिवर्य्य ॥  
 सर्व्वसौन्दर्य्य कान्ति वैसये याँहाते ।  
 सर्व्वलक्ष्मीगणोर शोभा हय जाँहा हैते ॥  
 किंवा शान्तिशब्दे कृष्णोर सब इच्छा कहे ।  
 कृष्णोर सकल वाञ्छा राधातेइ रहे ॥  
 राधिका करेन कृष्णोर वाञ्छित पूरण ।  
 सर्व्वकान्तिशब्देर एइ अर्थ-विवरण ॥  
 जगत् मोहन कृष्ण ताँहार मोहिनी ।  
 अतएव समस्तेर परा ठाकुरानी ॥66 ॥

(चै.च.)

प्रथमतः 'देवी' शब्द की व्याख्या 'दिव्' धातु का द्युति अर्थ ग्रहण कर कहते हैं— "जो द्योतमाना (कान्तिमयी) परमसुन्दरी हैं।" यह सौन्दर्य्य मादनाख्य-महाभाव से उत्पन्न हुआ समझा जाना चाहिए, कारण जो सौन्दर्य्य प्रेम से उत्पन्न नहीं हुआ है वह कभी कृष्ण के सुख का हेतु नहीं हो सकता। प्रेम वस्तु के अतिरिक्त आनन्दसिन्धु गोविन्द को अन्य कोई भी वस्तु सुख देने में समर्थ नहीं होती। जहाँ प्रेम की जितनी अधिकता है, प्रेमोत्थित सौन्दर्य्य भी वहाँ उतना अधिक है, यही समझा जाना चाहिए। श्रीराधारानी में मादनाख्य-महाभाव से उत्पन्न सौन्दर्य्य अप्राकृत नवीनमदन श्रीकृष्ण को उन्मत्त

एवं आत्महारा कर देता है। और फिर 'दिव्' धातु का क्रीड़ा अर्थ ग्रहण करने से 'दिव्यति क्रीडती अस्याम्' इस अधिकरण-वाच्य में 'देवी' पद का अर्थ ग्रहण करते हैं—

श्रीराधारानी के संग श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हैं अतः वे 'देवी' हैं यद्यपि अन्यान्य गोपियों के संग भी श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हैं किन्तु श्रीराधारानी उसकी मूल अधिकरण स्वरूपा हैं। इसी कारण श्रीराधा श्रीकृष्ण की संतोषजनक, रसमयी क्रीड़ा का अक्षय भण्डार हैं। “कृष्ण क्रीड़ापूजार बसति नगरी।”

जिस प्रकार एक नगर में विलासी जन की मनोरंजनकारी विविध भोग वस्तुएँ बाजार में सजी रहती हैं उसी प्रकार श्रीराधारानी में श्रीकृष्ण की शृंगार रसमय क्रीड़ा के निखिल उपकरण विद्यमान रहते हैं यह जान लीजिए। जब जिस (जाति के शृंगार रसास्वादन का संकल्प श्रीकृष्ण के हृदय में उदित होता है, तब श्रीराधारानी स्वयं एवं कायव्यूह रूपा ब्रजांगनाओं द्वारा श्रीकृष्ण को उसका आस्वादन करा सुखी करती हैं। यहाँ तक की जो सब परम रहस्यमय शृंगार रस वासना श्रीकृष्ण के अंतर में भी जागरित नहीं होती, श्रीराधारानी अपने मादन प्रेम के द्वारा श्रीकृष्ण को भावनातीत कोई अनिर्वचनीय आस्वादन दान कर उन्हें उन्मत्त कर देती हैं।

अब “कृष्णमयी” शब्द की व्याख्या में कहते हैं— “कृष्णमयी कृष्ण जार अंतरे बाहिरे”; श्रीराधारानी कृष्णमयी हैं “प्राचुर्य” प्रत्यय से कृष्णमयी का अर्थ होता है— श्रीराधारानी कृष्ण प्रचुरा हैं, जिनके भीतर-बाहर सतत श्रीकृष्ण स्फुटित होते हैं। अपने भावानुरूप लीला विशिष्ट कृष्ण श्रीमती के अंतर में सर्वदा स्फुरित होते हैं, और फिर बाहर स्थावर-जंगम जहाँ देखती हैं सर्वत्र ही श्रीकृष्ण स्फुटित होते हैं। “जहाँ-जहाँ नेत्र पड़े ताँहा कृष्ण स्फुरे। इस स्फुरण का तारतम्य है जैसे तमाल वृक्ष को श्रीकृष्ण भ्रम से श्रीमती आलिंगन कर लेती हैं—

“मोर भ्रमे रहे तमालेरे करि कोले।

कृष्ण दरशन पाइलुँ जीवन सफले ॥”

किन्तु किसी व्यक्ति विशेष के संग श्रीकृष्ण भ्रम में ऐसा व्यवहार करें तो रसदुष्ट (रस दूषित) हो जाएगा, अतः वहाँ स्फूर्ति कभी इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं जगाती। और फिर श्रीबलदेव अथवा अभिमन्यु के दर्शन से श्रीकृष्ण स्फूर्ति होने पर रस विरोध हो जाता है। इसी कारण बलदेव के दर्शन

होने पर “यह मेरे प्राणवल्लभ के अग्रज हैं” एवं अभिमन्यु के दर्शन होने पर “यह मेरे प्रियतम के विरोधी है” इस प्रकार बुद्धि उत्पन्न होती है और यथाक्रम से लज्जा और द्वेष प्राप्त करती हैं।

प्रश्न उठ सकता है- महाभागवतगण की भी स्थावर-जंगम में श्रीकृष्ण स्फूर्ति की बात जानी जाती है-

“महाभागवत देखे स्थावर जंगम।  
ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्रीकृष्ण स्फुरण ॥”

(चै०च०)

तब परम महान प्रेमवती श्रीराधारानी के स्थावर-जंगम में श्रीकृष्ण स्फुरण से उनकी ऐसी क्या विशेषता प्रकाशित होती है? इस प्रकार के प्रश्न की सम्भावना से “स्वरूप” प्रत्यय कर “कृष्णमयी” पद की अन्य व्याख्या करते हैं-

“किम्बा प्रेमरसमय कृष्णोर स्वरूप।  
ताँर शक्ति ताँर सह हय एकरूप ॥”

श्रीकृष्ण का स्वरूप प्रेम रसमय है। किसी भक्त महात्मा ने कहा है-

प्रेम हरिका रूप हयाय, हरि हयाय प्रेमस्वरूप।  
एक हयाय, दो करि लखे, जोंऊ सूर्य उर धूप ॥

अर्थात् प्रेम श्रीहरि का रूप है एवं वे भी प्रेम स्वरूप हैं; एक ही वस्तु दो रूप में प्रतिभात होती है, जैसे सूर्य और उसकी किरण माला। श्रीराधारानी उन्हीं प्रेम रसमय श्रीकृष्ण की निज-शक्ति हैं, उनसे अभिन्न वस्तु हैं। श्रीकृष्णप्रेममयीत्व ही श्रीराधा का स्वरूप लक्षण समझना होगा। अतएव महाभागवतगण की श्रीकृष्ण स्फूर्ति की अपेक्षा श्रीराधारानी की श्रीकृष्ण स्फूर्ति में अनन्त एवं अफुरन्त विलक्षणता विद्यमान है।

अब श्लोक के ‘राधिका’ पद का अर्थ करते हैं-

कृष्णवाञ्छा प्रतिरूप करे आराधने।  
अतएव राधिका नाम पुराणे बाखाने ॥

जो आराधना करती है वे राधिका है। आराधना का अर्थ है काय-मनो-वाक्य से आराध्य का सन्तोष विधान करना। साक्षात् शृंगार-रस-घनमूर्ति श्रीकृष्ण को अखण्ड शृंगार रसमाधुरी आस्वादन कराना ही उनके संतोष की मुख्य युक्ति है।

श्रीमती राधारानी अपने अखण्ड मादनाख्य महाभाव द्वारा श्रीकृष्ण की इस शृंगार रसवासना को एकाकी पूर्ण करती हैं। इसी कारण ही उनका नाम है “राधिका”। यद्यपि अन्यान्य गोपियों में भी श्रीकृष्ण की शृंगार रसवासना पूर्ति रूप आराधना है फिर भी उनका नाम ‘राधिका’ नहीं है। जैसे जो जल धारण करे वह जलधि कहलाता है। पुष्करिणी, नद, नदी में भी जल धारण का कार्य होता है, तब भी उन्हें कोई जलधि नहीं कहता; एकमात्र अगाध अपार जलाश्रय समुद्र के लिए ही जलधि शब्द का प्रयोग होता है। उसी प्रकार अन्यान्य गोपीगण अपने प्रेम की जाति एवं परिमाण के अनुरूप श्रीकृष्ण को शृंगाररसमाधुरी आस्वादन कराती हैं किन्तु वह आस्वादन ससीम एवं खण्डित होता है सो उनमें से कोई भी ‘राधिका’ नहीं। एकमात्र अखण्ड महाभाव स्वरूपिणी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ही श्रीकृष्ण की अखण्ड रसवासना पूर्ण करने में समर्थ हैं, तभी उनका ही नाम ‘राधिका’ है।

जब रासलीला में श्रीकृष्ण श्रीराधा के संग अंतर्हित हुए तब उनके निर्जन विहार के वर्णन में श्रीपाद शुकमुनि कहते हैं- “रेमे तथा चात्मरत आत्मारामोहप्यखण्डितः” अर्थात् श्रीकृष्ण ने आत्माराम एवं आप्तकाम होते हुए भी श्रीराधा के संग अखण्ड विहार किया। इसी कारण पुराण श्रीराधारानी के “राधिका” नाम की महिमा कीर्तन करते हैं। किन्तु यहाँ श्रील कविराज गोस्वामीपाद अन्य किसी पुराण का प्रमाण न देकर महापुराण श्रीमद्भागवत का ही दृष्टान्त देते हैं। अतः यहाँ ‘पुराण’ कहने पर महापुराण श्रीमद्भागवत ही समझना होगा। यद्यपि श्रीमद्भागवत में स्पष्टतः ‘राधिका’ नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं है। श्रीशुकमुनि ने किसी भी गोपी का नाम उल्लेख नहीं किया। उन्होंने केवल केचित, काचित, एका, अन्या, ‘अपरा’- इस भाव से उनका परिचय दिया है।

इस विषय में श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद रासलीला के “अपेयणपत्यपगतः” इत्यादि ( भा. 10/30/11) श्लोक की लघुतोषिणी टीका में श्रीशुकदेव मुनि का किसी भी गोपी का नामोल्लेख न करने का जो अभिप्राय व्यक्त करते हैं उसका अर्थ इस प्रकार है- “भगवान् के अनेक आविर्भाव होते हुए भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण में मेरा विशेष आग्रह है। उसी प्रकार अनेक आविर्भावों में अनेक प्रकार के परिकर गणों के मध्य श्रीब्रजवासीगणों में ही मेरा सविशेष आग्रह है और फिर ब्रजवासीगणों के मध्य ब्रजदेवीगण में मेरा अधिकतर सविशेष आग्रह है। यह रहस्य सभी श्रोतागण समझ पाए हैं और फिर निखिल

ब्रजदेवीगणों के मध्य श्रीराधिका में ही जो मेरा अधिकतम आग्रह विशेष है यह कोई भी श्रोता नहीं समझ पाया। श्रीराधा की यह उत्कर्षतमता परम रहस्यमय है, यह साक्षात् समझाते मेरे चित्त में संकोच होता है। और फिर जानते हुए भी प्रकाश न करने से ज्ञान खलता दोष उपस्थित होगा, अतएव प्रकाश करने की इच्छा भी है। अतः दोनों पक्षों की रक्षा करने के लिए यदि श्रीराधा की सखियों की वाणी द्वारा उनकी महिमा प्रकाश करूँ तो साधारण जन में अविश्वास उत्पन्न हो सकता है, कारण कोई सोच सकता है कि यह सब तो श्रीराधा की सखियाँ हैं, यह तो उनकी महिमा वर्णन करेगी ही। अतः प्रतिपक्षा और सुहृत्पक्षा गणों के वचनों से व्यंजनावृत्ति द्वारा अवसर देखकर मध्य-मध्य उनकी महिमा वर्णन करूँगा। यदि कभी आवेश वशतः स्वयं उनकी महिमा प्रकाश करता भी हूँ, तब भी साक्षात् उनके नाम का उल्लेख नहीं करूँगा। उनके नाम तो उल्लेख नहीं ही करूँगा, किसी अन्य गोपी का नामोल्लेख भी नहीं करूँगा।

इसी अभिप्राय से श्रीशुकदेव ने अभिधावृत्ति से श्रीराधा नाम उल्लेख न कर नाना रस प्रकाशिनी व्यंजनावृत्ति का अवलम्बन कर सुहृत्पक्षागण की उक्ति से—

**अन्याराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।**

**यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामन्नद्रहः ॥**

इस श्लोक में श्रीराधानाम का अर्थ प्रकाशित किया है। श्रील कविराज गोस्वामीपाद ने इसी कारण ही इस श्लोक का इस स्थान पर दृष्टान्त दिया है। सुहृत्पक्षा श्यामला प्रभृति ब्रजदेवीगण कहती हैं “हे सखीगण! श्रीकृष्ण की सहगामिनी इस ब्रजरमणी ने निश्चय ही भक्तवांछा-पूरणकारी सर्व-दुखहारी श्रीहरिः की आराधना कर उन्हें वशीभूत किया है इसी कारण हमारे कृष्ण ने हम सभी का परित्याग कर इस भाग्यवती रमणी के संग निर्जन स्थान में गमन किया है।” इस श्लोक की वैष्णवतोषिणी टीका में लिखा है- “राधयति आराधयतीति राधेति नामकर्षण दर्शितम्।” अर्थात् जो आराधना करती है वे ही ‘राधा’ हैं। इस भाव से सरस व्यंजना-वृत्ति से सुहृत्पक्षागण की उक्ति से कुशलता से श्रीशुकदेव मुनि श्रीराधानाम व्यक्त करते हैं।

अब यहाँ श्लोकस्थ ‘परदेवता’ शब्द का अर्थ करते हैं—

**“अतएव सर्वपूज्या परम देवता ।**

**सर्वपालिका सर्वजगतेर माता ॥”**



श्रीराधारानी सर्वपूज्या हैं तभी परम देवता हैं। भक्त-कोटि से प्रारम्भ कर श्रीकृष्ण पर्यन्त यह साक्षात् महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधा सभी की आराध्या हैं अतएव परम देवता हैं। ऐसा देवता और कोई नहीं। निखिल देवताओं के आराध्य अनादिर आदि गोविन्द सर्वकारण कारण स्वयं जिसकी आराधना करते हैं। और फिर 'सर्वपालिका' भक्तकोटि से श्रीकृष्ण पर्यन्त सभी को ही आनन्द-आस्वादन दान कर पालन करती हैं तभी 'सर्वपालिका' हैं।

सुखरूप कृष्ण करने सुख आस्वादन।

भक्तगणे सुख द्विते ह्लादिनी कारण।

ह्लादिनी कराय कृष्णे आनन्द आस्वादना।

ह्लादिनी द्वाराय करे भक्तेर पोषण॥

इत्यादि वाक्यों द्वारा ह्लादिनी-शक्ति वरीयसी राधारानी की सर्वपालन की बात जानी जाती है। श्रीराधा सर्व-जगत की सर्वपालन की बात जानी जाती है। श्रीराधा सर्व-जगत की माता हैं, वे बहिरंगा माया शक्ति, तटस्था जीव शक्ति, अंतरंगा स्वरूप शक्ति इन तीनों शक्तियों की मूल आश्रय होने से बहिर्मुख जगत, अंतर्मुख जगत सभी जगतों की माता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण विश्व-पिता एवं कृष्णमयी श्रीराधा सभी जगतों की माता हैं। सभी के लिए माता के समान पूज्या हैं। यह हुई तत्त्व-कथा। तत्त्व एवं रस दोनों को पृथक् दृष्टि से देखते हुए प्रेम का आस्वादन करना होगा। गौड़ीय वैष्णवगण की राधा-दास्य की उपासना है। वे श्रीराधा की सखी होते हुए भी दासी है, सख्यरस की पात्री। उपासना में सख्य का निसंकोच परिहास आदि भी है और श्रीराधामाधव की मिलन भूमि पर निसंकोच सेवा भी है। अतएव मातृ भाव उनकी उपासना के अनुकूल नहीं अपितु प्रतिकूल ही है। इसी कारण कोई उन्हें 'राधा माँ' नहीं कहता।

सर्वलक्ष्मीमयी शब्द की व्याख्या में कहते हैं—

सर्वलक्ष्मी शब्द पूर्वे करियाछि व्याख्यान।

सर्वलक्ष्मी गणेर तेहों हय अधिष्ठान॥

किंवा सर्व लक्ष्मी कृष्णेर षड् विध ऐश्वर्य।

तार अधिष्ठात्री शक्ति सर्वशक्ति वर्य॥

इससे पूर्व "लक्ष्मीगण तार वैभव विलासंशरूप" कह कर वैकुण्ठ-लक्ष्मीगण की वे अंशिनी है यह प्रतिपादित किया गया है। वैकुण्ठलक्ष्मीगण श्रीराधा की अंश हैं, वे स्वयं अंशिनी हैं इसी कारण वे लक्ष्मीगुण की अधिष्ठान

रूपिणी हैं। अथवा सर्वलक्ष्मी शब्द से श्रीकृष्ण का षड्विध ऐश्वर्य भी समझा जा सकता है। श्रीराधा उसी षड्विध ऐश्वर्य सम्पदा की अधिष्ठात्री देवी हैं। वे ऐश्वर्य प्रभृति शक्तिगण की मुकुटमणि हैं।

अब यहाँ सर्वकान्ति पद का अर्थ कहते हैं—

सर्व सौन्दर्य कान्ति वैसये याँहाते।  
 सर्वलक्ष्मीगणेर शोभा हये याहाँ हयिते॥  
 किंवा कान्ति शब्दे कृष्णेर सब इच्छा कहे।  
 कृष्णेर सकल वाञ्छा राधा तेइ रहे॥  
 राधिका करेन कृष्णेर वाञ्छित पूर्ण।  
 सर्वकान्ति शब्देर एई अर्थ विवरण॥

“सर्वाः कान्तयो यस्याम्”, इस बहुब्रीहि समास से व्याख्या करते हैं, जिसमें सकल कान्ति अथवा सौन्दर्य वास करता है वे ही सर्वकान्ति हैं। अथवा सकल सौन्दर्य की जो अधिष्ठात्री कान्तिमती हैं। अर्थात् करते हैं— “सर्वासाम् लक्ष्मीनाम् कान्तयो यस्याः” इस “पंचमयान्त” बहुब्रीहि समास से कहते हैं, समस्त लक्ष्मीगण की शोभा जिनसे होती है, वे सर्वकान्ति हैं।

पूर्व में “देवी कहि दयोतमाना परमासुन्दरी” इस पयार की व्याख्या में द्युति अथवा शोभा व्याख्या की गई है, यहाँ कान्ति शब्द की वही शोभा ही व्याख्या करने से पुनरुक्ति दोष होता है कारण शोभा, कान्ति, द्युति यह सभी शब्द एकार्थवाचक हैं। इसी कारण शोभा शब्द से सन्तुष्ट न होकर अर्थात् करते हैं। इस पक्ष में ‘कम्’ धातु का अर्थ इच्छा उसके उत्तर में भाववाच्य ‘क्ति’ प्रत्याय करने से कान्ति शब्द निष्पन्न होता है। “सर्वाः कान्तयो यस्याम्” इस सप्तमांत बहुब्रीहि समास से पद की व्याख्या करने पर अर्थ होता है, कृष्ण की सकल (समस्त) इच्छा, अर्थात् सर्वप्रकार प्रीति रसास्वादन की वासना श्रीराधा से ही है। क्योंकि श्रीराधारानी अपने मादनाख्य-महाभाव द्वारा श्रीकृष्ण की सकल प्रकार की प्रीति रसास्वादन की वासनापूर्ण करती हैं। रसिकशेखर श्रीकृष्ण की रसास्वादन वासनापूर्ण करती हैं अतः उनका एक नाम “सर्वकान्ति” है।

“जगत मोहन कृष्ण तांहार मोहिनी।

अतएव समस्तेर परा ठाकुरानी ॥”

‘सम्मोहिनी’ एवं “परा” पद की व्याख्या यह है। कृष्ण जगत-मोहन हैं, श्रीभगवान् की चतुष्पाद विभूति में जो सब अनन्त जीव, माया शक्ति, अनन्त

भगवत् स्वरूप एवं स्वरूप-शक्ति वृन्द हैं- कृष्ण सभी के मोहन हैं, सभी को वे अपने स्वाभाविक सौन्दर्य-माधुर्य गुण से विमोहित करते हैं। उन जगत मोहन श्रीकृष्ण की भी मोहिनी हैं श्रीराधारानी। अन्यान्य महाभाववती गोपियों में भी श्रीकृष्ण मोहन (मोहिनी शक्ति) है किन्तु श्रीराधारानी में सम्यक् मोहन है अतः वे ही “सम्मोहिनी” हैं। इसी कारण श्रीराधा परा, सर्वश्रेष्ठा, सर्वपूज्या हैं। मूल श्लोक के अन्त में ‘परा’ पद प्रयुक्त हुआ है। “परान्ते श्रेष्ठ वाचका” अन्त में प्रयुक्त परा पद श्रेष्ठता का वाचक है। इस नियमानुसार श्रीराधा ही सर्वशक्ति श्रेष्ठा है यह जाना जाता है। श्रीराधा को लक्ष्य करके ही श्लोक के अन्त में ‘परा’ पद पुनः-पुनः प्रयोग हुआ है “लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा”, “रसिका रसिकानन्दा स्वयं रासेश्वरी परा” इत्यादि। श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनकी मूलाशक्ति श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा भी स्वयं भगवती सर्वलक्ष्मीमयी हैं। अनन्त ऐश्वर्य की अधीश्वरी होते हुए भी राधा तत्त्व में ऐश्वर्य का विकास नहीं है; किन्तु यह सोचना भूल है कि उनसे ऐश्वर्य का कोई सम्बन्ध अथवा सम्पर्क ही नहीं। श्रीराधा श्रीकृष्ण की सकल शक्तियों की मूल उत्स (स्रोत) हैं। ब्रज की समस्त गोपियों के मध्य परम मधुर प्रेम की वृत्ति प्रचुर रूप में विद्यमान रहते हुए भी श्रीराधा ही उसकी सारांश उद्रेकमयी हैं।

सेई राधार भाव लया चैतन्यावतार।  
 युगधर्म नामप्रेम कैल परचार॥  
 सेइ भावे निज वाञ्छा करिल पूरण।  
 अवतारेर एइ वाञ्छा मूल जे कारण॥  
 श्रीकृष्णचैतन्य गोसाजि ब्रजेन्द्रकुमार।  
 रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् शृङ्गार॥  
 सेइ वस्तु आस्वादिते कैल अवतार।  
 आनुषङ्गे कैल सब रसेर प्रचार॥67॥

(चै.च.)

श्रीराधारानी प्रेम, रूप, गुण महिमा में समस्त गोपियों की अपेक्षा परमश्रेष्ठा हैं इसी कारण श्रीकृष्ण उनका भाव लेकर श्रीकृष्णचैतन्य रूप में अवतीर्ण हुए एवं अपनी तीन वाञ्छा (1) श्रीराधा प्रेम का गुरुत्व (जिससे स्वयं भगवान् अखण्ड, अद्वयज्ञान तत्त्व स्वरूप श्रीकृष्ण भी उन्मादित हो जाते हैं), (2) श्रीराधा द्वारा (मादन, मोहन आदि महाभावा द्वारा) आस्वादय श्रीकृष्ण

की अद्भुत मधुरिमा एवं (3) श्रीराधा श्रीकृष्ण को अनुभव कर (श्रीराधा का अनुभव श्रीकृष्ण के आनन्द की अपेक्षा कोटि गुणा अधिक है) जो आनन्द लाभ करती हैं) को पूर्ण किया। इन तीन वाञ्छाओं की पूर्ति ही श्रीकृष्ण का श्रीचैतन्यरूप में अवतरण का मौलिक हेतु है। रसमय मूर्ति, साक्षात् शृंगार ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्णचैतन्य हैं, द्वारका-मथुरा के वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ही नहीं। वे ही राधारस आस्वादन के लिए अवतीर्ण हुए और अनुषांगिक भाव से युगधर्म नाम प्रेम का प्रचार एवं अन्य सभी रसों का प्रचार किया। श्रील कविराज गोस्वामीपाद “श्रीराधायाः प्रणय महिमा कीदृशो” इस तीन वाञ्छा विषयक श्लोक की जो सरस व्याख्या की है उसे हम उद्धृत कर रहे हैं।

कृष्णोर विचार एक रहये अन्तरे।  
 पूर्णानन्द पूर्णरस रूप कहे मोरे॥  
 आमा हैते आनन्दित हय त्रिभुवन।  
 आमाके आनन्द दिवे ऐछे कोनजन॥  
 आमा हैते यार हय शत शत गुण।  
 सेइ जन्य आह्लादिते पारे मोर मन॥  
 आमा हैते गुणी बड़ जगते असम्भव।  
 एकलि राधाते ताहा करि अनुभव॥68॥

(चै.च.)

श्रीराधारस माधुर्य आस्वादन के निमित्त प्रलुब्ध श्रीकृष्ण मन ही मन विचार करते हैं- मैं पूर्णानन्द स्वरूप और पूर्णरस स्वरूप हूँ। “आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्” “प्रज्ञानानन्दम् ब्रह्म” इत्यादि श्रुति वाक्यों द्वारा ब्रह्म की आनन्द रूपता जानी जाती है। उसी ब्रह्म की घनीभूत प्रतिमा हैं श्रीकृष्ण। गीता में अर्जुन से कहते हैं- “ब्रह्मनोहि प्रतिष्ठाहम्” मैं ब्रह्म की घनीभूत प्रतिमा हूँ अथवा परब्रह्म मैं ही हूँ। जैसे सूर्य की कान्तिमाला एवं हस्त-पद अवयव युक्त कान्ति मान सूर्य देव, उस कान्तिमाला की घनीभूत प्रतिमा हैं उसी प्रकार।

कृष्णोर अंगेर प्रभा परम उज्ज्वल।  
 उपनिषद् कहे यारे ब्रह्म सुनिर्मल॥

(चै०च०)

निर्विशेष ब्रह्म श्रीकृष्ण की अंगकान्ति है, एवं श्रीकृष्ण घनीभूत परब्रह्म स्वरूप हैं। निर्विशेष ब्रह्मानन्द के अनुभव से मानसानन्द लाभ होता है किन्तु चक्षु-कर्णादि बहिर-इन्द्रियों को आनन्द लाभ नहीं होता, कारण वे निराकार हैं- इसी कारण वे पूर्णानन्द स्वरूप भी नहीं। साकार सविग्रह परब्रह्म श्रीकृष्ण अखण्ड आनन्द स्वरूप हैं- अखण्ड रूप, शब्द रस, स्पर्श और गन्ध से पूर्ण। अतएव मन बुद्धि प्रभृति अंतरेन्द्रियों को एवं चक्षु-कर्णादि बहिरिन्द्रियों को अलौकिक आनन्द दान करने में वे समर्थ हैं। इसी कारण वे पूर्णानन्द स्वरूप हैं। यह आनन्द नित्य एवं शाश्वत भी है अतः वे पूर्ण-रस स्वरूप भी हैं। उन्हीं रस-स्वरूप श्रीकृष्ण को अनुभव कर जीव आनन्दित हो सकता है। “रसो वै सः” “रसम् हैवायम् लब्धानन्दी भवति” (श्रुति) इन सभी शास्त्र वाक्यों से एवं महाजन वाक्यों से श्रीकृष्ण के पूर्णानन्दत्व और पूर्ण रसरूपता के विषय में जाना जाता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं- ‘आनन्द-स्वरूप अथवा रस-स्वरूप मुझसे त्रिभुवन आनन्द लाभ करता है।’ “को हेरवानयात कः प्राणयात यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्”, “एतसैयव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति” इत्यादि (श्रुति) “यदि आकाश के समान व्यापक आनन्द-स्वरूप श्रीभगवान् न होते तो कौन प्राणधारण करने में समर्थ होता?” “जिनके आनन्द के किञ्चित् मात्र अंश का अवलम्बन कर सभी आनन्दित होते हैं”- इत्यादि श्रुतिवाक्यों से जाना जाता है कि श्रीकृष्ण से ही सभी जगत्तों के जीवकुल आनन्द लाभ करते हैं। इस आनन्द लाभ का तारतम्य इस प्रकार है- भक्तगण जो प्रेमानन्द एवं भजनानन्द आस्वादन करते हैं, वह श्रीकृष्ण की ही हलादिनी-शक्ति और सम्वित शक्ति की वृत्ति विशेष है, ज्ञानीगण जो ब्रह्मानन्द लाभ करते हैं वह श्रीकृष्ण की ही अंग छटा का आनन्द है, बहिर्मुख जीवगण जो विषयानन्द लाभ करते हैं वह इस विशुद्धानन्द की ही आभास कणिका मात्र है। कृष्ण विचार करते हैं- “इस भाव से सभी तो मुझसे ही आनन्द लाभ करते हैं सो इस विश्व में ऐसा कौन है जो मुझ आनन्द सिन्धु को आनन्द दान कर सके?” हाँ, यदि किसी में मेरी अपेक्षा शत-शत गुण अथवा असंख्य गुणावली हो तब वह ही मुझ आनन्द स्वरूप को आनन्द दान करने में समर्थ हो सकता है। एकमात्र श्रीराधारानी में ही मैं ऐसा अनुभव करता हूँ। कारण एकमात्र श्रीराधा ही मुझ पूर्णानन्द स्वरूप को आकांक्षा से भी अधिक आनन्दरस दान कर आनन्दित करती हैं। श्रीराधारानी में जो श्रीकृष्ण से अधिक गुणावली विद्यमान है, जिसे

आस्वादन कर आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भी आनन्दित होते हैं, उनके उसी अनुभव की बात कुछेक पयारो में कहते हैं-

कोटि काम जिनि रूप यद्यपि आमार ।  
 असमोर्ध्व माधुर्य्य साम्य नाहि यार ॥  
 मोर रूपे आप्यायित हय त्रिभुवन ।  
 राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन ॥  
 मोर वंशीगीते आकर्षये त्रिभुवन ।  
 राधार वचने हरे आमार श्रवण ॥  
 यद्यपि आमार गन्धे जगत् सुगन्ध ।  
 मोर चित्त प्राण हरे राधा अङ्ग गन्ध ॥  
 यद्यपि आमार रसे जगत् सरस ।  
 राधार अधर रस आमा करे वश ॥  
 यद्यपि आमार स्पर्शे कोटीन्दु शीतल ।  
 राधिकार स्पर्शे आमा करे सुशीतल ॥  
 एङ्ग मत जगतेर सुखे आमि हेतु ।  
 राधिकार रूपगुण आमार जीवातु ॥69 ॥

(चै.च.)

श्रीराधारानी का रूप, शब्द, गंध, रस एवं स्पर्श इन पंच विषयों में सर्वरूप, सर्वशब्द, सर्वगंध, सर्वरस एवं सर्वस्पर्श कह कर श्रुति जिनका परिचय प्रदान करती हैं- उन्हीं अखण्ड रूप आदि पंचगुणों में अतुलनीय श्रीकृष्ण को भी श्रीराधा के रूप आदि गुण किस प्रकार विमुग्ध और विमोहित करते हैं, इस विषय में स्वयं अपना अनुभव व्यक्त करते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं- 'मेरा रूप कोटि-कंदर्प-विजयी है। मेरा माधुर्य असमोर्ध्व है- जिसकी कहीं तुलना नहीं।' विश्व में ऐसी प्रसिद्धि है कि मदन ही सर्वापेक्षा सुन्दर है, अप्राकृत नवीन मदन श्रीगोविन्द की रूपमाधुरी के दर्शन कर वह मदन भी मोहित हो जाता है, इसी कारण श्रीगोविन्द का एकनाम 'मदनमोहन' है। यदि प्रश्न उठे कि फिर श्रीकृष्ण का रूपमाधुर्य किसके तुल्य है? इसके उत्तर में कहते हैं, मेरा माधुर्य असमोर्ध्व है अर्थात् अधिक की तो बात दूर रही मेरे रूप की समता भी कहीं नहीं। श्रीमद्भागवत कहती हैं-

"असमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्", इसकी व्याख्या में श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं-

जे माधुरी ऊर्ध्व आन, नाहि जार समान, परव्योमे स्वरूपेरगणें।  
 येहों सर्व अवतारी, पर व्योमे अधिकारी, ऐ माधुर्य नाहि नारायणे ॥  
 ताते साक्षी सेई रमा, नायणेर प्रियतमा, पतिव्रता गणे उपास्या।  
 तेहों ये माधुर्य लोभे, छाडि सब काम भोगे, व्रत करि करिल तपस्या ॥  
 सेई त माधुर्य सार, अन्य सिद्धि नाहि तार, तेंहो माधुर्यादि गुणखानि।  
 आर सब प्रकाशे, ताँर दत्त गुण भासे, याहाँ यत प्रकाशे कार्य जानि ॥

(चै.च.)

श्रीकृष्ण और श्रीनारायण स्वरूपतः अभिन्न होते हुए भी श्रीकृष्ण के रूप से आकृष्ट हो श्रीनारायण की वक्षविलासिनी श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीकृष्ण माधुरी आस्वादन के लिए तपस्या करती हैं ऐसा श्रीमद्भागवतम् में वर्णित है। “यदवांछया श्रीर्ललनाचरततपो, विहाय कामान् सुचिरम् धृतवृता।” यह श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी की अतुलनीयता को दर्शाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं— “मेरे रूपमाधुर्य से सारा विश्व आप्यायित होता है किन्तु श्रीराधा की रूपमाधुरी के दर्शन कर मेरे भी नयन तृप्त होते हैं।” इसी से समझा जाता है कि विश्वविमोहन श्रीकृष्ण को भी मोहित करने वाला श्रीराधा का रूपमाधुर्य कितना असाधारण है। मादनाख्य महाभाव से उत्पन्न है यह रूपमाधुरी, तभी इससे रसराज को भी रसमोह होता है।

श्रीकृष्ण का कण्ठस्वर एवं वंशीगीत त्रिभुवन की सभी श्रवणेन्द्रियों को आकर्षित करता है। श्रीकृष्ण की कण्ठ ध्वनि के माधुर्य वर्णन में श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं—

कण्ठेर गम्भीर ध्वनि, नवघन ध्वनि जिनि, यार गुणे कोकिल लाजाय।  
 तार श्रुति एक कणे डूबे जगतेर काने पुनः कान बाहडि न अहाय ॥

सेई श्रीमुखभाषित, अमृत हैते परामृत,  
 स्मित कर्पूर ताहाते मिश्रित।

शब्द अर्थ दुई शक्ति नाना रस करे व्यक्ति प्रत्यक्षे नर्म विभूषित ॥  
 से अमृतेर एक कण, कर्म कर्ण चकोर जीवन, कर्ण चकोर जिए सेइ आशे।  
 भाग्य वशे कभू पाये अभागे कभू न पाय, ना पाइले मरे पियासे ॥

वंशीमाधुरी श्रीकृष्ण का और एक असाधारण गुण है। इस गुण पर भुवन पागल है। इसके माधुर्य से सब कुछ मधुमय हो जाता है। यह सुधा स्थावर-जंगम सभी को मोहित कर देती है। सचल अचल और अचल सचल

हो उठता है। “आस्पन्दम् गतिमताम पुलकस्तरूणाम्” ( भा. ) । त्रिभुवन की आकर्षक, महामोहनकारी है वेणु की स्वर लहरी।

रुंधन्नम्बूभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहस्तुम्बुरुम् ।  
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम् ॥  
उत्सुक्यावलिभिर्वलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाधुर्यनयन् ।  
भिन्दन्तंतेकटाहभित्तिमभितो वभ्राम वंशीध्वनिः ॥70 ॥

“गगनचारी मेघों का गतिरोध, गन्धर्वराज तुम्बुरु के चित्त में पुनः-पुनः चमत्कारित्व सम्पादन, सनक-सनन्दन आदि की समाधि भंग, विधाता का विस्मयोत्पादन, उत्सुकता के कारण बलिराजा का चांचल्य सम्पादन, नागराज का मस्तक घूर्णन, ब्रह्माण्ड (के आवरण) का विदारण कर वंशीध्वनि सर्वत्र भ्रमण करती है।” इस भाव से त्रिभुवन को आकर्षित करना ही वंशी का स्वभाव है।

से ध्वनि चौदिके धाय, अंद्रभेदि वैकुण्ठे जाय, बले पैशे जगतेर काने ।  
सवा मातोयाल करि, बलात्कारे आने धरि, विशेषतः युवतीर गणे ॥  
से ध्वनि बड़ उद्धत, पतिव्रतार भाँगे व्रत, पतिकोल हैते टानि आने ।  
वैकुण्ठेर लक्ष्मीगणे, जेई करे आकर्षणे, तार आगे केवा गोपीगणे ॥

(चै०च०)

जिनके कण्ठस्वर एवं वंशी का स्वभाव ही है इस प्रकार त्रिभुवन को आकर्षित करना उन्हीं श्रीकृष्ण के भी श्रवण-मनन को हरण कर लेती है श्रीराधारानी की वचन-माधुरी।

इस प्रकार श्रीकृष्ण की अंग-गंध से जगत सुगन्धित हो जाता है।  
कर्पूर लिप्त नीलोत्पल, तार जेई परिमल, ताहा जिन कृष्ण अंग गन्ध ।  
व्यापे चौद्दभुवने, करे सर्व-आकर्षणे, नारीगणेर आँखि करे अन्ध ॥  
सखि हे कृष्ण गन्ध जगत माताय ।

नारि नासाय पैशे, सर्वकाल ताहा वैसे, कृष्णपाशे धरि लैया जाय ॥  
नेत्र, नाभि, वदन, करयुग, चरण, एई अष्टपदम कृष्ण अंगे ।  
कर्पूरलिप्त कमल, तार येँछे परिमल, सेई गन्ध अष्टपदम संगे ॥  
हेमकीलित चन्दन, ताहा करि घर्षण, ताहे अगुरु कुमकुम कस्तुरी ।  
कर्पूर सने चर्चा अंगे, पूर्व अंगेर गन्ध संगे, मिलि डाका येन कैल चूरि ॥

(चै०च०)

इस प्रकार विश्व की चित्ताकर्षक जिनकी श्रीअंग गंध है उन श्रीकृष्ण के चित्त और घ्राणेन्द्रिय को भी हरण करती है श्रीराधारानी की अंग गंध।



श्रीकृष्ण के अधरामृत रस से त्रिभुवन आप्यायित हो जाता है।  
श्रीमद्भागवत में (10/31/14) ब्रजगोपीगण की उक्ति—

सुरतवर्द्धनं योक्नाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतररागविस्मरणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥71॥

श्रीमन्महाप्रभु के प्रलाप में श्रील कविराज गोस्वामीपाद इसी श्लोक की अपूर्व व्याख्या करते हैं—

“तन-मन करे क्षोभ, बाढ़ाय सुरत लोभ, हर्ष शोकादि-भाव विनाशय।  
पासराय अन्यरस, जगत करे आत्मवश, लज्जा धर्म धैर्य करे क्षय॥

नागर! शून तोमार अधर चरित।

माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण, विचारिते सब विपरीत॥  
आछुक नारीर काज, कहिते वासिये लाज, तोमार अधर बड़ धृष्टराय।  
पुरुष करे आकर्षण, आपना पियाइते मन, अन्य सब रस पासराय॥  
सचेतन बहु दूरे, अचेतन सचेतन करे, तोमार अधर बड़ बाजीकर।  
तोमार वेणु शुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय मन, तारे आपना पियाय निरन्तर॥  
अधरामृत निजस्वरे संचारिया सेइ बले, आकर्षये त्रिजगतेर मन

इत्यादि (चै०च०)

जिनके अधरामृत का ऐसा प्रभाव है, श्रीराधारानी का अधर-रस उन्हें भी एकान्त वशीभूत किए रखता है।

जिनके श्रीअंग का स्पर्श कोटि चन्द्रमाओं की अपेक्षा भी सुशीतल है—  
“कृष्ण अंग सुशीतल, कि कहिब तारबल छटाय जिने कोटिन्दू चंदन” इत्यादि  
(चै.च.) श्रीराधारानी के स्पर्श से वे भी सुशीतल देह श्रीराधा के विरह ज्वर से जब अतिशय उत्तप्त हो जाता है, तब राधा-अंग स्पर्श के अतिरिक्त शत-कोटि गोपियों के स्पर्श से भी वह शीतल नहीं होता। यह सभी स्वयं श्रीकृष्ण के ही अनुभव हैं। श्रीकृष्ण विश्व के सुख के एकमात्र कारण होते हुए भी श्रीराधारानी के रूप-गुण आदि उनके जीवाणु हैं।  
“कृष्णेन्द्रियाह्लादिगुणैरूदारा श्रीराधिका राजति राधिकेव।” (गो.ली. 11/118)  
श्रीकृष्ण विषय तत्त्व रूप से श्रीराधा माधुरी आस्वादन में स्वयं के अनुभव की बात कहते हैं फिर जिसमें स्वयं श्रीकृष्ण का लोभ है उस आश्रय तत्त्व श्रीराधा का श्रीकृष्ण के माधुर्यानुभव में कैसा आनन्द है उसकी बात कहते हैं—

एइमत अनुभव आमार प्रतीत। विचारि देखिये यदि सब विपरीत॥  
राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन। आमार दर्शने राधा सुखे अगेयान॥

परस्पर वेणुगीते हरये चेतन। मोर भ्रमे तमालेरे करे आलिङ्गन॥  
 कृष्ण आलिङ्गन पाइनु जनम सफले। सेइ सुखे मग्न रहे वृक्ष करि कोले॥  
 अनुकूल वाते जदि पाय मोर गन्ध। उड़िया पड़िते चाहे प्रेमे हजा अन्ध॥  
 ताम्बूल-चर्वित जवे करे आस्वादने। आनन्द-समुद्रे मग्न किछुइ ना जाने॥  
 आमार सङ्गमे राधा पाय जे आनन्द। शत मुखे कहि जदि नाहि पाइ अन्त॥  
 लीला अन्ते सुखे इहार जे अङ्ग माधुरी। ताहा देखि सुखे आमि आपना पासरि॥  
 दोंहार जे सम रस भरतमुनि माने। आमार ब्रजेर रस सेह नाहि जाने॥  
 अन्यान्या सङ्गमे आमि यत सुख पाइ। ताहा हैते राधा-सुख शत अधिकाइ॥72॥

(चै.च.)

श्रीराधा के स्पर्श आदि पंचगुणों से श्रीकृष्ण की पंचेन्द्रियों के सुख अतिशयता की बात का उल्लेख कर श्रीकृष्ण के पंचगुणों से श्रीराधा के चक्षु प्रभृति पंचेन्द्रियों को (श्रीकृष्ण के सुख की अपेक्षा) जो शत गुण सुख लाभ होता है वह प्रतिपादन करते हैं। क्योंकि श्रीराधा के उस सुखातिशय के प्रति लुब्धता ही श्रीराधा की भाव-कान्ति लेकर श्रीकृष्ण का गौर रूप में अवतरण का मूल कारण है। श्रीकृष्ण कहते हैं, मेरा रूप आदि समस्त विश्व के सुख का हेतु हैं, और फिर श्रीराधा का रूप आदि मेरे सुख का हेतु है, यह मेरा अनुभव है। किन्तु विचार करने पर सब विपरीत लगता है। श्रीराधा के रूपादि के निशेवन से मेरी चक्षु आदि इन्द्रियों को जिस परिमाण में सुख होता है, मेरे रूपादि के दर्शन आदि से श्रीराधा को तदपेक्षा कम सुख होना चाहिये, कारण पूर्वयुक्ति के अनुसार मेरा रूप आदि श्रीराधा के रूप आदि की अपेक्षा न्यून (अल्प) है। किन्तु मेरे रूप आदि के अनुभव से श्रीराधा की इन्द्रियों को मेरी अपेक्षा शत गुण सुख होता है। यह विपरीत विषय है।

श्रीराधा के दर्शन से मेरे नयन तृप्त हो जाते हैं किन्तु मेरे दर्शनों की अतिशयता से श्रीराधा को आनन्द मूर्छा हो जाती है। श्रीराधा की वाणी श्रवण कर मेरी श्रवणेन्द्रिय अपहृत (मोहित) हो जाती है, किन्तु मेरा वंशी गीत साक्षात् श्रवण करना तो दूर की बात, वंशी-गीत विषयक परस्पर आलोचना श्रवण से ही वे अचेतन हो जाती हैं- उन्मादित हो जाती है। उस उन्मादना का आधिक्य ऐसा है कि वे मेरे भ्रम में तमाल वृक्ष को आलिङ्गन कर लेती हैं। “श्रीकृष्ण का आलिङ्गन प्राप्त कर लिया- मेरा जीवन धन्य हो गया” ऐसा कहती हैं और तमाल को आलिङ्गन कर सुखसागर में निमग्न हो जाती हैं। श्रीराधा की अंग गंध से मेरा चित्त एवं घ्राणेन्द्रिय विमोहित हो जाती हैं किन्तु

श्रीराधारानी दूर रहते हुए ही वायु में मेरी अंग गंध पाते ही बाह्यज्ञान शून्य हो भुंगी के समान उसी दिशा में उड़ जाना चाहती है।

श्रीराधा का साक्षात् अधररस मुझे वशीभूत करता है, अर्थात् उस अधररस के आस्वादन से मैं वशीभूत हो जाता हूँ, किन्तु श्रीराधा मेरे चर्वित ताम्बूल मात्र के आस्वादन से आनन्द सागर में मग्न हो अन्य रस आदि कुछ भी समझ नहीं पाती हैं। श्रीराधा के अंग-स्पर्श से मैं सुशीतल हो जाता हूँ किन्तु मेरे अंग स्पर्श से श्रीराधा जो आनन्द पाती हैं, मैं शत मुखों से उसका वर्णन करके भी उसका अन्त (पार) नहीं पाता। सम्भोग के अंत में उनका सम्भोग रसास्वादन जनित अनिर्वचनीय आनन्द दर्शन कर मैं आत्मविस्मृत हो जाता हूँ, अतः उसका वर्णन मेरे द्वारा कभी सम्भव नहीं। श्रीभरतमुनि प्राकृत नायक-नायिका का सम्भोग रस समान है, ऐसा वर्णन करते हैं। वे हमारे ब्रज-रस को नहीं जानते। ब्रजरस अप्राकृत है अतएव अतीव विलक्षण है। श्रीश्रीराधामाधव वहाँ प्रेमानुरूप आस्वादन है। श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीराधा का प्रेम अधिक है, उनमें मादनाख्य महाभाव विराजित है जो श्रीकृष्ण में भी नहीं। अतएव श्रीराधा के सम्भोगानन्द का भी श्रीकृष्ण (के आनन्द की) अपेक्षा शत गुणा अधिक एवं अतीव विलक्षण होना स्वाभाविक ही है। रसशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ब्रज के रस को नहीं जानते। श्रीमन्महाप्रभु की करुणा से उनके पार्षद प्रवर श्रीमद् रूपगोस्वामी प्रभृति ने उज्ज्वल नीलमणि आदि रस-शास्त्रों में श्रीश्रीराधामाधव के अप्राकृत शृंगार-रस का वर्णन किया है। उसमें श्रीराधा के मोहन, मादन आदि भावों की अनन्त आकर्षण वैचित्री देखी जाती है। तभी श्रीराधा के भाव से स्वीय माधुरी आस्वादन के निमित्त श्रीकृष्ण का संकल्प है—

ताते जानि मोते आछे कोन एक रस।  
 आमार मोहिनी राधा तारे करे वश॥  
 आमा हैते राधा पाय जे जातीय सुख।  
 ताहा आस्वादिते आमि सदाइ उन्मुख॥  
 नाना यत्न करि आमि नारि आस्वादिते।  
 सेइ सुखमाधुर्य्य घ्राणे लोभ बाड़े चिते॥  
 राधिकार भाव कान्ति अङ्गीकार बिने।  
 सेइ तीन सुख कभु नहे आस्वादाने॥

राधाभाव अङ्गीकरि धरि तारं वर्ण।  
 तीन सुख आस्वादिते हब अवतीर्ण॥  
 सर्वभावे कैल कृष्ण एइ त निश्चय।  
 हेनकाले आइला युगावतार समय॥  
 सेइ काले श्रीअद्वैत करेन आराधन।  
 ताँहार हुङ्कारे कैल कृष्ण आकर्षण॥  
 पिता माता गुरुगणे आगे अवतारि।  
 राधिकार भाव वर्ण अङ्गीकार करि॥  
 नवद्वीपे शचीगर्भ शुद्धदुग्धसिन्धु।  
 ताहाते प्रकट हैला कृष्ण-पूर्ण-इन्दु॥73॥

(चै.च.)

श्रीकृष्ण सोचते हैं—मुझमें ऐसा कौन सा अनिर्वचनीय रस अथवा आस्वादन वैचित्र्य विद्यमान है जो मेरी मोहिनी श्रीराधा को भी वशीभूत करता है। मुझे आस्वादन कर श्रीराधा जो कोटि गण सुख लाभ करती हैं, उसे आस्वादन करने के निमित्त मैं सर्वदा ही उन्मुख अथवा उत्कण्ठित होता हूँ। नाना प्रकार से चेष्टा करने पर भी वह आस्वादन नहीं कर पाता, अतः उस अनिर्वचनीय माधुर्य के आस्वादन की लिप्सा मेरे चित्त में सतत लोभ बढ़ाती रहती है। श्रीराधा का भाव एवं कान्ति को अंगीकार करने के अतिरिक्त इन (1) श्रीराधा की प्रणय महिला, (2) श्रीराधा द्वारा आस्वादित मेरा अद्भुत माधुर्य, (3) मेरे अनुभव से उत्पन्न श्रीराधा का कोटि गण सुख-तीन वांछाओं की पूर्ति का कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न हो सकता है, यह तीन वांछाएँ तो मनोधर्म हैं, भाव ग्रहण के द्वारा ही इन तीन वांछाओं की पूर्ति सम्भव है, कान्ति ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है, केवल भाव ग्रहण करने से अंतर-दशा में तीन वांछाओं का आस्वादन होगा किन्तु जब बाह्य दशा प्राप्त होगी तब आवेश भंग होने से आस्वादन बाधित होगा। कान्ति ग्रहण करने से अंतर एवं बाह्य दोनों दशाओं में अबाधित (स्वच्छन्द) भाव से आस्वादन धारा चलती रहेगी। तीन वांछाओं की पूर्ति के लिए निमित्त श्रीकृष्ण ने श्रीराधा का भाव-कान्ति ग्रहण करने का संकल्प किया, उसी समय युगावतार का समय भी उपस्थित हो गया। किसी महाप्रेमिका महानुभाव के आकुल आवाहन के बिना श्रीभगवान् की कोई प्रकट लीला नहीं होती। ठीक उसी समय श्रीअद्वैत प्रभु विश्व जीव

की दुख-दुर्दशा दर्शन कर श्रीकृष्ण को अवतरित कराने का संकल्प ले गंगाजल एवं तुलसी द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा करने लगे एवं महा-आवेशमय हुंकार करने लगे। पिता-माता प्रभृति गुरुवर्ग को पहले अवतीर्ण कर श्रीअद्वैत की प्रेम भरी हुंकार से आकृष्ट श्रीकृष्ण स्वयं शची माता के गर्भ सिन्धु से श्रीगौरचन्द्र रूप में अवतीर्ण हुए। श्रीराधा भावाविष्ट श्रीकृष्ण का स्वयं का आस्वादन करने के लिए एवं आनुषांगिक भाव से विश्व-जीव को प्रेम दान कर धन्य करने के लिए जो श्रीगौरांग रूप में अवतरण है इस विषय में श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ग्रन्थ के मंगलाचरण श्लोक में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं—

स्तमस्तं चैतन्याकृतिमतिविमर्यादपरमा-  
दभूतौदार्यं वर्यां ब्रजपतिकुमारं रसयितुम्।  
विशुद्धस्वप्नेमोन्मद-मधुर-पीयूषलहरीं  
प्रदातुं चान्नेभ्यः परपद-नवद्वीपप्रकटिम् ॥74 ॥

“जो ब्रजेन्द्रनन्दन की रसमाधुरी स्वयं को आस्वादन कराने के लिए एवं विश्व के जीव-कुल के हर्ष आदि संचारी भाव के द्वारा तरंगायित स्वीय सुनिर्मल प्रेमामृत धारा में अवगाहन करवाने के लिए परम धाम श्रीनवद्वीप में आविर्भूत हुए हैं— उन्हीं अपरिसीम प्रेमाभूत कारुण्यघन विग्रह श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की हम वन्दना करते हैं।” श्रील रामराय श्रीमन्महाप्रभु से कहते हैं—

राधिकार भावकान्ति करि अङ्गीकार।  
निजरस आस्वादिते करियाछे अवतार ॥  
निज गूढकार्य्ये तोमार प्रेम आस्वादन।  
आनुषङ्गे प्रेममय कैल त्रिभुवन ॥75 ॥

(चै.च.)

अनन्त माधुर्यमय शृंगार-रसमय मूर्ति हैं श्रीकृष्ण एवं महाभाव की मूर्ति हैं श्रीराधा—इस रसराज-महाभाव के मिलन से जो अपरूप मधुमय रसमय मूर्ति प्रकटित हुई है, उसकी तुलना कहीं भी नहीं। “न चैतन्यात् कृष्णाज्ज-गतिपरतत्त्वम् परमिह।” श्रीराधाकृष्ण मिलित विग्रह श्रीकृष्णचैतन्य की अपेक्षा विश्व में और परतत्त्व कोई नहीं। श्रील कविकर्णपूर लिखते हैं—

माधुर्य्यैमधुभिः सुगन्धि भजन-स्वर्णाम्बुजानां वनम्।  
कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचितः सत्प्रेमहेमाचलः ॥  
भक्ताम्भोधरघोरनी-विजयिनी निष्कम्पशम्पावलि-  
देवो नः कुलदैवतं विजयतां चैतन्यकृष्णो हरिः ॥77 ॥

“जो माधुर्यरूपी मधु राशि के द्वारा सौरभमय भजनरूपी स्वर्णकमलों के वन स्वरूप हैं, जो कारुण्यामृत रूपी निर्झरिणी समूह के द्वारा सुसमृद्ध उज्ज्वल प्रेमरत्न राशि के आकर सुमेरु-गिरि स्वरूप हैं, जो भक्तरूपी जलद माला में स्थिर-सौदामिनी स्वरूप हैं, हमारे कुलदेवता वही श्रीकृष्णचैतन्य हरि सर्वोत्कर्ष के संग विराजें।” श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद लिखते हैं—

सौन्दर्ये कामकोटिः सकलजनसमाह्लादने चन्द्रकोटि-  
 वात्सल्ये मातुकोटि स्त्रिदशविटपिनां कोटिरौदार्यसारे।  
 गाम्भीर्योऽम्भोधिकोटिर्माधुरिमणि सुधाक्षीर माधवीक कोटि-  
 गौरो देवः स जीयात् प्रणयरसपदे दशिताश्चर्याकोटिः ॥77॥

(चैतन्यचन्द्रामृतम्-101)

“जो सौन्दर्य में कोटि काम (कामदेव) की अपेक्षा परम सुन्दर हैं, समस्त जीवों को आनन्द दान करने में जो कोटि चन्द्रमाओं की अपेक्षा अधिक परमानन्ददायक हैं, वात्सल्य में जो कोटि माताओं की अपेक्षा सुवत्सल हैं, औदार्य में जो कोटि कल्पतरुओं की अपेक्षा परम उदार हैं, गाम्भीर्य में जो कोटि सिन्धुओं की अपेक्षा परम सुगम्भीर हैं, मधुरता में जो कोटि-कोटि सुधा, दुग्ध और मधु की अपेक्षा परम मधुर हैं, जो प्रेमरस के विषय में कोटि-कोटि चमत्कारिता प्रदर्शित करते हैं—वहीं श्रीगौरांगदेव सर्वोत्कर्ष के संग विराजें।”

अमिया मखिया के वा, लवनि तुलिल गो, ताहाते गड़िल गोरा-देह।  
 जगत छानिया के वा, रस निङ्गाड़िल गो, एक कैल सुधइ सुलेह॥  
 अखण्ड पीयूष-धारा, के वा आउटिल गो, सोनार वरणे हैल चिनि।  
 से चिनि मारिया के वा, फेनि तुलिल गो, हेन वासि गोरा-अङ्गखानि॥  
 अनुरागेर दधि, प्रेमर साचना दिया, के ना पातियाछे आँखि दूटि।  
 ताहाते अधिक महु, लहू लहू कथाखानि, हासिया कहये गुटि गुटि॥  
 विजुरी बाटिया के वा, गाखनि-माजिल गो, चाँदे माजिल मुखखानि।  
 लावण्य बाटिया के वा, चित्र निरमाण कैल, अपरूप रूपेर वलनि॥  
 सकल पूर्णिमा-चाँदे, विकल हइया कान्दे, कर-पद-पदमेर गन्धे।  
 कुड़िटि नखेर छटाय, जगत आलो कैल गो, आँखि पाइल जनमेर अन्धे॥

गोविन्द मुनीन्द्र किवा, मने गणे रात्रि दिवा, गोरा-रूपे लागि गेल धान्दा।  
 अखिल भुवन-पति, धुलाय लुटाजा कान्दे, सदाइ सोंमरे राधा राधा॥  
 लखिमी-विलास छाड़ि, प्रेम अभिलाषी गो, अनुरागे राङ्गा दूटि आँखि।  
 राधार धेयाने हिया, कि साजे साजिल गो, एइ गोरा तनु तार साथी॥

देखरे देख रे लोक, हेन प्रेमा अपरूप, त्रिजगत नाथ-नाथ हैया।  
 अकिञ्चनेर सने, कि लागि कि धन मागे, कि ना सुखे बुलये नाचिया ॥  
 जय रे जय रे जय, हेन प्रेम रसालय, भाङ्गि विलाइल गोरा राय।  
 निज्जीवे जीवन पाइल, पङ्क गिरि भिङ्गाइल, आनन्दे लोचनदास गाय ॥  
 “काँचा काञ्चन मणि, गोरा रूप ताहे जिनि, डगमगि प्रेमेर तरङ्ग।  
 ओ नव कुसुम दाम, गले दोले अनुपाम, हिलन नरहरि अङ्ग ॥  
 विहरइ परम आनन्दे।

नित्यानन्द करि सङ्गे, यमुना पुलिन रङ्गे, हरि हरि बोले निजवृन्दे ॥  
 भावे अवश तन, पुलक कदम जनु, गरजइ यैछन सिंहे।  
 निजप्रिय गदाधर, धरियाछे वाम कर, निजगुण गाउइ गोविन्दे ॥  
 ईषत् अधरे पहुँ, लहू लहू हासत, बोलत कत अभिलाषे।  
 सोमरि से सब खेला, वृन्दावन रस-लीला, कि बलिव वासुदेव छोषे ॥  
 “सहजइ काञ्चन, कान्ति कलेवर, हेरइते जगजन मनमोहनिया।  
 ताहि कत कोटि, मदन मुरुछाओल, अरुण किरण हर अम्बर बनिया ॥  
 राइ प्रेमभरे, गमन सुमंथ, अन्तर गर गर पड़इ धरणीया।  
 स्वेद कम्प घन, घन पुलकावलि, घन हुहुङ्गार करत गरजनिया ॥  
 डगमग देह, थेह नाहि बान्धइ, दुहुँ दिठि मेह सघने वरिखनिया।  
 उरसे भोर, उर नाहि पायइ, पतित कोरे धरि लोर सिचनिया ॥  
 हरि हरि बलि, रोइ कत विलपइ, वञ्चित बलराम दिवस रजनीया ॥78 ॥

(श्रीगौरांग के तीन—वांछा आस्वादन के प्रकार)—ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीराधा के प्रेम रसास्वादन पर प्रलुब्ध हो अपनी “तीन वांछा” पूर्ति के लिए श्रीराधा की भाव-कान्ति अंगीकार कर श्रीगौरांग रूप में अवतीर्ण हुए। मुख्य कार्य श्रीराधा के प्रेम रस का आस्वादन एवं आनुषांगिक कार्य समस्त विश्व में प्रेम का प्रचार। श्रीमन्महाप्रभु की नवद्वीप लीला में आनुषांगिक कार्य प्रेम प्रचार की ही प्रधानता दिखाई देती है। पार्षदगण के संग नृत्य-कीर्तन रंग में अद्भुत प्रेम का प्रकाश एवं प्रचार है। यद्यपि वे छन्नावतार है, तथापि सात प्रहरिया प्रभृति भाव की विविध इशी-लीला प्रकाशित हुई जिससे प्रेम प्रचार कार्य सुगम हो गया। अवश्य ही लीला द्विविध हैं— प्रकट एवं अप्रकट। अप्रकट लीला में अथवा नित्यलीला में श्रीनवद्वीप धाम में लीला के दो मुख्य संगी श्रीस्वरूप दामोदर और रामानन्द राय के संग सपार्षद अष्टकाल श्रीराधा के भाव में ब्रजरस की आस्वादन परम्परा चलती है। जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आन्तरिक भजन स्मरण-मनन आदि उपासना की विषय वस्तु

है। प्रकट लीला में श्रीस्वरूप दामोदर और रामानन्दराय महाप्रभु की नीलाचल लीला के संगी हैं। उनके संग ही गम्भीरा लीला में निरविच्छिन्न भाव से तीन वाञ्छाओं का अभूतपूर्व आस्वादन है। नीलाचल लीला में श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीराधा के विरह भाव के माध्यम से अपनी अभीष्ट तीन वाञ्छाओं को पूर्ण किया।

विरह में ही प्रेम का सर्वाधिक विकास है। मिलन-भूमि पर गोपिकाओं के निकट केवल एक कृष्ण रहते हैं, किन्तु विरह में उनके निकट त्रिभुवन कृष्णमय हो उठता है। विरह में ही प्रेम की पूर्णतम अभिव्यक्ति है। जैसे कोई विशाल हाथी जब स्वाभाविक भाव से पथ पर चला जा रहा हो, तब उसकी देह में कितनी शक्ति है यह समझा नहीं जा सकता, किन्तु वही हाथी यदि शृंखला में बंधा हो एवं शृंखला को छिन्न करने के लिए देह की समग्र शक्ति नियोग करे; तब उसकी शक्ति दर्शकगण को विस्मित कर देती है। उसी प्रकार गोपियाँ जब मिलन भूमि पर रहती हैं तब उनके प्रेम की शक्ति अभिव्यक्त नहीं होती- कारण वे गोपी हैं, (अपने प्रेम को गुप्त रखना वे पसन्द करती हैं)। किन्तु उनका प्रेमरूपी हाथी जब विरह-शृंखला में आबद्ध होता है एवं उस शृंखला को छिन्न करने के लिए विपुल भाव से शक्ति लगाता है तब उनके प्रेम का प्रभाव दर्शन कर सभी विस्मित एवं चमत्कृत हो जाते हैं। सर्वोपरि गोपी-शिरोमणि श्रीराधारानी। विरह में उनके प्रेम का सर्वाधिक विकास होता है। माथुर विरह में उनका मोहनाख्य-भाव दिव्योन्माद आदि अति अद्भुत दशा को प्राप्त होता है। हम क्रमशः उसकी आलोना करेंगे।

यहाँ प्रश्न उठता है- श्रीराधारानी के प्रेम सुख आस्वादन के निमित्त ही श्रीकृष्ण की तीन वाञ्छा का उद्गम हुआ- जो श्रीकृष्ण का गौर रूप में अवतरित होने का मुख्य कारण है। विरह केवल ज्वालामय अथवा अतिशय दुःखमय होता है; महाप्रभु की अभीष्ट तीन वाञ्छाओं का सुख मिलन भूमि पर आस्वादन करना सम्भव होता ? महादुःखमय अथवा ज्वालामय विरह दशा में इन त्रिविध वाञ्छाओं का सुखास्वादन किस प्रकार सम्भव हुआ ? इसके उत्तर में कहा गया है कि विरह केवल मिलन की परिपुष्टि का साधन है ऐसा नहीं है, कृष्ण विरह को गोस्वामीपाद गण “विप्रलम्भ रस” नाम भी देते हैं। कृष्ण प्रेम का ऐसा एक अद्भुत स्वभाव है कि क्या मिलन में क्या विरह में दोनों दशाओं में ही प्रेमी के अंतस में एक अखण्ड आस्वादन धारा चती रहती है।



“बाह्ये विषज्वाला ह्य, भितरे आनन्दमय, कृष्ण प्रेमार् अद्भुत चरित।”  
 “एई प्रेमार् आस्वादन, तप्त इक्षु चर्वण मुखज्वले ना जाय त्यजन।  
 सेई प्रेमा यार मने, तार विक्रम सेइ जाने, जेन विषामृत एकत्र मिलन॥”

(चै०च०)

प्रेम ह्लादिनी शक्ति की सारवृत्ति है अतएव प्रेम में आनन्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। प्रेम के ही दो कलेवर हैं- एक मिलन दूसरा विरह। अतएव दोनों ही दशाओं का आनन्दमय होना स्वाभाविक है। यहाँ तक की विरह दशा मिलन दशा से भी अधिक आनन्दमय अथवा रसमय दशा है ऐसा प्रतिपादित किया गया है। श्रीवृहदभागवतामृत में वर्णित है। (1/7/125-126)

प्राग्यद्यपि प्रेमकृतात् प्रियाणां विच्छेददावानलवेगतोहन्तः।

सन्तापजातेन दुरन्तशोकावेशेन गाढं भवतीव दुःखम्॥

तथापि सम्भोगसुखादपि स्तुतः स कोऽप्यनिर्वाच्यतमो मनोरमः।

प्रमोदराशिः परिणामतो ध्रुवं तत्र स्फुरेतद्रसिकैकवेद्यः॥79॥

अर्थात् यद्यपि प्रथमतः प्रेम के कारण प्रियजन के विहररूपी दावानल के वेग से अन्तःकरण में तीव्र संताप जन्मता है एवं उससे असीम शोक प्रकट होता है एवं शोकावेग के कारण अंतस में अतिशय दुख होता है, यह ठीक है, तथापि वह दुख परिणाम में सुख स्वरूप होने से अनिर्वचनीय मनोरम प्रमोद राशि का स्फुरण करा देता है। अर्थात् विरह जनित दुख कुछ समय के लिए दुख के समान प्रतीत होते हुए भी वह सुख स्वरूप अथवा सुख की ही घनीभूत परिपाक (अवस्था) विशेष है। यह केवल मात्र रसिक जनों के अनुभव का विषय है। इसी कारण श्रीमन्महाप्रभु ने गम्भीरा लीला में श्रीराधारानी के मोहनाख्य विरह दशा के चरम अनुभाव दिव्योन्माद दशा का अवलम्बन कर तीन वाञ्छाओं का आस्वादन किया।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद श्रीचैतन्यचरितामृत में अन्त्यलीला 14वें परिच्छेद से 19वें परिच्छेद तक छः परिच्छेदों में उसकी विशद भाव से वर्णन करते हैं। मध्य लीला में द्वितीय परिच्छेद में वे इस लीला की वे सूत्र रूप में वर्णन करते हैं, कारण वृद्धावस्था के कारण उन्होंने सोचा कि दिव्योन्माद लीला के वर्णन तक वे जीवित रहेंगे या नहीं? उन्होंने सूत्र वर्णन के अंत में स्वयं ही लिखा है-

आमि वृद्ध जरातुर, लिखिते काँपये कर, मने किछु स्मरण ना ह्य।

ना देखिये नयने, ना शूनिये श्रवणे, तभु लिखि ए बड़ विस्मय॥

एइ अन्त्यलीला सार, सूत्रमध्ये विस्तार, करि किछु करिल वर्णन ।  
इहा मध्ये मरि यवे, वर्णिते ना पारि तबे, एइ लीला भक्तगण-धन ॥  
संक्षेपे एइ सूत्र कैल, जेइ इहा ना लिखिल, आगे ताहा करिब विस्तार ।  
यदि ततदिन जीये, महाप्रभुर कृपा हये, इच्छा भरि करिब विचार ॥80 ॥

(चै.च. मध्य परि:-2)

श्रील कविराज गोस्वामीपाद श्रीमन्महाप्रभु के परम करुणा भाजन हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने उनके माध्यम से अपनी अद्भुत दिव्योन्माद लीला का वर्णन किया। अतः हम उनके वर्णन के आधार पर ही विरह लीला में किस भाव से (किस प्रकार) तीन वांछाओं का आस्वादन सम्पन्न हुआ, यह आलोचना करने की चेष्टा करेंगे। सूत्र वर्णन के प्रारम्भ में ही श्रील कविराज गोस्वामीपाद महाप्रभु की गम्भीरा-लीला में जो श्रीराधारानी का दिव्योन्माद भाव प्रकृष्ट रूप से प्रकाशित हुआ है उसका स्पष्ट भाव में उल्लेख करते हैं—

शेष ये रहिलप्रभुर द्वादश वत्सर । कृष्णेर विरह-स्फूर्ति हय निरन्तर ॥  
श्रीराधिकार चेष्टा येछे उद्धवदर्शने । एइमत दशा प्रभुर हय रात्रिदिने ॥  
निरन्तर हय प्रभुर विरह-उन्माद । भ्रममय चेष्टा सदा-प्रलापमय वाद ॥  
रोमकूपे रक्तोद्गम, दन्तसब हाले । क्षणे अङ्ग क्षीण हय, क्षणे अङ्ग फूले ॥  
गम्भीरा-भितरे रात्र्ये नाहि निद्रा-लव । भित्ते मुख-शिर घषे, -क्षत हय सब ॥  
तिनद्वारे कवाट-प्रभु जायेन बाहिरे । कभु सिंहद्वारे पड़े कभु सिन्धुनीरे ॥  
कटक-पर्वत देखि गोवर्द्धन भ्रमे । धाड़या चले आर्त्तनादे करिया क्रन्दने ॥  
उपवनोद्याने देखि वृन्दावन ज्ञान । ताँहा जाइ नाचे गाय, क्षणे मूर्च्छा जान ॥  
काँहा नाहि शुनि जे जे भावेर विकार । सेइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार ॥  
हस्तपदेर सन्धि यतवितस्ति प्रमाणे । सन्धि छाँड़ि भिन्न हय चर्म रहे स्थाने ॥  
हस्त पद शिर सह शरीर भितरे । प्रविष्ट हय-कूर्मरूप देखिये प्रभुरे ॥  
एइमत अद्भुतभाव शरीरे प्रकाश । मनेते शून्यता-वाह्य हाहा हताश ॥  
काहा करो काहाँ पाड ब्रजेन्द्रनन्दन । काहाँ मोर प्राणनाथ मुरलीवदन ॥  
काहारे कहिव, केवा जाने मोर दुःख । ब्रजेन्द्रनन्दन विनु फाटे मोर बूक ॥  
एइमत विलाप करे-विह्वल अन्तर । रायेर नाटक श्लोक पढ़े निरन्तर ॥81 ॥

श्रीराधारानी के प्रेम की महिमा कैसी है, उनके निकट श्रीकृष्ण का माधुर्य कैसा है एवं श्रीकृष्ण को आस्वादन कर श्रीराधा को कैसा सुख प्राप्त है- ब्रजलीला में अंतस में जागरित इन तीन वांछाओं की पूर्ति के निमित्त श्रीराधा-भाव-कान्ति अंगीकार करने वाले अखण्ड अद्वय-ज्ञानतत्त्व ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के देह, मन, प्राण की ऐसी अवस्था!! शेष द्वादश वर्षों

की गम्भीरा लीला जो अति गम्भीर, अति अद्भुत, अति अभूतपूर्व एवं भक्तजनों की हृदय विदारक है- वह इन तीन विषयों के महागुरुत्व की परिचायक है। इसी प्रकार शेष द्वादश वर्षों की गम्भीरा लीला, महाभाव सिन्धु की अति विशाल तरंगों से तरंगायित है- इन तरंगों का विराम नहीं-विश्राम नहीं। श्रीराधा प्रेमसिन्धु का ऐसा असीम अनन्त कलरव- ऐसा अद्भुत उच्छ्वास श्रीमद्भागवत में नहीं देखा गया। श्रीविद्यापति चण्डीदास की विरह पदावली में भी ऐसे उच्छ्वास का वर्णन नहीं है। यह केवल गम्भीरा के गौरांग की ही निजी भाव सम्पद है। इस समस्त विरहोच्छ्वासमयी लीला के प्रत्यक्ष दृष्टा हैं श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय। रात का समय विरही की विरह-व्यथा के उच्छलन का योग्य समय है। गम्भीर निशा में समस्त विश्व-मानव जब निद्रा की गोद में चले जाते हैं तब विरहिणी का प्रिय विरह सिन्धु अतिशय उच्छलित हो उठता है। विरहिणी राधा के भाव में विरही महाप्रभु के उस गम्भीर निशा में मर्म के संगी स्वरूप दामोदर और रामानन्द राय विभिन्न उपायों से महाप्रभु का सान्त्वना विधान करते। इस प्रसंग में श्रील कविराज गोस्वामीपाद की उक्ति है-

एडमत गौरचन्द्र भक्तगण सङ्गे ।  
नीलाचले नाना लीला करे नानारङ्गे ॥  
यद्यपि अन्तरे कृष्ण-वियोग वाधये ।  
वाहिरे ना प्रकाशये भक्तदुःख भये ॥  
उत्कट वियोग दुःख जेबे वाहिराय ।  
तबे ये वैकल्य प्रभुर वर्णन ना जाय ॥  
रामानन्देर कृष्णकथा स्वरूपेर गान ।  
विरहवेदनाय प्रभुर राखये पराण ॥  
दिने प्रभु नानासङ्गे हय अन्यमना ।  
रात्रिकाले बाढ़े प्रभुर विरहवेदना ॥  
ताँर सुखहेतु सङ्गे दुइ जना ।  
कृष्णरसश्लोक-गीते करेन सान्त्वा ॥  
सुबल जैछे पूर्व्वे कृष्णसुखेर सहाय ।  
गौरसुखदान हेतु तैछे रामराय ॥  
पूर्व्वे जैछे राधार सहाय ललिता प्रधान ।  
तैछे स्वरूपगोसाजि राखे महाप्रभुर प्राण ॥

एइ दुइजनार सौभाग्य कहने ना जाय।

प्रभुर अन्तरङ्ग करि जाँरे लोके गाय ॥82 ॥

इन्हीं परम अंतरंग पार्षद स्वरूप के श्रीचरणाश्रित दास एवं पुत्रवत स्नेह के पात्र हैं श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामी, उनके श्रीमुख से कही गई रहस्यमयी गौरलीला ही श्रील कविराज गोस्वामीपाद की वर्णना का मूल स्रोत है। वे स्वयं लिखते हैं—

“श्रीचैतन्यलीला रत्नसार, स्वरूपेर  
भांडार, तोंहो थुईला रघुनाथेर कण्ठे।  
ताहा किछु जे शुनिल, ताहा ईहा विवरिल,  
भक्तगणे दिल एई भेटे ॥”

अपूर्व एवं अति आश्चर्यमय भेंट- इसकी तुलना विश्व में और कहीं नहीं; यह भक्तजन का कण्ठहार है- उनका जीवातु है। ऐसा अद्भुत, अलौकिक अनास्वादित-पूर्व भेंट अथवा उपहार विश्व जगत में और कुछ भी नहीं। श्रीराधा की भावकान्ति अंगीकार कर स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन ने श्रीशचीनन्दन रूप से ब्रह्मा आदि को भी दुर्गम ब्रजरस आस्वादन किया एवं विश्व मानवगण को उसका आस्वादन कराया। श्रीगौरांग एवं गौर-भक्तगण की कृपा का अवलम्बन कर उसकी उपलब्धि के लिए चेष्टा करनी होगी। श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं—

पूर्व्वे ब्रजविलासे, येइ तिन अभिलाषे, यत्नेह आस्वाद ना हैल।  
श्रीराधार भावसार, आपने करि अङ्गीकार, सेइ तिनवस्तु आस्वादिल ॥  
आपने करि आस्वादाने, शिखाइल भक्तगणे, प्रेमचिन्तामणिर प्रभु धनी।  
नाहि जाने स्थानास्थान, जारे तारे कैल दान, महाप्रभु दातारशिरोमणि ॥  
एइ गुप्तभावसिन्धु, ब्रह्मा ना पाय जार विन्दु, हेन धन विलाइल संसारे।  
ऐछे दयालू अवतार, ऐछे दाता नाहि आर, गुण केहो नारे वर्णिवारे ॥  
कहिवार कथा नहे, कहिले केहो ना बुझाये, ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग।  
सेइ से बूझिते पारे, चैतन्येर कृपा जारे, हय तार दासानुदासेर सङ्ग ॥83 ॥

(चै.च. मध्य 2 परि.)

श्रीनीलाचल लीला में श्रीमन्महाप्रभु की तीन वाञ्छाओं का आस्वादन किस भाव से सम्पन्न हुआ था। अब हम उस विषय की आलोचना के सम्मुख होते हैं। श्रीब्रजेन्द्रनन्दन ने श्रीकृष्ण-चैतन्य रूप से श्रीराधारानी के प्रेम की महिमा उपलब्धि की थी नीलाचल में गम्भीरा में श्रीराधारानी की

विरहमय प्रेम लीला के माध्यम से। अतः श्रीमन्महाप्रभु की इस विरह दशा की यत्-किंचित उपलब्धि करने के लिए हमें श्रीराधारानी की विरह-प्रेमदशा की यत्किंचित आलोचना करनी होगी। विरह में ही ब्रज के कान्ताप्रेम का सर्वाधिक उच्छ्वास है। गोपीगण का प्रेम सर्वोर्ध्व (सर्वोपरि) कक्षा में पहुँचकर महाभाव दशा प्राप्त करता है। इस महाभाव के 'रूढ़' एवं 'अधिरूढ़' दो भेद हैं। इसमें सभी गोपी यूथों में रूढ़ महाभाव स्थित हैं। एकमात्र श्रीराधा के जनों में ही अधिरूढ़ महाभाव विराजित है। इस अधिरूढ़ महाभाव के 'मोदन' एवं 'मादन' यह दो भेद हैं। "मादन" एकमात्र श्रीराधा की ही भाव-सम्पद है। श्रीराधारानी के अतिरिक्त मादन अन्य किसी गोपी में, यहाँ तक की श्रीराधा की जन ललिता-विशाखा में भी नहीं है। "मादनाख्य" महाभाव ही दीर्घ विरह में मोहन संज्ञा प्राप्त करता है। श्रीउज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में इस मोहनाख्य महाभाव के कुछेक अनुभवों का विवरण दिया गया है—

अत्रानुभावा गाविन्दे कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्च्छना ।  
 असहादुःखस्वीकारादपि तत्सुखकामता ॥  
 ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वं तिरश्चामपि रोदनम ।  
 स्वभूतैरपि तत्सङ्गतृष्णा मृत्युप्रतिश्रवात् ॥  
 दिव्योन्मादादयोऽप्यान्यो विद्वद्भिरनुकीर्तिताः ।  
 प्रायो वृन्दावनेश्वर्या मोहनोह्यमुदञ्चति ॥४४ ॥

इस मोहनाख्य भाव में (कान्ताश्लिष्ट) श्रीकृष्ण की मूर्च्छा, असहनीय दुख स्वीकार करके भी श्रीकृष्ण की सुखकामना, ब्रह्माण्ड-शोभकारिता, तीर्थक जाति का भी रोदन, मृत्यु स्वीकार करके भी देह की सभी इन्द्रियों द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा एवं दिव्योन्माद आदि अन्यान्य अनेक अनुभवों का विद्वान् गण कीर्तन करते हैं। प्रायः श्रीवृन्दावनेश्वरी में ही इस मोहनाख्य भाव का उदय होता है। इस भाव का दृष्टान्त "उज्ज्वल नीलमणि" में एवं मेरे द्वारा प्रणीत "साध्यसाधन-तत्त्वविज्ञान" ग्रन्थ में दृष्टव्य है। इस मोहनाख्य भाव में सात्विक भाव-सुदीप्त रूप से प्रकाशित होते हैं। श्रीमत् रूपगोस्वामीपाद के भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ में अश्रु, पुलकादि अष्ट-सात्विक भावों की पाँच अवस्थाएँ देखी जाती हैं। धूमयित, ज्वलित, दीप्त, उदीप्त एवं सुदीप्त। पुलक आदि भावों में से कोई एक सात्विक यथाकिंचित उदित होने पर उसे 'धूमयित' कहते हैं। एक या दो सात्विक पूर्वापेक्षा अधिक परिमाण में प्रकाशित हों तो उसे "ज्वलित" कहा जाता है। जहाँ एक संग दो अथवा तीन

सात्विक भावों की पूर्वापेक्षा अधिक परिमाण में अभिव्यक्ति हो तो उसका नाम “दीप्त” होता है। और जहाँ चार अथवा पाँच सात्विक भाव प्रचुरतर रूप से एक संग प्रकाशित हों तो उसका नाम “उदीप्त” होता है। जिस अवस्था में छः, सात अथवा सभी विशेष उत्कर्ष के संग प्रकाशित हों तो उसे “सुदीप्त” सात्विक आख्या रसिकगण प्रदान करते हैं। श्रीउज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में श्रीराधारानी के सुदीप्त सात्विक का दृष्टान्त दिया गया है—

उद्यद्वेपथुवाद्यमानदशना कण्ठस्थलान्तर्लुठ-  
ज्जल्पा गोकुलमण्डलं विदवती वाष्पैर्नदीमातृकम्।  
राधा कण्टकितेनं कण्टाकफलं गात्रेण धिक्कुर्वती  
चित्रं तदघनरागराशिभिरपि श्वेतीकृता वर्त्तते ॥85 ॥

(स्थायि-180)

श्रीउद्धव महाशय वृन्दावन से मथुरा गमन कर श्रीकृष्ण के निकट श्रीराधारानी की दशा का वर्णन कर रहे हैं “कम्प के कारण श्रीराधा के दन्तघर्षण से संगीत उत्पन्न होता है, सभी वाक्य गद्गद् हो कण्ठ में ही मिल जाते हैं, उनकी अश्रुधारा से वृन्दावन भूमि कर्दमित हो गई है, देह कंटकित होकर कटहल फल को भी लज्जित कर रहा है। तुम्हारे अनुराग के कारण लोगों में आनन्द का उद्रेक होता है— देह-मन प्रफुल्लित हो जाती हैं; किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि श्रीराधा तुम्हारे अनुराग दुख से श्वेतांगी हो गई हैं।” इस मोहनाख्य महाभाव का चरम अनुभाव ही दिव्योन्माद है।

एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः।  
भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते ॥86 ॥

(उ.नी.)

अर्थात् “मोहन भाव किसी अद्भुत गति को प्राप्त कर जब किसी अनिर्वचनीय भ्रमाभ वैचित्री में पहुँच जाता है तब वह “दिव्योन्माद नाम से अभिहित होता है।” परम सत्य-स्वरूप श्रीकृष्ण विषय हैं और वहीं भ्रान्ति का भी अविर्भाव है अतः दिव्योन्माद यथार्थतः ही एक अद्भुत व्यापार है। भाव की अतिशयता से भ्रम का उदय है— तब दिव्योन्मादवती श्रीमती को मेघ दर्शन से, तमाल दर्शन से श्रीकृष्ण की भ्रान्ति एवं उससे नाना भ्रमाभ भाव वैचित्री का अविर्भाव होता है। उस समय, विरह विवशा श्रीराधा की भ्रममयी चेष्टाएँ एवं प्रलापमय वाक्य वैष्णव साहित्य की एक अतुलनीय भाव सम्पत्ति है। भ्रम के समान आभा अथवा छटा है जिसकी, तभी भ्रमाभा; इस वाक्य से

समझा जाता है कि वस्तुतः यह भ्रम नहीं है। मोहनाख्य भाव की चरम अवस्था में श्रीराधारानी की विरह-व्याकुलता की परिचायक, अद्भुत मानसिक भावों की असाधारण क्रिया विशेष है। इसी कारण इसे दिव्योन्माद नाम दिया है। यह उन्माद दिव्य अथवा अप्राकृत-अलौकिक है। प्राकृत उन्माद भ्रममय होता है किन्तु दिव्योन्माद भ्रमाभ होते हुए भी नित्य-सत्यस्वरूप-भगवतरस-माधुर्य आस्वादन की एक विशाल विपुल अवस्था है। एक दृष्टान्त के द्वारा हम विषय को कुछ समझने की चेष्टा करेंगे। श्रीमद्भागवत में (11/2/40) श्रीपाद कवि योगीन्द्र प्रेमीभक्त की चेष्टा का वर्णन करते हैं—

**एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।**

**हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्मृत्यति लोकवाह्यः॥४७॥**

“इस भाव से भक्ति के अंगों का अनुष्ठान-कारी भक्त स्वप्रिय नाम कीर्तन करते-करते प्रेमोदय के कारण विगलित चित्त से मान-अपमान के विषय में अवधान शून्य होकर उन्मत्त के समान उच्चस्वर से कभी हँसता है, कभी रोदन करता है, कभी चीत्कार करता है, कभी गान करता है और कभी नृत्य करने लगता है।”

इससे जाना जाता है कि जिसमें अनुराग उत्पन्न हुआ है वह उन्मत्त की तरह कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी चीत्कार करता है और कभी नृत्य करता है। बाहरी दृष्टि से उन्माद के समान चेष्टा प्रकाशित होते हुए भी यह कभी उन्माद नहीं होता, मूल श्लोक के “उन्मादवत” इस वाक्य से यह स्पष्ट ही समझ आता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद इस श्लोक के व्याख्या प्रसंग में जो लिखते हैं उसका मर्मार्थ यह है कि- प्रेमी भक्त स्फूर्ति में देखता है कि श्रीकृष्ण माखन चोरी करने की मंशा से किसी एक गोपी के घर में प्रवेश करते हैं। गोपी उन्हें देखकर ‘ओ रे यशोदानन्दन माखन चोर, चोरी करने घर में प्रवेश कर रहा है- उसे पकड़ो, पकड़ो ऐसे चीत्कार करती है। वृद्धा की चीत्कार सुन भागते कृष्ण को देखकर भक्त हंसने लगता है। स्फूर्ति भंग होने पर- ‘हाय! मुझे महानिधि प्राप्त हुई थी किन्तु मैं उसे खो बैठा’ ऐसा कहकर विषाद में रोदन करने लगता है। “हा प्रभु दर्शन दो” कहकर चीत्कार करने लगता है। पुनः स्फूर्ति प्राप्त होती है और कृष्ण कहते हैं ‘भक्त! तुम्हारा आह्वान सुनकर ही तो मैं आया हूँ’- यह सुनकर- “अहा, मैं धन्य हो गया” कहकर आनन्द में उन्माद के समान नृत्य करने लगता है। उन्मत्त व्यक्ति के समान वह जग हंसाई, प्रशंसा, मान-अपमान आदि की ओर से अवधान शून्य

हो जाता है। इससे समझा जाता है कि प्रेमिक भक्त की चेष्टाएँ लोकदृष्टि से उन्मत्त के समान दिखते हुए भी सभी परम सत्यस्वरूप एवं परमानन्द रसमय हैं। प्रेमिक की चेष्टाएँ ही जब उन्मत्त के समान परिलक्षित होती हैं तब प्रेम के परमसार महाभाव में इनका चरम आतिशय लक्षित होगा इसमें कोई संशय नहीं है।

श्रीमद्भागवत में रास वर्णन में देखा जाता है, रासलीला में श्रीकृष्ण अन्तर्हित हुए तो महाभाववती ब्रजदेवियाँ उन्मत्त के समान वन-वन में गुल्म-लताओं से कृष्ण वार्ता जिज्ञासा करते-करते चलने लगीं। अंत में कृष्ण-भावना में तन्मयी हो श्रीकृष्णलीला का अनुकरण करने लगीं। यह सब विपुल उन्मादिका शक्ति का कार्य है किन्तु दिव्योन्माद इसके भी बहुत ऊँचे स्तर पर है- अति-उच्चकोटि की अवस्था है। यह मोहनाख्य भाववती श्रीराधारानी की मोहनभाव की चरम अवस्था विशेष है। श्रीकृष्ण अपने प्रेम की किसी अनिर्वचनीय महा-महीयसी आकर्षणी शक्ति के द्वारा किस प्रकार इस निखिल विश्व प्रपंच को भुलाकर, देह-देहिकादि की स्मृति को भी मिटाकर दिव्योन्मादी के अंतर-बाहर को कृष्णमय कर उन्मत्त कर डालते हैं- यह दिव्योन्माद लीला की आलोचना से यत्किंचित अनुभव हो सकता है। “उद्घूर्णा चित्रजल्पादयास्तदभेदा वहवो मताः” (उ.नी.) ‘उद्घूर्णा, चित्रजल्प प्रभृति इस दिव्योन्माद के बहुत भेद हैं। “स्याद्विल लक्षणमदघूर्णा नानावैवश्यचेष्टितम् (वही) नाना विलक्षण भाव-वैवश्यमयी चेष्टाओं को ही उद्घूर्णा कहा गया है—

शय्यां कुञ्जगृहे क्वचिदवितनुते सा वास-सज्जायिता  
नीलाभ्रं धृतखण्डिता-व्यवहृतिश्चण्डी कृतित्तउज्जति।  
आघूर्णत्यभिसार-सम्भ्रमवती ध्वान्ते क्वचिद्धारुणे  
राधा ते विरहोद्भ्रमप्रमथिता धत्ते न कां वा दशाम् ॥४४॥

(उ.नी.)

श्रीकृष्ण वृन्दावन से लौटे श्रीउद्धव से श्रीराधा की अवस्था जिज्ञासा करने पर उद्धव बोले- “श्रीराधा तुम्हारे विरह से उत्पन्न भ्रम से व्यथित हो किस दशा को प्राप्त नहीं हो रही! वे भ्रान्तिवश वासकसज्जिका के समान कभी कुंज ग्रह में शय्या रचना करती हैं, कभी खण्डिता दशा में क्रोधित हो नीलमेघ के प्रति तर्जन करती हैं और कभी अभिसारिका दशा में निविड़ अंधकार में परिभ्रमण करती हैं, तुम्हारे प्रेम की क्या विचित्र गति है।” श्रीमत्



रूप गोस्वामीपाद ललितमाधव नाटक के तृतीय अंक में श्रीराधा की उद्घूर्णा दशा का वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण विरह पीड़िता श्रीराधा ललिता आदि सखीगण के निकट रोदन करते-करते अपन मर्मवेदना प्रकाश करती हैं—

निपीता न स्वैरं श्रुतिपुटिकया नर्मभणिति-  
नं दृष्टो निःशङ्कं सुमुखि! मुखपङ्केरुरुचः।  
हरेर्वक्षःपीठं न किल घनमालिङ्गितमभू-  
दिति ध्यायं ध्यायं स्फुटति लुठदन्तर्मम मनः॥८९॥

(ललितमाधव)

“हे सुमुखी, मैं कर्णपुटों से श्रीकृष्ण की परिहास रसमय वाणी स्वच्छन्द होकर नहीं सुन पाई, निर्भय होकर उनके मुखकमल की मनोहर कान्ति का दर्शन नहीं कर पाई, उनका वक्षःस्थल मेरे द्वारा आलिंगित भी नहीं हुआ। सखी, यही सब सोचते-सोचते मेरा चित्त-मन जैसे विदीर्ण हुआ जाता है।”

श्रीराधा का वाक्य श्रवण कर श्रीविशाखा कहती हैं, “सखी राधे, श्रीकृष्ण का प्रत्यागमन निश्चित है यह जानते हुए भी क्यों इस प्रकार के दुखानल में स्वयं को निक्षेप करती हो एवं सखीगणों को भी ज्वालामय दुखाग्नि में दग्ध करती हो। “यह सुनकर श्रीराधा कहती हैं, “सखि! श्रीकृष्ण करुणामय है वह मैं जानती हूँ तभी तो गोपसुन्दरीगणों को श्रीकृष्ण दर्शन हो पाते हैं किन्तु मर्म विदारक क्रूर विरह वेदना मेरा वह सौभाग्यातिशय सहन नहीं कर पाती।’ इसके बाद श्रीमती अपने श्रीकृष्ण विरह-दुख की तीव्रता कहने लगती हैं—

उत्तापी पुटपाकतोऽपि गरलग्रामादपि क्षोभणो-  
दम्भोलेरपि दुःसहः कटुरलं हन्मग्नशल्यादपि।  
तीव्रः प्रौढविसूचिका-निचयतोऽपूच्चैर्ममायं वली  
मर्मान्यद्य भिन्नत्ति गोकुलपतेर्विश्लेषजन्मा ज्वरः॥९०॥

“हे सखी- पुटपाक (जिस पात्र में धातु गलाई जाती है) ये भी अधिक उत्तापी, कालकूट की अपेक्षा अधिक क्षोभकारी, वज्र से भी अधिक दुःसह, हृदय में बिंधे बर्छे की अपेक्षा अधिक कटु एवं गम्भीर विसूचिका व्याधि की अपेक्षा अतिशय तीव्र श्रीकृष्ण का विरह जनित ज्वर मेरा मर्मस्थान चूर-चूर कर रहा है।” यह बात कहकर श्रीराधा मुक्त कण्ठ से रोदन करने लगीं। ललिता सखी श्रीमती को किंचित सान्त्वना देने के लिए बोली ‘प्रियसखि! कदम्ब वृक्ष की शाखा पर बैठे इस काग के प्रति दृष्टिपात कर, वह जैसे

विरहीजनों की सहायता के लिए मथुरा गमन को उत्कण्ठित है।' तब श्रीराधारानी प्रशंसा करते हुए काग के प्रति कहने लगी—

भ्रातर्वायस-मण्डली-मुकुटहे! निष्क्रम्य गोष्ठादितः  
सन्देशं वद वन्दनोत्तरममूं वृन्दाटवीन्द्रायमे।  
दग्धं प्राणपशुं शिखी विरहभूरिन्धे मदङ्गलये-  
सान्द्रं नागरचन्द्रभिन्धिरभसादाशार्गलाबन्धनम् ॥११॥

“हे भ्रातः! काक मण्डली मुकुट! तुम शीघ्र गोष्ठ से निर्गत हो वन्दना कर वृन्दावन-पुरन्दर को मेरा यह सन्देश सुनाओ कि, उनकी विरहाग्नि मेरे देहरूपी काण्ठ-ग्रह में अवस्थित प्राण पशु को दग्ध करने में प्रवृत्त हुई है। अभी शीघ्र हे नागरचन्द्र! तुम ब्रज में आऊँगा कहकर जो आशा रूपी अर्गला से प्राण पशु के बाहर जाने का पथ अवरुद्ध कर गए थे, उसे खोल दो।”

इस प्रकार विविध हरि-विरह विवशता से उत्पन्न असहनीय वेदना सहन न कर पाने पर श्रीमती ने कालीय-हृद में प्रवेश कर प्राण त्याग का संकल्प किया एवं यमुना के तट पर जाकर अपने हाथों से रोपित एक मल्लीलता को आलिंगन कर कहने लगी- ‘हे मेरी प्रिय मल्लि! मैंने अपने हाथों तुम्हारा रोपण और सिंचन किया था, मन में बड़ी अभिलाषा थी कि तुम पर विकसित कुसुमावली की अपने हाथों माला गूँथ कर अति दुर्लभ दर्शन प्रियतम के गले में पहनाकर उन्हें दृढ़ आलिंगन कर अपना जीवन धन्य करूँगी। विधाता विरुद्ध हूँ, मेरी यह वासना पूर्ण नहीं हुई। इस क्षण मैं संसार त्याग की कामना करती हूँ, तुम अब मेरे हाथों जल सिंचन प्राप्त नहीं करोगी, मेरी प्रिय सखीगण द्वारा सिंचित एवं प्रफुल्लित हो माला रूप में जब उस दुर्लभजन के वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करोगी। तब अपनी रोपनकारी मेरी बात स्मरण कर मुझे सुख दान करना।’ इसके बाद अपने कण्ठ से मणिहार खेलकर ललिता के हाथ में समर्पण कर कहती हैं- ‘हे ललिते! यह हार मैंने माँ से कहकर बड़े यत्न से तैयार करवाया था! मन में बड़ी लालसा थी कि यह हार गले में पहन कर दुर्लभ जन तुम्हारे प्रियतम को आलिंगन कर तुम्हें सुखी करूँगी; किन्तु दुर्भाग्यवश यह कामना भी पूर्ण नहीं हुई। यह हार तुम्हारे हाथों में सौंप कर जा रही हूँ, यदि किसी दिन प्रियतम वृन्दावन आएँ तब यह हार गले में पहन कर, तुम्हारी ही निजजन मुझे स्मरण कर, उन्हें दृढ़ आलिंगन कर सुखी होना। हे सखी, जिस दिन से प्रियतम आकांक्षित वृन्दावन को छोड़ मथुरा चले गए उस दिन से उनका परम प्रिय सुरंग नामक हिरण उनके

अदर्शन से मणि-हारे सर्प के समान चकित नेत्रों की दृष्टि से सभी को उन्मादित करता है। मैं उसके तुरन्त विरह में कातर होते हुए भी उसकी प्रिय वस्तु इस हिरण का सयत्न प्रतिपालन कर रही थी, देखो इसे किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हो। इस प्रकार श्रीमती अपनी प्रिय वस्तुएँ सभी सखियों को समर्पण करने में प्रवृत्त हुई तो ललिता उनसे कहने लगीं- “हे राधे, हम सभी तो तुम्हारी नित्य संगिनी हैं, सब समय तुम्हारे संग ही रहती हैं। हमें जब जो आदेश करोगी हम तभी उसका पालन करेंगी; किन्तु हे सखि! तुम्हारी बात सुनकर, तुम्हारी चेष्टा देखकर ऐसा लगता है कि तुमने प्राण त्याग का संकल्प किया है अन्यथा भविष्य के कार्यों का आदेश हमें क्यों करती?” उसके उत्तर में श्रीमती कहती हैं- हाँ सखिगण! तुम जो सोच रही हो वह सत्य है। मैं इस हरि-विरह वेदना को और सहन नहीं कर पा रही, तभी प्राण त्याग का संकल्प किया है।

**शीतल तच्छ अङ्ग देखि, सङ्ग सुख लालसे, खोयलु कुल धरम गुण नाशे।**

**सोइ जदि तेजल, कि काज इह जीवने, आनह सखि गरल करि ग्रासे ॥92 ॥**

“सखियो! थोड़ा विष ला दो, खाकर मर जाऊँ- अब और यह दुःसह यंत्रणा सहन नहीं कर पा रही।” श्रीराधारानी की बातें सुनकर सखियाँ रोदन करने लगीं तो सुकोमल-प्राणा श्रीमती उनके दुख से दुखी होकर कहने लगीं—

**प्राण संगे अधिक तुहूँ, रोयसि रे काहे सखि, मरिले हम करिह इह काजे।**

**नीरे नाहि डारवि, अनले नाहि दाहबि, ए तनु धरि राखवि व्रजमाझे ॥**

**हमारि दोन बाहु धरि, सुदृढ़ करि बाँधवि, श्यामरुचि तरु तमाल डाले।**

**प्रति दिवस सवइ मेलि, निचये आसि देखबि, श्याम तेजि उठइ उषाकाले ॥93 ॥**

“सखियो! तुम मुझे विरह-दुख, उस पर तुम्हारा यह रोदन करती हो; एक तो प्रिय विरह-दुख, उस पर तुम्हारा यह दुख और सहन नहीं होता। मैं जानती हूँ, तुम सब मेरे सुख से सुखी और मेरे दुख से दुखी होती हो। तभी मेरे मर जाने पर भी मेरे सुख के लिए तुम्हारा बचे रहना होगा। मेरी चिरकामना है उस दुर्लभजन को आलिंगन कर सुखी होने की। जीवन रहते तो वह पूर्ण नहीं हुई। मरने के बाद तुम उसका सुयोग कर देना। मेरे इस देह का दाह आदि कोई भी संस्कार न कर श्याम-कान्ति तरुण तमाल की डाल से मेरी दोनों बाहों को सुदृढ़ रूप से बाँध देना। प्रतिदिन प्रातःकाल एकबार आकर

देख लेना, वह बंधन किसी प्रकार शिथिल न हो। सखियो! इस अभागिनी राधा की बात कहीं भूल न जाना।

सकल परसङ्गे तोरा, स्मृति करवि मोरि सखि, नाम लेइ अभागि धनि राइ।

ललिता मति हार लेह, आपन गले धारवि, तोहे निज चिह्न देइ जाइ ॥

विशाखा सखि वलय लेह इन्दुरेखा अङ्गुरि, नास आभरण लेह चित्रा।

लम्ब अवतंस लेह, श्रुति युगले धारवि, सुदेवि अति निर्मल चरित्रा ॥

एतइ सम्बाद कहि, खोलइ सब भूषने, देइ जत आलिंगणे वाँटि।

पाणितले घात बुके, माथे घनमारइ, शशिशेखर, मरत जिउ फाटि ॥94 ॥

श्रीराधा के मुख से इस प्रकार दुखद वाणी श्रवण कर ललिता सखी कहती हैं- “सखी राधे, तुमने जो प्राण त्याग करने का संकल्प किया है उस पर हम कोई आपत्ति न करती यदि प्राण त्याग करने से तुम्हारे दुख का उपशम हो जाता। किन्तु इस भाव से प्राण त्याग करने से तुम्हारे दुख का अन्त नहीं होगा। कारण तुम जानती हो “मरणे या मतिः सैव गतिः” तुम श्रीकृष्ण चिन्तन करते हुए देह त्याग करोगी तो तुम्हारे श्रीकृष्ण के प्रति बलवत प्रेम की निवृत्ति नहीं होगी। अतः देह त्याग के पश्चात् भी तुम्हें ‘हा कृष्ण, हा कृष्ण’ कहते हुए रुदन करते हुए जीवन काटना होगा। कृष्ण को भुलाकर यदि मर सको, तभी तुम्हें सुख एवं शान्ति का लाभ होगा; किन्तु तुम कृष्ण को भुला सको-यह सर्वथा असम्भव है। क्योंकि तुम कृष्णमयी हो, तुम्हारे भीतर-बाहर सदा श्रीकृष्ण स्फुरित होते हैं। तब फिर हमने पुराण-कथा श्रवण के समय पौर्णमासी देवी एवं नन्दीमुखी से सुना है कि निर्विशेष ब्रह्म उपासना से हृदय प्रीतिशून्य हो जाता है, अतः यदि तुम ब्रह्म-धारणा में आवेश उत्पन्न कर पाओ तभी तुम्हारे दुख की निवृत्ति हो सकती है। मुझे तो ब्रह्म-साधना के विषय में कुछ ज्ञान नहीं, विशाखा सभी विद्याओं में पारदर्शी (निपुण) है, उसके निकट जाकर तुम ब्रह्म साधना की शिक्षा ग्रहण करो।”

श्रीमती राधारानी विशाखा के निकट ब्रह्म-धारणा की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बैठी। ब्रह्म उपासना की कथा सुनते-सुनते देह पुलक से भर गया एवं नयनों से अश्रु धारा बहने लगी। यह देखकर विशाखा कहने लगी- “सखि राधे! यह क्या? ब्रह्म धारणा से तो हृदय शुष्क हो जाता है किन्तु तुम में सात्विक विकार देख रही हूँ; देह पुलक से भरा है, नयनों से अश्रुधारा बह रही है।” विशाखा की बात सुनकर श्रीमती गद्गद् कण्ठ से कहने लगी- सखि विशाखे! तुम जितना ही निरंजन निराकार ब्रह्म ध्यान का उपदेश देती

हो उतना ही मेरे हृदय में अंजन-वर्ण, नवनीरद, चिर-सुन्दर, चिर-मधुर रसिकेन्द्र-चूड़ामणि श्रीकृष्ण की स्फूर्ति होती है। मैं जितना उसे भूलना चाहती हूँ उतना ही वह अधिकतर भाव से देह-इन्द्रिय, चित्त-मन पर अधिकार कर बैठ जाता है। श्याम को नहीं भुला पाऊँगी सखी-भूलने का कोई उपाय नहीं, भुला नहीं सकूँगी, सो मरण का पथ भी बन्द है, सखी मैं क्या करूँ उपदेश दो।' इस प्रकार श्रीराधा की भाव-वैवश्यमय चेष्टाओं का नाम ही उद्घूर्णा है।

चित्रजल्प—

प्रेष्ठस्य सुहृदालोके गूढरोषाभिजृम्भितः।

भूरिभावमयो जल्पो यस्तीवोत्कण्ठितान्तिमः॥१५॥

(उ.नी.)

“प्रियतम के सुहृदय के संग साक्षात्कार होने पर गूढ़ रोष, उदासी से भरी जो भूरि भावमयी जल्पना है जिसके अन्त में तीव्र उत्कण्ठा ही प्रकाशित होती है उसी का नाम चित्रजल्प है।” इस चित्रजल्प के दस प्रकार के अंग हैं— प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प। यह चित्रजल्प के दस अंग श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के 47वें अध्याय में भ्रमरगीत के दस श्लोकों में वर्णित हैं। यह चित्रजल्प असंख्य भाव वैचित्री और महाचमत्कारिता से पूर्ण एवं अतिशय निगूढ़ और सुदुस्तर है। श्रीमद्भागवत (10/47/11) कहती हैं—

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम्।

प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत्॥१६॥

श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित होकर श्रीउद्धव महाशय ने गोप-गोपियों की सान्त्वना के लिए मथुरा से वृन्दावन आकर जब विरह विधुरा ब्रजदेवीगणों की विरहोत्कण्ठामयी वाणी का श्रवण किया था, तब उन्होंने देखा कोई एक गोपी एक मधुकर को देखकर श्रीकृष्ण संगम ध्यान करते-करते मधुकर को प्रिय प्रेरित दूत समझ कर यह बात कहने लगीं। यहाँ काचित' शब्द सर्वगोपिका-शिरोमणि श्रीमती राधारानी को इंगित करता है। “के प्रेमसुखे आ समस्तात चित्त ज्ञानम् यस्या” (तोषणी टीका) श्रीकृष्ण के प्रेम सुख में जिसकी अखण्ड अनुभूति है वे ही “काचित” हैं। यद्यपि प्रेमिका मात्र को ही श्रीकृष्ण प्रेम सुख का अनुभव होता है किन्तु मादनाख्य महाभाववती श्रीराधारानी में ही उस प्रेम सुख की परिपूर्णतमता है- तभी वे ही काचित हैं। अथवा “कम्

सर्वेषाम् प्रेमसुखम् आचिनोति क्षणे क्षणे वर्द्धयति या सा” (वही) जो श्रीकृष्ण विषयक प्रेम सुख का प्रतिक्षण वर्धन करती हैं वे ही “काचित” है- प्रेम की अधिष्ठात्री देवी ‘श्रीराधा’ हैं।

उद्धव के समक्ष अपने श्रीचरणकमल के सौरभ से समादृष्ट एक भ्रमर को देखकर श्रीराधारानी की मान भंगिमाओं का उदय होता है एवं मधुकर को प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा (उनका मान भंग करने के लिए) प्रेरित दूत समझती हैं। प्रश्न हो सकता है कि इस विषम विरह में मान भंगिमा का उदय होना किस प्रकार सम्भव है? इसी कारण मूल श्लोक में कहा गया है- “ध्यायन्ती कृष्ण संगमम्” अर्थात् स्फूर्ति में एवं स्वप्न आदि में श्रीकृष्ण दर्शन को साक्षात् दर्शन समझ कर इस मान भंगिमा का उदभव होता है।

आयाति च मम निकटं जाति च निहृत्य माधुरं नगरम्।

तस्मात् काश्चन रामा रमयति रमणं स तत्रापि॥97॥

(गोपलचम्पूः)

“वह रमण दूसरों के अलक्षित भाव से मेरे निकट आता है एवं गुप्त भाव से मथुरा नगर को चला जाता है- इसी कारण मुझे लगता है, वह रमणी-लम्पट क्षण काल के लिए भी रमणी संग छोड़कर रह नहीं सकता। उस मथुरा नगर में निश्चय ही उसकी अनेक नायिकाएँ हैं। यदि ऐसा न होता तो वह गुप्त भाव से मेरे निकट आकर फिर चला क्यों जाता?” श्रीराधारानी जब इस प्रकार चिंतन कर रही थी तब सहसा एक (भ्रमर) मधुकर जिसकी दाढ़ी में कुसुमों की पीत पराग-राशि लगी थी उनके श्रीचरणकमलों के निकट आ गया। तब उस मधुकर को एवं उसकी पीतिमा युक्त दाढ़ी को देखकर श्रीराधारानी की भावना अत्यन्त गम्भीर हो गई। तब वे उस मधुकर को कोटि प्राणों के समान प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा उनके मान प्रसादन के निमित्त प्रेरित दूत समझने लगीं एवं मान भंगिमामय दशांग चित्रजल्प वाक्य कहने लगीं।

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के 47वें अध्याय के “मधुप कितबबन्धो” (10/47/12) इत्यादि श्लोक से “अपि वत मधुपुर्यायाम्” (10/47/21) तब भ्रमरगीत के दस श्लोकों में यह चित्रजल्प वर्णित है। पाठक-पाठिकागण श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत में इन श्लोकों का आस्वादन करें। इस सम्बन्ध में हमारा एक विशेष विषय ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार समुद्र सतत अनन्त छोटी-बड़ी तरंगों से व्याप्त रहता है, उसी प्रकार श्रीराधारानी का महाभाव सिन्धु सतत नाना प्रकार संचारी भाव रूपी तरंगों से व्याप्त रहता है।

जो समुद्र का दर्शन करते हैं, वे उन तरंगों का दर्शन कर मुग्ध हो जाते हैं किन्तु उन तरंगों के नीचे जो अति गम्भीर निविड़ता है एवं वह समुद्र नाना प्रकार के रत्नों का आकर है- यह बात कितने दर्शकों के मन में आती है। चित्रजल्प भाववती श्रीराधारानी के मान भंगिमा से स्थायी भाव सिन्धु असूया, ईर्ष्या, मद प्रभृति नाना प्रकार संचारी भाव रूपी तरंगों से व्याप्त होते हुए भी स्मरण रखना होगा कि इन तरंगों के नीचे दिव्योन्माद की गम्भीर निविड़ता विद्यमान है एवं वह विविध अनर्घ (अमूल्य) भाव रत्नों की आकार है। यदि ऐसा न होता तो श्रीउद्धव के समान महा-मनीषि इन दिव्योन्माद-भाववती के दर्शन से एवं इनके श्रीमुख से भ्रमर गीत के श्रवण से सब भूल कर मुग्ध हो अनेक दिनों तक श्रीवृन्दावन में अवस्था ही क्यों करते एवं श्रीराधारानी की श्रीचरणरेणु कणिका मस्तक पर धारण करने के लोभ से वृन्दावन के वन में लता गुल्म आदि का जन्म प्राप्त करने की प्रार्थना ही क्यों करते ?

श्रीउद्धव महाशय की उक्ति—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

सः दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा मंजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ 98 ॥

( भा: 10/47/61 )

श्रीगोपीगण की परम अनुरागमयी वाणी के श्रवण से सर्वोपरि श्रीराधारानी के चित्रजल्प भ्रमर गीत के श्रवण से श्रीउद्धव महाशय का गोपी चरणों में ऐसी परम आश्चर्यमय भक्ति का उदय हुआ था कि गोपियों की एक कणा चरणरेणु भी उन्हें परम दुर्लभ लगने लगी थी। तभी वे उनकी केवल मात्र चरणरेणु प्राप्ति की लालसा से इस श्लोक में श्रीवृन्दावन की गुल्म, लता, औषधि में कोई भी एक जन्म ग्रहण करने की कामना करते हैं। यह कामना करते हुए वे प्रथमतः चमत्कृत होकर कहते हैं- “अहो! मैं अत्यन्त दुर्लभ विषय की कामना कर रहा हूँ। इस वृन्दावन में जो सब गुल्म लता औषधि हैं, वे सभी परम सौभाग्यवान और सौभाग्यवती हैं; क्योंकि ये सब ब्रजांगनाओं की श्रीचरण रेणु अनायास ही मस्तक पर धारण करने का सौभाग्य प्राप्त करती हैं। यदि मैं इनके समान कोई एक जन्म ग्रहण कर पाऊँ तब मैं भी अनायास ही ब्रजांगनागण की श्रीचरणरेणु मस्तक पर धारण कर धन्य हो पाऊँगा।”

प्रश्न हो सकता है कि श्रीउद्धव महाशय ब्रह्मा के समान गोकुल में स्थावर जन्म लाभ की कामना न कर वृन्दावन में जन्म लाभ की प्रार्थना क्यों

करते हैं? इसमें उनका अभिप्राय यह है कि गोकुल में विभिन्न भावों की स्थावर जाति हैं किन्तु श्रीवृन्दावन में केवल मधुर भाव की लालसा युक्त स्थावर जाति ही हैं अतएव निजभाव पोषक संग एवं स्थान प्राप्त करने की आशा में वे वृन्दावन में जन्म प्राप्त करने की लालसा प्रकाश करते हैं। उनकी भावना है कि वे जिस लता के निकट जन्म लेंगे उस लता की भी गोपी चरणरेणु की लालसा होगी और जब हवा चलेगी, वह उनके ऊपर आ गिरेगी एवं वे उस लता के ऊपर जा गिरेंगे तब स्वजातीय लता के संग प्रभाव से उनकी गोपी चरणरेणु की लालसा की अतिशय पुष्टि साधित होगी। इसी कारण से वे वृन्दावन में लता-गुल्म जन्म की प्रार्थना करते हैं।

कोई सोच सकते हैं कि श्रीउद्धव महाशय वृन्दावन में लता गुल्म होकर रहेंगे; ब्रजांगनागण घर में रहेंगी, वृन्दावन जाएँगी भी तो निर्धारित पथ से होकर जाएँगी; वे उनकी पदरेणु जाएँगे किस प्रकार? इस पर श्रीउद्धव महाशय के मन का भाव है कि श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण जब ब्रजदेवीगणों को आकर्षित करने के निमित्त वंशीनाद करेंगे एवं वे भी वंशी श्रवण कर उन्मादिनी के समान अपथ-विपथ ज्ञान शून्य हो वृन्दावन में अभिसार करेंगी, उस अवस्था में ही उनकी एक चरणरेणु उनकी एकान्त काम्य है।

यद्यपि उद्धव महाशय ने इसके पूर्व भी ब्रजांगनागण का माहात्म्य प्रचुर भाव में गान किया है किन्तु तब भी पुनः सातिशय उत्सुकता से भर गाने लगते हैं कि ब्रजांगनागण दुस्त्यज्य स्वजन-आर्यपथ आदि त्याग कर अर्थात् जो लोक मर्यादा और वेद मर्यादा लक्ष्मीदेवी प्रभृति के लिए भी दुस्त्यज्य है, कारण वे श्रीकृष्ण का सर्वलोक-सर्ववेद-पुरुषार्थसार बुद्धि से भजन करती हैं, श्रीकृष्ण भजन के लिए उनकी लोक मर्यादा वेद मर्यादा त्याग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अतः उनके राग में उत्कण्ठता भी नहीं है। ब्रजांगनागण नन्दनन्दन बुद्धि से गाढ़ अनुराग के आवेग में स्वजन-आर्यपथ आदि त्याग कर जो मुकुन्द पदवी अवलम्बन करती हैं, वह पदवी श्रुतियाँ भी अन्वेषण करती हैं किन्तु निर्देश नहीं कर पाती।' तात्पर्य यह है, ब्रजांगनागण परकीय भाव में आकुल पिपासा के आवेग से श्रीकृष्ण को प्राप्त करती हैं, यह वेद विधि के अगोचर है, कारण वेद विधि मानव के कर्तव्य का ही उपदेश कर सकती हैं पिपासा की खबर (आवेग, व्याकुलता) वे किस प्रकार जानेंगी?

इस श्लोक की टीका में श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद लिखते हैं- “तदेवम् मुकुन्दपदवीमिति तत्रापि श्रुतिभिर्विमृग्यामिति तस्याः नित्यत्वम् सर्वोत्तमत्वंच



गमयते।” अर्थात् ब्रजांगनागण स्वजन, आर्यपथ आदि त्याग कर अनुरागमयी परकीय भाव से जो मुकुन्दपदवी का भजन करती हैं वह श्रुतियों के लिए भी अन्वेषणीय है- इससे ब्रजदेवियों के परकीय भाव का नित्यत्व एवं सर्वोत्तमत्व प्रदर्शित होता है। कारण जो वेदों को भी दुष्प्राय है वह कभी अनित्य अथवा निन्दित नहीं हो सकता।

सेई गोपीगणमध्य उत्तमा राधिका।

रूपे गुणे सौभाग्य प्रेमे सर्वाधिका ॥

(चै०च०)

श्रीमन्महाप्रभु ने गम्भीरा में श्रीराधारानी के विरहमय प्रेम के माध्यम से श्रीराधा के प्रेम की महिमा का स्वयं आस्वादन किया एवं विश्ववासियों को जनाया। प्रभु विरही श्रीराधा के भाव में श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक का एक श्लोक पाठ करते हैं—

प्रेमच्छेदरुजेह्वगच्छति हरिर्णायं न च प्रेम वा,

स्थानास्थानमवैति दापि मदनोजानाति नो दुर्वलाः।

अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं

दित्रान्येवदिनानियौवनमिदं हा हा विधे का गतिः ॥११॥

“श्रीहरि प्रेम की विच्छेद पीड़ा को नहीं जानते, प्रेम भी स्थानास्थान को नहीं जानता, मदन नहीं जानता कि हम दुर्बल हैं कोई किसी के सभी दुखों को नहीं जानता, जीवन क्षण-स्थायी है, यौवन मात्र दो-तीन दिन स्थायी है, हा, हा, विधाता, मेरी क्या गति होगी ?

श्लोक का पाठ कर महाप्रभु प्रलाप करने लगे—

उपजिल प्रेमांकुर, भाङ्गिल ये दुःख पूर, कृष्ण ताहा नाहि करे पान।

बाहिरे नरगरराज, भितरे शठेर काज, परनारी वधे सावधान ॥

सखि हे! ना बुझिये विधिर विधान।

सुख लागि कैल प्रीत, हैल दुःख विपरीत, एवे जाय ना रहे पराण ॥१०० ॥

(चै.च.मध्य दूसरा परि.)

श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधारानी के प्रेम के प्रकार एवं महिमा के आस्वादन कर प्रथमतः “प्रेमोच्छेदरुजोह्वगच्छति हरिर्णायम्” इस अंश की व्याख्या में कहते हैं, प्रेम का अंकुर उत्पन्न होते ही भग्न हो गया। कवि विद्यापति भी कहते हैं—

प्रेमक अंकुर, जात आत' भेल, न भेल युगल पलासा।

प्रतिपद चाँद, उदय जैसे यामिनी, सुख-लव भै गेल निराशा ॥१०१ ॥

प्रेमांकुर के भंग होने से उत्पन्न जो दुख है, कृष्ण उसका अनुभव नहीं करते। बाहर से वे नागरराज के समान ही दिखते हैं किन्तु उनके भीतर शठता भरी है, वे परनारी वध में अति निपुण है। यदि प्रश्न उठे- यदि वे जानती है तो प्रेम किया क्यों? उसके उत्तर में कहते हैं- विधि का विधान कुछ भी समझ नहीं आता, प्रेम करने से पहले लगा था कि प्रेम करने पर न जाने कितना सुख लाभ होगा, किन्तु प्रेम करने के बाद अब विपरीत ही हुआ; दुख का सिन्धु उच्छलित हो उठा। अब इस देह में और प्राण नहीं रहेंगे। महाजन भी कहते हैं-

पिरिति सुखेर, देखिया साघेर, नाहिते नाम्बिलू ताय।  
 नाहिया उठिते, फिरिया चाहिते, लागिल दुःखेर वाय ॥  
 केवा निरमिल, प्रेम सरोवर, निरमिल ताँर जल।  
 दुःखेर मकर, फिरे निरन्तर, प्राण करे टल बल ॥  
 गुरुजन ज्वाला, जलेर शिहाला, पड़सी जियल माछे।  
 कुल पानिफल, काँटाय सकल, सलिल ढाकिया आछे ॥  
 कलङ्क पानाय, सदा लागे गाय, छानिया खाइलूँ जदि।  
 अन्तरे वाहिरे, कुटु कुटु करे, सुखे दुख दिलो विधि ॥  
 चण्डीदास वाणी, शुन विनोदिनी, सुख दुख दुटि भाइ।  
 सुख लाभ करे, पिरिति जे करे, दुःख जाय तार ठाँइ ॥ 102 ॥

यदि कोई कहे, अब जब कृष्ण के दुख देने के स्वभाव को समझ ही गई हो, तब उसके प्रति प्रेम का त्याग कर दो। इसके उत्तर में कहती हैं- “प्रेम वा स्थानास्थानमवैति न”-

कुटिल प्रेमा अगेयान, नाहि जाने स्थानास्थान, भाल-मन्द नारे विचरिते।  
 क्रूर शठेर गुणडोरे, हाते गले बान्धि मोरे, राखियाछे नारि उकाशिते ॥ 103 ॥

प्रेम की गति वक्र है। “अहेरिव गतिः प्रेमनः स्वभाव-कुटिला भवेत्” (उ.नी.) प्रेम की गति सर्पिल है। ज्ञानहीन प्रेम स्थान-अस्थान नहीं जानता, भला-बुरा भी विचार नहीं कर पाता। तभी कृष्ण स्वभावतः कुटिल हैं शठ हैं यह समझते हुए भी उनके रूप आदि गुण-रज्जु से प्रेम न मेरे ही हाथों मेरा गला बांध दिया है। इच्छा होते हुए भी उस बंधन से मुक्त होने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। प्रेम की ज्वाला बहुत असहनीय है, महाजन कहते हैं-

सड़ के बले पिरिति भाल ।

हासिते हासिते, पिरिति करिया, कान्दिते जनम गेल ॥

कुलवती हड़या, कुले दाँड़ाइया, जे धनी पिरिति करे ।

तुषेर अनल, येन साजाइया, आपनि पूड़िया मरे ॥

हाम अभागिनी, ए दुःखे दुखिनी, सदाइ झुरिछे आँखि ।

चण्डीदास कय, जे गति हड़ल, पराण-संशय देख ॥104 ॥

“मदनोहपि जानाति नो दूर्वलाः” इस अंश की व्याख्या में कहते हैं—

ये मदन तनुहीन, परद्रोहे परवीण, पाँच-बाण सन्धे अनुक्षण ।

अवलार शरीरे, विद्धि करे जर जरे, दुःख देय, ना लय जीवन ॥

श्रीमन्महादेव के प्रति द्रोह करने के कारण मदन उनकी नेत्र-ज्वाला से दग्ध हो गया, तभी वह अनंग है, किन्तु फिर भी उसकी पर-द्रोह प्रवृत्ति दूर नहीं हुई, कारण वह परद्रोह में अति प्रवीण है। निरन्तर हमारे प्रति पंच बाण संधान करता है। हम अबला हैं, सभी प्रकार से असहाय; पंच बाण से बीध कर, जर्जरित कर मदन हमें दुख ही देता है, प्राण नहीं लेता। प्राण ले लेता तो जीवन की ज्वाला शान्त हो जाती! तभी इनका मदन के प्रति आक्षेप है—

मनमथ तोहे कि कहव अनेक ।

दिठि अपराधे पराण परिपीड़सि, ए तूया कोन विवेक ॥

डहिन नयन, पिशुनगण रारण, परिजन वामहि आध ।

आध नयनकोणे, हरि अवलोकने, ताहे भेल एत परमाद ॥

पूर वाहिर पथ, करत गतागत, को नाहि हेरत कान ।

तोहारि कुसुमशर, कतिहूँ न सञ्चरु, हामारि हृदये पाँचवाण ॥105 ॥

“अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलम् नो जीवनम् वाश्रवम् द्वित्रान्येव दिनानि यौवनमिदम्” इसकी व्याख्या करते हैं—

अन्ये जे दुःख मने, अन्य ताहा नाहि जाने, सत्य एइ शास्त्रे विचारे ।

अन्यजन काँहा लिखि, नाहि जाने प्राणसखी, जाते कहे धैर्य करिवारे ॥

कृष्णकृपा-पारावार, कभु करिवेन अङ्गीकार, सखि! तोर ए व्यर्थ वचन ।

जीवेर जीवन चल्ल, येन पद्मपत्रे जल, ततदिन जीवे कोन जन ॥

शतवत्सर पर्यन्त, जीवेर जीवन अन्त, एइ वाक्य कह ना विचारि ।

नारीर यौवन धन, यारे कृष्ण करे मन, से यौवन दिन दुइ-चारि ॥106 ॥

सखीगण श्रीराधारानी के दुख से अधीर हो उनसे कहती हैं— “राधे! धैर्य धरो, कृष्ण करुणा के सिन्धु हैं, कितनी बार तुम्हारी विरह पीड़ा का नाश किया है, वे अवश्य ही तुम्हें दर्शन देंगे। सखी की बात श्रवण कर श्रीराधा-भाव

में महाप्रभु कहते हैं- ओह! कोई किसी अन्य के सभी दुख नहीं जानता, यह शास्त्र वाणी सत्य है। दूसरों की तो बात ही क्या- मेरी प्राणसम सखियाँ भी तो मेरा अंतस नहीं समझ पाई, इसी कारण तुम मुझे धैर्य धारण करने को कहती हो। सखी कृष्ण कृपासिन्धु हैं वे दया कर किसी दिन दर्शन देंगे, तुम्हारी यह सान्त्वना वाणी व्यर्थ है क्योंकि कमल दल पर जल के समान जीव का जीवन अति चंचल है, तब तक क्या कोई बचा रहेगा? सखी कहती है मानव की आयु शत वर्षों तक है, तुम तो शीघ्र ही उसको पाओगी, यह सभी बातें अकारण क्यों विचारती हो? इसके उत्तर में श्रीमती के भाव में प्रभु कहते हैं, 'सखी, मैं तो सेवा करने के लिए कृष्ण को चाहती हूँ। मेरा यह रूप यौवन रसिकेन्द्रमौलि श्रीकृष्ण की सेवा का उपचार (द्रव्य, वस्तु) है नारी का यौवन मात्र दो-तीन दिन ही रहता है। अतः देखते-देखते यौवन चला जाएगा तब फिर कृष्ण को पाकर क्या होगा। सखि! यौवन के भरपूर अनुराग के बिना रसमय रसिक-शेखर का भजन नहीं होता- यही गोपी भजन-माधुरी है। इस विषय में चण्डीदास अति स्पष्ट, सहज सरल भाव से सब समझाते हैं।

कालि बलि काला, गेल मधुपुरे, से कालेर कत वाकी।  
 यौवन सायरे, सरितेछे भाटा, ताहारे केमने राखि॥  
 जोयारेर पानि, नारीर यौवन, गेले ना फिरिये आर।  
 जीवन थाकिले, बन्धुरे पाइब, यौवन मिलन भार॥  
 यौवनेर गाछे, ना फूटिते फूल, भ्रमरा उड़िया गेल।  
 ए भरा यौवन, विफले गोयानु, बन्धु फिरे नाहि एल॥  
 याउ सहचरि, जानिया आसह, बन्धुरा आसे ना आसे।  
 निठुरे काछे, आमि जाइ चलि, कहे द्विज चण्डीदासे॥107॥

इसके बाद महाप्रभु कहते हैं-

अग्नि यैछे निजधाम, देखाइया अभिराम, पतङ्गेरे आकर्षिया मारे।

कृष्ण ऐछे निजगुण, देखाइया हरे मन, पाछे दुःख समुद्रेते डारे॥

रात्रि के समय उज्ज्वल अग्नि शिखा की ज्योति दर्शन कर पतंगा आकर्षित होता है, वह नहीं जानता कि उसमें उसकी मृत्यु है। अग्नि का रूप दर्शन कर वह उसमें कूद पड़ता है और तत्क्षण भस्मीभूत हो जाता है। श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार अति लोभनीय रूप-गुण आदि के दर्शनों से रमणी कुल के मन-प्राण को आकर्षित करते हैं। रमणी-कुल ज्ञान शून्य हो उस रूप के सिन्धु में कूद पड़ती है और दुख के सागर में डूब जाती है। यह दुख भोग

करना ही ब्रजदेवियों के प्रेम की असाधारण विशेषता है। यह दुख जगत के दुख जैसा नहीं है, घनीभूत आनन्दरस से बना है यह दुख। प्राण इस दुख को भोगना चाहते हैं- “एइ प्रेमा यार मने, तार विक्रम सेइ जाने, येन विषामृते एकत्र मिलन।” श्रीराधारानी की विरह दशा का अवलम्बन कर महाप्रभु ने श्रीराधा प्रेम की शक्ति को दिखाया है। श्रील कविराज गोस्वामीपाद कहते हैं—

एतेक प्रलाप करि, विषादे श्रीगौरहरि, उघाड़िया दुःखेर कपाट।

भावेर तरङ्ग बले, नानारूपे मन चले, आर एक श्लोक कैल पाठ॥108॥

“श्रीकृष्ण रूपादि-निषेवनम् विना व्यर्थानि मेहहान्यखिलेन्द्रियान्यलम्।  
पाषाण-शुष्केन्धन-भारकान्यहो विभर्षि वा तानि कथम् हतत्रपः॥”

(श्रीगोस्वामीपाद की उक्ति)

“श्रीकृष्ण रूप आदि के निषेवन के बिना मेरे दिन एवं मेरी समस्त इन्द्रियाँ नितान्त व्यर्थ हैं। अहो! पाषाण एवं शुष्क काष्ठ के समान इन इन्द्रियों को मैं कैसे धारण करूँ और कैसे यह दिन (जीवन) बिताऊँ। यह प्रेम की ही एक शक्ति है। कृष्ण-माधुर्य का आस्वादन करना प्रेम का ही कार्य है। प्रेम की जाति और परिमाण के अनुरूप प्रेमिक को श्रीकृष्ण माधुर्य का अनुभव अथवा आस्वादन होता है। चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका एवं त्वचा यह पंचेन्द्रियाँ यथाक्रम श्रीकृष्ण के रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श इस पंचविध माधुर्य आस्वादन के द्वार अथवा पान-पात्र स्वरूप हैं। यदि इन इन्द्रियों के द्वारा प्रेमी कृष्ण माधुर्य का आस्वादन नहीं कर पाता तब यह इन्द्रियाँ उसे काष्ठ-पाषाण आदि के समान जड़ एवं भार के समान लगती हैं। श्रीकृष्ण माधुर्य आस्वादन के बिना दिन व्यतीत करना अति असहनीय हो जाता है। श्रीराधारानी में सभी भावों की पराकाष्ठा है। श्रीराधा-भाव में श्रीमन्महाप्रभु का प्रलाप-वंशीगानामृतधाम, लावण्यामृत-जन्मस्थान, जे ना देखे से चाँदवदन। से नयने किवा काज, पडू तार माथे वाज, से नयन रहे कि कारण॥

सखि हे! शुन मोर हत विधि बल।

मोर वपु चित्तमन, सकल इन्द्रियगण, कृष्णाविनु सकल विफल॥  
कृष्णेर मधुर वाणा, अमृतेर तरङ्गिणी, तार प्रवेश नाहि जे श्रवणे।  
काणाकड़ि छिद्रसम, जानह सेइ श्रवण, तार जन्म हैल अकारणे॥  
मृगमद नीलोत्पल, मिलने जे परिमल, येइ हरे याँ गर्व-मान।  
हेन-कृष्ण-अंग-गन्ध, याँ नाहि से सम्बन्ध, सेइ नासा भस्त्रार समान॥

कृष्णोर अधरामृत, कृष्णागुण चरित, सुधासार स्वाद-विनिन्दन।  
 तार स्वादु जे ना जाने, जन्मिया ना मैल केने, से रसना भेकजिह्वा सम ॥  
 कृष्ण कर-पदतल, कोटिचन्द्र सुशीतल, तार स्पर्श येन स्पर्शमणि।  
 तार स्पर्श नाहि धार, से याउक छारखार, सेइ वपु लौह सम जानि ॥109 ॥

श्रीकृष्ण के शब्द, स्पर्श आदि के साक्षात् माधुर्य-अनुभव के अभाव में प्रेमिक अपनी पंचेन्द्रियों को विफल मानता है किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं होता; कारण, क्या विरह में और क्या मिलन में प्रेमिक भक्त के अंतस में एक अखण्ड आस्वादन धारा चलती रहती है। विरह का आस्वादन मिलन के आस्वादन की अपेक्षा अधिक चमत्कृत करता है। इसी कारण गोपी प्रेम में इतना विरह है एवं महाप्रभु ने भी श्रीराधा की विरह दशा का अवलम्बन कर तीन वांछाओं का आस्वादन किया। श्रीकृष्ण भजन के अभाव में ही देह-इन्द्रियों की विफलता है यह श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों में वर्णित है। जैसे—

विले वतोरुक्रमविक्रमान् जे न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।  
 जिह्वासती दाहुंरीकेव सुत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥  
 भावः परं पटकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।  
 शावो करो नो कुरुतः सपर्य्या हरेर्लसत्काञ्चण कङ्कणौ वा ॥  
 वर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षितो ये।  
 पादौ नृणां तौ दुमजन्मभाजो, क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यो ॥110 ॥

इत्यादि ( भा. 2/3/20-22 )

श्रीशौनक श्रीसूत के प्रति कहते हैं- “हे सूत! मानव के यह कर्णद्वय श्रीहरि की लीला कथा का श्रवण न करें तो वे वृथा छिद्र मात्र ही हैं; जो जिह्वा श्रीहरि का यशोगान न करें वह जिह्वा दुष्टा है भेक-जिह्वा के समान है।

जो मस्तक मुकुन्द को प्रणाम नहीं करता वह ‘रेशमी पगड़ी एवं मुकुट से परिशोभित होते हुए भी देह के ऊपर वृथा भार अथवा बोझा मात्र है। (अतः उसे उत्तमांग नहीं कहा जाएगा)। जो दो हाथ श्रीहरि की सेवा न करे वह स्वर्ण के आभूषणों से सुसज्जित होने पर भी मृत व्यक्ति के हाथों के समान है।

मानव के दो नेत्र यदि श्रीविष्णु के विग्रह दर्शन न करे तो मयूर के पंख की दृष्टि-शक्तिहीन नेत्र के समान निरर्थक हैं। जो दो पैर श्रीहरि के धाम पर्यटन को नहीं जाते वे वृक्ष के समान स्थावर हैं। जो भी हो, श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधा के भाव में जगन्नाथ वल्लभ नाटक के एक श्लोक का पाठ कर प्रलाप करने लगे—

करि एत विलपन, प्रभु शचीनन्दन, उघाडिया हृदयेर शोक।  
दैन्य-निर्व्वेद-विषादे, हृदयेर अवसादे पुनरपि पढे एकश्लोक॥

यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ लोचनपथम्।  
तदास्माकं चेतो मदनहतकेनाहतमभुत्॥  
पूनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीम्।  
विधास्यामस्तस्मिन्नखिलघटिका रत्नखचिताः॥111॥

“मेरे सौभाग्य-वश श्रीकृष्ण जब मेरे नयनगोचर हुए थे, तब दुष्ट मदन ने मेरे मन का अपहरण कर लिया था; पुनः जब वे क्षण काल के लिए मेरे दृष्टिपथ के पथिक होंगे तब मैं समय के उन क्षणों को विविध रत्न आदि से सुशोभित कर के रखूंगी।”

ये काले वा स्वप्ने, देखिनु वंशीवदने, सेइकाले आइला दुइ वैरी।  
आनन्द आर मदन, हरि निल मोर मन, देखिते ना पाइनु नेत्रभरि॥  
पुन जदि कोनक्षण, कराय कृष्ण दर्शन, तवे सेइ घटी क्षण पल।  
दिया माल्य-चन्दन, नाना रत्न-आभरण, अलंकृत करिनु सकल॥112॥

“जिस समय साक्षात् में अथवा स्वप्न में वंशीवदन श्रीकृष्ण के दर्शन पाए, तब दो शत्रु आ गए- एक आनन्द और दूसरा मदन अर्थात् देह द्वारा श्रीकृष्ण सेवा की उदग्र आकांक्षा है। ये श्रीकृष्ण दर्शन में बाधा पहुँचाते तभी शत्रु हैं। इन्हीं के कारण नयन-भर कर श्रीकृष्ण दर्शन नहीं कर पाई और कर पाऊँगी भी नहीं। अतः अब एक बात मन में ठान ली है। अब यदि किसी क्षण श्रीकृष्ण के दर्शन पाती हूँ तो उन क्षणों की माला-चन्दन से पूजा करूँगी एवं नाना रत्न-अलंकारों से उन्हें भूषित करूँगी।”

गोपी प्रेम में श्रीकृष्ण दर्शन अतिशय दुर्लभ लगते हैं तभी श्रीकृष्ण दर्शन के अति दुर्लभ क्षणों की अर्चना करने की आकांक्षा है। यह भी श्रीराधा प्रेम की ही महिमा है। प्रेम का और एक स्वभाव है अतृप्ति। जिसका जितना बड़ा प्रेम है, वह स्वयं को उतना ही प्रेमहीन समझता है। श्रीराधा के परम महान प्रेम में महाप्रभु स्वयं को प्रेम-गंध शून्य समझते हैं एवं श्रीस्वरूप रामानन्द के निकट एक श्लोक का पाठ करते हैं—

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।  
वंशीविलास्याननलोकनं विना विभर्मि यत् प्राणपतङ्गकान् वृथा॥113॥

“मुझमें श्रीकृष्ण प्रेम की स्वल्पमात्र भी गंध नहीं है। केवल स्वयं का सौभाग्यातिशय प्रकाश करने के निमित्त रोदन करता हूँ। (मुझमें प्रेम गंध नहीं

है उसका एक प्रमाण है कि) वंशी विलासी श्रीकृष्ण के मुख दर्शन के बिना भी मैं प्राणों को धारण किए हूँ। महाप्रभु के प्रलाप से श्लोक का व्याख्या आस्वादन—

दुरे शुद्ध प्रेमगन्ध, कपट प्रेमेर वन्ध, सेइ मोर नाहि कृष्ण पाय ।  
 तवे जे करि क्रन्दन, स्वसौभाग्य-प्रख्यापन, करि इहा जानिह निश्चय ॥  
 जाते वंशीध्वनि-सुख, ना देखि से चाँदमुख, यद्यपि से नाहि आलम्बन ।  
 निजदेहे करि प्रीति, केवल कामेर रीति, प्राणकीटेर करिये धारण ॥  
 कृष्णप्रेम सुनिर्मल, जेन शुद्ध-गङ्गाजल, सेइ प्रेमा अमृतेर सिन्धु ।  
 निर्मल से अनुरागे, ना लुकाय अन्य दागे, शुक्लवस्त्रे जैछे मसीबिन्दु ॥  
 शुद्धप्रेम-सुखसिन्धु, पाइ ताँ एकविन्दु, सेइ विन्दु जगत् डुवाय ।  
 कहिवार जोग्य नहे, तथापि वाउले कहे, कहिले वा केवा पातियाय ॥  
 एइमत दिने दिने, स्वरूप रामानन्द सने, निजभाव करेन विदित ।  
 वाह्ये विषज्ज्वाला हय, भितरे आनन्दमय, कृष्णप्रेमार अद्भुत चरित ॥  
 एइ प्रेमार आस्वादन, तप्त-इक्षु-चर्वण, मुख ज्वले ना जाय त्यजन ।  
 एइ प्रेमा यार मने, तार विक्रम से-इ जाने, विषामृते एकत्र मिलन ॥ 114 ॥

आत्मेन्द्रिय सुख-वांछ से रहित केवल श्रीकृष्ण-सुख कामना ही शुद्ध प्रेम का लक्षण है। प्रभु प्रेमोक्ति (प्रेम से उत्पन्न) दैन्य से भरकर कहते हैं— “वह शुद्ध प्रेम तो बहुत दूर, जैसे कोई स्वार्थ सिद्धि के उद्देश्य से श्रीकृष्ण में प्रेम का अभिनय करता है, श्रीकृष्ण चरणों में वह कपट प्रेम भी मेरा नहीं है। कोई कह सकता है। “तब आप इतना रोदन क्यों करते हो? यह तो प्रेम का ही बाह्य लक्षण सात्विकभाव है? उसके उत्तर में कहते हैं— रोदन करके मैं कृष्ण प्रेमिक कहलवा कर निज सौभाग्य अन्यों को जनाना चाहता हूँ। जहाँ से वंशी-ध्वनि (श्रवण) का सुख लाभ होता है, उस श्रीकृष्णचन्द्र वदन को मैंने नहीं देखा, उस विषय के प्रति मेरी लालसा भी नहीं है। मेरी निज देह में प्रीति है, देह सुख के लिए ही प्राण कीट को धारण किए हूँ, यह तो काम की ही रीति अथवा लक्षण है। कृष्ण प्रेम गंगाजल के समान शुद्ध एवं निर्मल है। केवल श्रीकृष्ण सुख भावनामय है। जैसे सफेद वस्त्र पर काला बिन्दु छुपता नहीं उजागर हो ही जाता है; उसी प्रकार श्रीकृष्ण-सुख-भावनामय प्रेम में आत्मेन्द्रिय-सुख वासना बिन्दु मात्र होने पर भी वह छुपती नहीं है। श्रीकृष्ण प्रेम अमृत का सिन्धु है उसके एक बिन्दु में ही विश्व डूब जाता है; अर्थात् मात्र एक बिन्दु कृष्ण प्रेम का आस्वादन, जड़ीय विश्व के समस्त आस्वादन



को तुच्छ-अति तुच्छ अथवा घृणास्पद कर देता है। हो सकता लोग इन सब बातों पर विश्वास न करें एवं किसी वाचाल का प्रलाप ही समझें। प्रेम की रीति नीति प्रेमी के अतिरिक्त कोई नहीं जानता।

इसी भाव से प्रभु प्रतिदिन अपने मर्म के संगी स्वरूप दामोदर और रामानन्द राय के निकट अपने अंतस के भाव प्रकाश करते हैं। बाहर विरह की विष ज्वाला और अंतस में परमानन्द रस का आस्वाद। श्रीकृष्ण प्रेम का ऐसा ही विरुद्ध धर्ममय अद्भुत स्वभाव है। इस जगत के सुख-दुख तो दिन और रात के समान परस्पर प्रतियोगी हैं, यह कभी एक ही समय में घटित नहीं होते। श्रीकृष्ण विरह दुख और मिलनानन्द दोनों प्रेम से उत्थित हैं, प्रेम हलादिनी शक्ति की सार वृत्ति है, इसी कारण दोनों ही परमानन्दमय हैं दोनों ही दोनों के पोषक हैं। क्योंकि इन चिन्मय सुख-दुख का अपूर्व मेल रहता है।

गोपिका के प्रेम में मिलन काल में बाहर आनन्द रहते हुए भी भीतर भावी विरह का दुख विराजता है एवं विरह का अवसर होने बाहर दुख और ज्वाला होते हुए भी अंतस में रूप गुण आदि का विपुल अनुभव जनित आनन्द रस का भोग होता है। इस आनन्द-वेदना का आस्वादन अति विचित्र है। विश्व में इसका कोई दृष्टान्त नहीं है। तभी कहा गया है, तप्त इक्षु चर्वण के समय मुख में ज्वाला का अनुभव होता है, किन्तु इक्षु रस के स्वाद के कारण वह त्याग भी नहीं किया जाता। वह ज्वाला (जलना) भी आस्वादनीय ज्वाला के रूप में अनुभव होती है। प्रेमिक के विरह-मिलन से जनित युगपत (एक ही समय में) सुख और दुख की अनुभूति को व्याख्या द्वारा नहीं समझा जा सकता, जिसके हृदय में प्रेम विराजता है वे ही इस “विषामृत” का अद्भुत आस्वादन लाभ करते हैं।

प्रभु के विप्रलम्भ रस के स्थायी भाव सिन्धु में नाना संचारी भाव तरंगों का उदगम हुआ। श्रील कविराज गोस्वामी पाद लिखते हैं—

जे काले देखे जगन्नाथ, श्रीराम-सुभद्रा-साथ, तवे जाने-आइलाम कुरुक्षेत्र ।  
सफल हड़ल जीवन, देखिलूँ पद्मलोचन, जुड़ाइल तनु-मन-नेत्र ॥  
गरुडेर सन्निधाने, रहि करे दरशने, से आनन्ददेर कि कहिव बले ।  
गरुडस्तम्भेर तले, आछे एक निम्नखाले, से-खाल भरिल अश्रुजले ॥  
ताँहा हैते घरे आसि, माटिर उपरे वसि, नखे करे, पृथिवी लिखन ।  
हा हा काँहावृन्दावन, काँहा गोपेन्द्रनन्दन, काँहा सेइ वंशीवदन ॥

काँहा सेइ त्रिभङ्गठाम, काँहा सेइ वेणूगान, काँहा सेइ यमुनापुलिन ।  
काँहा रासविलास, काँहा नृत्य-गीत-हास, काँहा प्रभु मदनमोहन ॥115 ॥

नीलाचल अवस्थान काल में श्रीजगन्नाथ दर्शन महाप्रभु का नित्य कृत्य था। श्रीराधारानी के भाव में आविष्ट प्रभु श्रीबलदेव और सुभद्रा के संग श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन कर ऐसा अनुभव करते—

वे कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण दर्शन कर रहे हैं। ब्रजवासियों के संग श्रीराधारानी प्रभृति गोपिकाओं ने सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण दर्शन किए थे यह बात श्रीमद्भागवत में वर्णित है। अवश्य ही यह श्रीराधारानी का एक प्रकाश विशेष है, इसे संयोगिनी प्रकाश कहते हैं। स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जैसे ब्रजधाम त्यागकर कहीं जाते नहीं, वैसे ही श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी भी स्वयं रूप से ब्रज धाम त्याग नहीं करती। महाप्रभु कुरुक्षेत्र की श्रीराधा के भाव में जगन्नाथ दर्शन कर ऐसा अनुभव करते हैं कि वे श्रीकृष्ण दर्शन कर रहे हैं, उनका जीवन धन्य हो गया। गरुड़ स्तम्भ के निकट से श्रीकृष्ण दर्शन कर आनन्द अश्रुओं में डूब जाते। गरुड़ स्तम्भ के नीचे की खाल (गढा) प्रभु के अश्रु जल से पूर्ण हो जाती। मन्दिर से गम्भीरा लौट आने पर प्रभु में भावान्तर हो जाता। कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण दर्शन में उनकी यथेष्ट सेवा सम्भव नहीं यह सोच कर उनका अंतस विषाद से भर जाता। ब्रजगोपियों का स्वच्छन्द रूप से श्रीकृष्ण सेवा का स्थान एकमात्र श्रीवृन्दावन है। ब्रजविलासी श्रीकृष्ण ही उनके अभीष्ट हैं। अतः द्वारकानाथ के कुरुक्षेत्र में दर्शन के आवेश में विषाद मग्न प्रभु धरती पर बैठकर अपने नखों से पृथ्वी पर लिखने लगते। यह रमणीगणों के विषाद का एक अनुभाव है। फिर प्रभु विषाद में भर विलाप करने लगते—“हाय-हाय, कहाँ हैं वह वृन्दावन! कहाँ हैं वह ब्रजेन्द्रनन्दन! कहाँ हैं वंशी वदन!! वह त्रिभंग मुद्रा कहाँ हैं! वह वेणु गान कहाँ हैं! वह यमुना-पुलिन कहाँ हैं! यमुना पुलिन पर होने वाला नृत्य-गीत परिहास रसमय रास विलास, कहाँ हैं! वह रासविहारी मदनमोहन- वह कहाँ हैं!!” प्रभु के मन में नाना विध भाव तरंग जगाती, मन अस्थिर हो जाता, एक क्षण भी व्यतीत नहीं कर पाते। प्रबल विरहानल से धैर्य नष्ट हो जाता, तब नाना श्लोक पाठ करते-करते विलाप करने लगते।

उठिल नाना भावावेग, मने हड़ल उद्वेग, क्षणमात्र नारे गोंडाइते।

प्रवल विरहानले, धैर्य्य हैल टलमले, नाना श्लोक लागिला पढ़िते ॥

अमृत्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण ।  
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि ॥116 ॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-41)

“हाय हाय! हे अनाथ बन्धो! हे करुणैकसिन्धो! हे हरे! तुम्हारे दर्शनों से विहीन दिन के क्षण-मुहूर्त आदि अधन्य समय को मैं किस प्रकार व्यतीत करूँगा।” गोपीप्रेम में श्रीकृष्ण विरह में एक क्षण भी कोटि कल्पों के समान लगता है, अतः प्रत्येक क्षण व्यतीत करना अति असहनीय हो उठता है। तब श्रीकृष्ण के निकट प्रार्थना जगती है—

तोमार दर्शन बिने, अधन्य एइ रात्रिदिने, एइ काल ना जाय काटान ।  
तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणासिन्धु, कृपा करि देह दरशन ॥  
उठिल भाव चापल, मन हइल चञ्चल, भावेर गति बुझन ना जाय ।  
अदर्शने पोडे मन, केमने पाव दरशन, कृष्ण ठाजि पूछेन उपाय ॥

तच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि  
मच्चापलक्ष तव वा मम वाधिगमाम् ।  
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि-  
मग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षिरतुमी क्षणाभ्याम् ॥117 ॥

(वह-42)

हे नाथ! तुम्हारा कैशोर एवं मेरा चापल्य यह दोनों त्रिभुवन में अद्भुत हैं, यह जान लो। यह दोनों केवल तुम्हारे और मेरे जानने योग्य हैं और किसी के नहीं। अब तुम्हारे उस अतुलनीय वंशी विलासी मनोहर मुखकमल को नयन भर देखने के लिए मैं क्या करूँ उसका उपाय तुम ही कह दो।”  
तोमार माधुरी बल, ताते मोर चापल, एइ दुइ तुमि आमि जानि ।  
काँहा करों काहाँ जाऊँ, काहाँ गेले तोमा पाऊँ, ताहा मोरे करत आपनि ॥  
नाना-भावेर प्रावला, हइल सन्धि शावल्य, भावे-भावे हैल महारण ।  
औत्सुक्य चापल्य दैन्य, रोषामर्ष-आदि सैन्य, प्रेमोन्माद सवार कारण ॥  
मत्तगज भावगण, प्रभुर देह इक्षुवन, गजयुद्धे वनेर दलन ।  
प्रभुर हैल दिव्योन्माद, तनु-मनेर अवसाद, भावावेशे करे सम्बोधन ॥118 ॥

श्रीराधारानी के भाव में श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण का उद्देश्य कहते हैं—  
‘तुम्हारे माधुर्य एवं मेरे चापल्य का बल अथवा शक्ति को तुम और मैं ही जानते हैं और कोई नहीं जानता। श्रीकृष्ण प्राप्ति के अभाव में श्रीराधारानी के चापल्य को प्राण सम ललिता आदि सखियाँ भी नहीं जानती, तभी उन्हें धैर्य

धारण करने को कहती हैं। वस्तुतः यह चापल्य प्रेम की ही शक्ति है। प्रेम ही कृष्ण माधुर्य के आस्वादन का कारण है। श्रीकृष्ण माधुर्य के सिन्धु हैं, जिसका जितना (जाति एवं परिमाण) प्रेम है वह उतना ही कृष्ण माधुर्य आस्वादन करता है। एकमात्र श्रीराधारानी ही अपने परम महान प्रेम से समग्र कृष्ण माधुर्य आस्वादन करने में समर्थ हैं। तभी श्रीकृष्ण माधुरी आस्वादन के अभाव में उनका जो चापल्य है वह उनके अतिरिक्त और कोई नहीं जान पाता। उसी श्रीराधा के भाव में प्रभु व्याकुल हो जिज्ञासा करते हैं- कहाँ जाने से किस भाव से वे श्रीकृष्ण दर्शन प्राप्त करेंगे ?

नाना भावों के उदय होने से प्रभु की भाव-सन्धि भाव-शावल्य का उदय होता है। दो भावों के एकत्र मिलन को भाव सन्धि एवं अनेक भावों के एकत्र समर्दन को भाव-शावल्य कहा जाता है। अनेक भावों के संघर्ष से प्रभु के हृदय में जैसे भाव-भाव में महारण होने लगता। औत्सुक्य, चापल्य, दैन्य, रोष, अमर्ष इत्यादि संचारी भाव योद्धा के समान प्रभु के हृदय को आलोड़ित करने लगते। दिव्योन्माद ही इस भाव युद्ध का कारण है। प्रभु के चित्तमन में भाव समूह का जो विपुल आलोड़न है, श्रीकविराज गोस्वामीपाद उसका एक दृष्टान्त देते हैं- कुछेक मत्त हाथी एक इक्षुवन में प्रवेश कर उसे आलोड़ित करते हैं और उनके दलन से वह इक्षुवन चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है, भाव युद्ध से प्रभु के चित्तमन की जैसे ठीक वही अवस्था होती है। भाव के आवेग में श्रीकृष्णकर्णामृत के एक श्लोक का पाठ कर प्रभु श्रीकृष्ण को सम्बोधित करने लगते हैं—

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो  
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।  
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम  
हा हा कदानुभवितासि पदं दृशोर्मे ॥118॥

(वही-40)

उन्मादेर लक्षण, कराय कृष्ण स्फुरण, भावावेशे उठे प्रणय मान।  
सोल्लुण्ठ-वचन-रीति, मान गर्व व्याजस्तुति, कभु निन्दा कभु त सम्मान ॥  
तुमि देव क्रीडारत, भुवनेर नारी जत, ताहे कर अभीष्ट-क्रीडन।  
तुमि मोर दयित, मोते वैसे तोमार चित, मोर भाग्ये कर आगमन ॥  
भुवनेर नारीगण, सभा कर आकर्षण, ताहा सब कर समाधान।  
तुमि कृष्ण चित्त-हर, ऐछे कोन पामर, तोमारे वा कोन करे मान ॥

तोमार चपल मति, ना हय एकत्र स्थिति, ताते तोमार नाहि कभु दोष ।  
 तुमित करुणासिन्धु, आमार प्राणेर बन्धु, तोमाय मोर नाहि कभु रोष ॥  
 तुमि नाथ ब्रजप्राण, ब्रजेर कर परित्राण, बहू कार्ये नाहि अवकाश ।  
 तुमि आमार रमण, सुख दिते आगमन, ए तोमार वैदग्ध-विलास ॥  
 मोर वाक्य निन्दा मानि, कृष्ण छड़ि गेल जानि, शुन मोर ए स्तुति-वचन ।  
 नयनेर अभिराम, तुमि मोर धन-प्राण, हा हा पुन देह दरशन ॥  
 स्तम्भ-कम्प-प्रस्वेद, वैवर्ण अश्रु स्वरभेद, देह हैल पुलके व्यापित ।  
 हासे कान्दे नाचे गाय, उठि इति इति हाय, क्षणे भूमे पड़िया मूर्च्छित ॥  
 मूर्च्छाय हैल साक्षात्कार, उठि करे हुहुङ्कार, कहे-एइ आइला महाशय ।  
 कृष्णेर माधुरी गुणे, नाना भ्रम हय मने, श्लोक पड़ि करये निश्चय ॥

मारः स्वयं नु मधुरद्युतिमण्डलं नु, माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं उ ।  
 वेणीमृजो उ मम जीवितवल्लभो नू, कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय ॥

(वही-68)

किंवा एइ साक्षात्काम, द्युतिबिम्ब मूर्त्तिमान, कि माधुर्य स्वयं मूर्त्तिमन्त ।  
 किंवा मनोनेत्रोत्सव, किंवा प्राणवल्लभ, सत्य कृष्ण आइला नेत्रानन्द ॥  
 गुरु नाना भावगण, शिष्य प्रभुर तनु-मन, नानारीते सतत नाचाय ।  
 निर्व्वेद विषाद दैन्य, चापल्य हर्ष धैर्य मन्यु, एइ नृत्ये प्रभुर काल जाय ॥  
 चण्डिदास विद्यापति, रायेर नाटक-गीति, कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द ।  
 स्वरूप-रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रि दिने, गाय शुने परम आनन्द ॥

(चै.च.)

श्रीराधारानी के भाव में दिव्योन्माद के उदय होने पर प्रभु के चित्त में नानाविध भ्रमाभा-वैचित्री प्रकाशित होने लगी । दिव्योन्माद में विरही प्रभु के सम्मुख श्रीकृष्ण स्फुरित हुए । प्रभु के प्रणय-मान का उद्रेक हुआ । नाना भावों के उदय होने से श्रीकृष्ण के प्रति परिहास युक्त वाक्य-भंगिमा, गर्व, स्तुति छल से निन्दा और कभी सम्मान प्रभृति प्रकाशित होने लगीं । श्रीकृष्ण को अन्य रमणी में आसक्त सोचकर अमर्ष भाव के उदय होने से कहने लगीं- हे देव! (दिव् धातु क्रीड़ा अर्थ में) तुम अन्य रमणी के संग क्रीड़ा करते हो, अन्य नारी में तुम्हारी आसक्ति है; जाओ-उन्हीं के संग जाकर अपनी मनोवासना पूर्ण करो । यहाँ श्रीराधारानी का मानिनी का भाव प्रकाशित है । “धीराधीरा तु वक्रोत्तया सवाष्पम् वदति प्रियम्” (उ.नी.) जो सजल नयना हो प्रिय के प्रति वक्रोत्ति प्रयोग करती है, वे धीरा नायिका हैं ।

‘तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो तुम्हारा चित्त मुझमें वास करता है अर्थात् तुम जो मेरे निकट आए हो यह मेरा सौभाग्य है। यह वक्रोक्ति सुनकर कृष्ण चले गए हैं यह सोने पर औत्सुक्य भाव का उदय हुआ तब कहने लगी ‘हे दयित! तुम मेरे प्रिय हो, दया करो, आकर दर्शन देकर मेरा भाग्य प्रसन्न करो। यहाँ अमर्ष और औत्सुक्य की सन्धि है।

फिर सोचने लगीं, श्रीकृष्ण अन्य नारी के संग जनित अपराध के निमित्त उनके निकट क्षमा चाहते हैं तब असूया का उद्रेक हुआ; परिहास पूर्वक कहने लगीं- “तुम अन्य रमणी का संग करते हो, वह तो ठीक ही करते हो उसमें तुम्हारा दोष क्या? तुम केवल मेरे बन्धु नहीं- तुम तो त्रिभुवन की सभी रमणियों के एकमात्र बन्धु हो सभी को मोहन वेणु रव से आकर्षित करते हो। सभी तो तुम्हें चाहती हैं। उनका संग करने में फिर लज्जा क्या है। अब फिर जाओ, जाकर उनका संग करो। यहाँ अमर्ष के अनुगत असूया के उदय होने पर धीर-मध्य नायिका का स्वभाव व्यक्त हुआ है।

“धीरा तु व्यक्ति वक्रोक्तया सोत्प्रासम् सागसम् प्रियम्”

(उ०नी०)

जो नायिका अपराधी प्रिय के संग उपहास-वक्रोक्ति का प्रयोग करती है उसे धीर-मध्या कहा जाता है! पूर्व वाक्य में वक्रोक्ति के सहित उपहास किया है। फिर सोचती हैं “अन्य नारी के निकट जाओ”, मेरा यह वाक्य सुनकर कृष्ण चले गए तब उनकी दर्शन उत्कण्ठा में कहते हैं, “हे कृष्ण, तुमने मेरे चित्त का हरण किया है, मेरा चित्त अब मेरे पास नहीं है। तुमसे कौन पामरी (मूर्ख) मान करेगा? मैं और प्रति मान नहीं करूँगी, तुम आकर दर्शन दो। यहाँ पर औत्सुक्य के अनुगत “मति’ भाव का उदय हुआ है। ‘विचारोथमर्थ निर्धारणम् मतिः”, विचारपूर्वक अर्थ निर्धारण को मति कहा है। ‘तुमि कृष्ण चित्त हर.....कोन् करे मान।’ यहाँ तक अर्थ हुआ।

फिर सोचने लगती हैं, उनके आह्वान से श्रीकृष्ण पुनः आए हैं एवं अनुनय विनय कर कह रहे हैं- ‘प्रिये! मैं तो कुंज के बाहर ही खड़ा था, कहीं भी तो नहीं गया; मेरे प्रति रुष्ट क्यों होती हो? प्रसन्न होवो’- यह बात सुनकर उग्र भाव का उदय हुआ। इस भाव में क्रोध से भर कर कहती हैं- हे कृष्ण! तुम्हारा मन एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता, कारण तुम चपल हो। तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है इसमें तुम्हारा दोष क्या? अब और यहाँ क्यों खड़े हो? जाओ परस्त्री चोर! अन्य रमणी के पास चले जाओ।’ यहाँ ‘उग्रता भाव के

उदय होने से अधीर मध्या नायिका का भाव व्यक्त होता है। “अधीरा पुरुषै-वाक्यैर्निरस्येदवल्लभ रुषा” (उ.नी.) “जो नायिका क्रोध प्रकाश कर निष्ठुर वाक्यों से वल्लभ को निराश करती हैं उन्हें अधीर मध्या कहा जाता है। फिर सोचने लगती हैं- मेरे कटु वाक्य सुन लगता है, कृष्ण चला गया और अब लौट कर नहीं आएगा। तब दैन्य भाव के उदय होने पर कहने लगती हैं, ‘हे कृष्ण! तुम तो करुणा के सिन्धु हो, तुम्हारा चित्त करुणा कोमल है, तुम मेरे प्राणों के बन्धु हो, तुम्हारे प्रति मुझे कोई रोष नहीं है, दया कर दर्शन देकर प्राण बचाओ। “ए तो तोमार चपलमति.... नहि कभू रोष”- यहाँ तक अर्थ प्रकाशित हुआ।

श्रीराधा सोचती हैं, उनकी दैन्योक्ति सुनकर श्रीकृष्ण आए हैं, वे स्वयं मौन बैठे हैं; श्रीकृष्ण अनुनय विनय कर कहते हैं—प्रिय कुछ कहती क्यों नहीं, क्यों वृथा मानकर मुझे कष्ट देती हो? प्रसन्न होवो यह बात सुनकर श्रीमती में अमर्ष के अनुगत अवहित्था भाव का उदय हुआ। वे उदासीनता से भर कहने लगीं- ‘हे नाथ, ऐसी बात मत कहो, तुम सभी ब्रजवासियों के प्राण हो, ब्रजवासियों की रक्षा के लिए तुम सतत नानाकार्यों में व्यस्त रहते हो। तुम्हें बहुत कार्य हैं, मेरे निकट आने का तुम्हारे पास समय कहाँ है। अतः तुम मेरे निकट नहीं आए इस कारण मैं मान क्यों करूँगी। तुमसे मान किए हूँ सो तुमसे बात नहीं कर रही ऐसा मत सोचना। आज ब्राह्ममणीगणों ने मुझे मौन व्रत धारण कराया था- तभी तुम संग संभाषण नहीं कर पाई- अपराध क्षमा करो। यहाँ धीरा-प्रगल्भा नायिका के गुण अभिव्यक्त हैं- “उदास्ते सूरते धीरा सावहित्था च सादरा।” धीरा सम्भोग विषय में उदासीन है, अपने भाव को गोपन कर सादर (आदर सहित) वाक्यों से वल्लभ को निराश करती हैं।”

क्षणकाल के लिए नीरव रहकर श्रीराधा पुनः चिन्तन करने लगती हैं- लगता है कृष्ण चले गए, वे निश्चय ही अब लौट कर नहीं आएँगे। तब श्रीराधा के चपल भाव का उदय हुआ। वे भावना करती हैं- यदि कृष्ण इस बार दर्शन देते हैं तब वे स्वयं अग्रसर हो उन्हें कण्ठ में धारण कर लेंगी और उन्हें छोड़कर जाने नहीं देंगी। तभी उत्सुकता वश दैन्य सहित कहती हैं- हे मेरे रमण, तुम तो सदा ही मुझ संग रमण कर मेरा चित्त-विनोदन करते हो; मुझे सुख देने के लिए ही तुम्हारा आगमन है, यह तुम्हारी विलास-वैदग्धी को छोड़ और कुछ नहीं। अब एक बार फिर आकर मेरी मनोभिलाषा पूर्ण करो।’ उनकी प्रार्थना वाणी (वाक्य) सुनकर श्रीकृष्ण आ गए हैं, यह सोचकर वे

उत्सुकता के साथ श्रीकृष्ण को आलिंगन करने को गई किन्तु कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ- स्फूर्ति में विराम हुआ। हाहाकार कर उठीं- हा मेरे नयनाभिराम! तुम ही मेरे धन प्राण सर्वस्व हो। हा हा कृपा कर दर्शन दो।” “तुमि नाथ ब्रजप्राण” से “पुन देह दरशन” तक अर्थ प्रकाशित हुआ। दिव्योन्माद के आवेश में अष्ट-सात्विक विकारों से प्रभु का देह व्याप्त हो गया। कभी हंसते हैं, कभी रोते हैं, कभी नृत्य करते हैं गान करते हैं, कभी इधर-उधर दौड़ते हैं और कभी मूर्छित हो भूमि पर गिर जाते हैं। इस प्रकार श्रीराधा के मोहनाख्य भाव के चरम अनुभाव दिव्योन्माद का प्रकाश कर प्रभु ने श्रीराधा प्रेम की महा-महिमा स्वयं आस्वादन किया एवं भक्तगणों को श्रीराधा की इस अनन्य प्रेम माधुरी का आस्वादन कराया। श्रीचैतन्य की कृपा और उनके दासानुदासों का संग जिसे प्राप्त है, वे ही इस रहस्य को समझ सकते हैं अन्य और कोई नहीं।

आपने करि आस्वादने, शिखाइल भक्तगणे, प्रेमचिन्तामणिर प्रभु धनी।  
नाहि जाने स्थानास्थान, यारे तारे कैल दान, महाप्रभु दाता-शिरोमणि ॥  
एइ गुप्तभाव-सिन्धु, ब्रह्मा ना पाय यार विन्दु, हेन धन विलाइल संसारे।  
ऐछे दयालु अवतार, ऐछे दाता नाहि आर, गुण केहो नाहि वर्णिवारे ॥  
कहिवार कथा नहे, कहिले केहो ना बुझये, ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग।  
सेइ से बुझिते पारे, चैतन्येर कृपा यारे, हय तार दासानुदासेर सङ्ग ॥119 ॥

(चै.च.)

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद अपनी श्रीचैतन्यचरितामृत में श्रीमन्महाप्रभु पर श्रीराधा प्रेम के अद्भुत प्रभाव एवं महिमा का वर्णन करते हैं। श्रीमन्महाप्रभु सतत श्रीकृष्ण अनुध्यान में मग्न रहते। दिन के समय लोक उपस्थिति में अंतस का भाव गोपन करते। रात्रिकाल में श्रीकृष्ण विरह-व्यथा वर्धित हो जाती। स्वरूपदामोदर-रामानन्द के संग जाने कितनी ही निद्राहीन रात्रियों में श्रीराधा के भाव में विरहविलाप करते। प्रभु के स्वास्थ्य की चिन्ता कर दो प्राणों के बन्धु प्रभु को शय्या पर लिटाकर निद्रा के लिए अनुरोध करते। प्रभु के नेत्र मूंदते ही श्रीकृष्ण लीला नयनों के सम्मुख उदित हो जाती। प्रभु ने एकबार निशा-अवसान के समय रासलीला का स्वप्न देखा। एकदिन महाप्रभु करियाछेन शयन। कृष्ण रासलीला करे-देखेन स्वपन ॥ त्रिभङ्ग सुन्दर देह मुरलीवदन। पीताम्बर वनमाला मदनमोहन ॥



मण्डलीबन्धे गोपीगण करेन नर्त्तन । मध्ये राधासह नाचे ब्रजेन्द्रनन्दन ॥  
देखि प्रभु सेइ रसे आविष्ट हइया । 'वृन्दावने कृष्ण पाइनु' एइ ज्ञान हैला ॥120 ॥

(चै.च.-अन्त्य 14)

यहाँ प्रभु गोपियों के संग श्रीश्रीराधाकृष्ण की रासलीला का रस स्वप्न में आस्वादन कर रहे हैं। साधारणतः प्रभु का यह आस्वादन गोपी भाव में सम्पन्न होता है, यह मन में आ सकता है। किन्तु प्रभु श्रीराधा के मादनाख्य महाभाव के आश्रय हैं अतः उन्हें श्रीराधारानी के समान ही श्रीकृष्ण के परिपूर्णतम माधुर्य का आस्वादन होता है ऐसा समझना होगा। प्रभु का स्वप्नावेश बढ़ता चला गया, रात्रि समाप्त हुई प्रभात हुआ, तब भी प्रभु ने शय्या त्याग नहीं किया। प्रभु के अंग सेवक गोविन्ददास ने प्रभु को जगाया। जागरित होने पर स्वप्न भंग हुआ, प्रभु स्वप्न भंग से दुखी हो गए। देह अभ्यास से नित्य-कर्म समापन के उपरान्त श्रीजगन्नाथ दर्शन को श्रीजगन्नाथ मन्दिर गमन किया। गरुड़ के पीछे से प्रभु का श्रीजगन्नाथ दर्शन का नियम था। प्रभु के सम्मुख खड़े हो कई सौ दर्शक जगन्नाथ दर्शन करते थे। स्वप्न के आवेश में प्रभु श्रीजगन्नाथदेव को साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन के रूप में ही दर्शन कर रहे थे। दर्शनानन्द में चित्त मग्न हो गया। तभी एक उड़िया स्त्री भीड़ में जगन्नाथ दर्शन न कर पाई तो गरुड़ के ऊपर उठ प्रभु के कंधे पर पैर रख जगन्नाथ दर्शन करने लगी। प्रभु बाह्य ज्ञान शून्य हो प्रतिमा के सामने खड़े हो जगन्नाथ दर्शन कर रहे थे। सहसा गोविन्ददास ने यह दृश्य देखा, वे प्रभु के कंधे से स्त्री को उतारने का यत्न करने लगे। उसी क्षण प्रभु को बाह्य ज्ञान हुआ। वे गोविन्द को निषेध कर कहने लगे—

आदि वश्या! एइ स्त्रीके ना कर वज्जर्न ।  
करुक यथेष्ट जगन्नाथ दर्शन ॥  
आस्ते व्यस्ते सेइ स्त्री भूमिते नाम्बिला ।  
महाप्रभुके देखि चरण वन्दन करिला ॥  
तार आर्त्ति देखि प्रभु कहिते लागिला ।  
एत आर्त्ति जगन्नाथ मोरे नाहि दिला ॥  
जगन्नाथे आविष्ट इहार तनु प्राण मने ।  
मोर स्कन्धे पद दियाछे ताहा नाहि जाने ॥  
अहो भाग्यवती एइ वन्दों इहार पाय ।  
इहार प्रसादे ऐछे आर्त्ति आमारो वा हय ॥121 ॥

प्रभु जगन्नाथदेव के ब्रजेन्द्रनन्दन रूप में ही दर्शन कर रहे थे, उनके अंतर में ब्रजरस का प्रवाह उच्छलित हो उठा था। वही मुरलीवदन रूप उनके चारों ओर स्फुरित हो उठा था।

एवे यदि स्त्री देखि प्रभुर वाह्यज्ञान हैल।  
जगन्नाथ-सुभद्रा-बलरामेर स्वरूप देखिल॥  
कुरुक्षेत्रे देखि कृष्ण ऐछे हैल मन।  
काहा कुरुक्षेत्र आइलाड काही वृन्दावन॥  
प्राप्तरत्न हाराइला ऐछे व्यग्र हैला।  
विषन्न हइया प्रभु निजवासा आइला॥  
भूमिर ऊपरे वसि निज नखे भूमि लेखे।  
अश्रुगङ्गा नेत्रे बहे, किछु नाहि देखे॥  
पाइलूँ वृन्दावननाथ पुन हाराइलूँ।  
के मोर निलेक कृष्ण, कोथा मुजि आइलूँ॥122॥

स्वप्नावेश में प्रभु का मन प्रेमाविष्ट हो जाता, बाह्य ज्ञान होने पर पाए धन को खो देने जैसे दुख में मन मग्न हो जाता। उन्मत्त के समान नृत्य गान आदि करने लगते। देह के स्वभाव से स्नान भोजन आदि कर्म सम्पन्न होते। रात्रिकाल में स्वरूप-रामानन्द के निकट अपने अंतर की कथा व्यक्त करते।

प्राप्तप्रणष्टाच्युतवित्त आत्मा, यषौ विषादोच्छिते देहगेहः।

गृहीतकापालिकधर्मको मे, वृन्दावनं श्वेन्द्रियशिष्यवृन्दः॥123॥

मेरे मन ने श्रीकृष्ण धन को प्राप्त कर फिर खो दिया। तभी विषाद में देह रूप गृह का परित्याग कर कापालिक धर्म ग्रहण कर इन्द्रिय रूप शिष्यवृन्द के संग वृन्दावन को गमन कर रहा है। यह श्लोक का पाठ कर श्रीमन्महाप्रभु विलाप करने लगे—

प्राप्त कृष्ण हाराइया, तार गुण स्मरिया, महाप्रभुसन्तापे विह्वल।  
राय स्वरूपेर कण्ठ हरि, कहे हाहा हरि हरि, धैर्यगेल हइल चपल॥

शुन वान्धव! कृष्णेर माधुरी।

यार लोभे मोर मन, छाँड़ि लोक-वेदधर्म, योगी हजा हइल भिखारी॥  
कृष्णालीलामण्डल, शुद्ध शङ्खकुण्डल, गड़ियाछे शुक कारिकर।  
सेइ कुण्डल काने परि, तृष्णालाउथाली धरि, आशाझूलि कान्धेर उपर॥  
चिन्ता कांथा उड़िगाय, धूलि विभूति-मलिन काय, हा हा कृष्ण 'प्रलाप उत्तर।  
उद्वेग-द्वादश हाथे, लोभेर झूलने माथे, भिक्षाभावे क्षीण कलेवर॥

व्यास-शुकादि योगीजन, कृष्ण आत्मा निरञ्जन, ब्रजे तौर यत लीलागण ।  
 भागवतादि शास्त्रगणे, करियाछे वर्णने, सेइ तज्जर्जा पढ़े अनुक्षण ॥  
 देहेन्द्रिय शिष्य करि, 'महावाउल' नाम धरि, शिष्य लैया करिल गमन ।  
 मोर देह स्वसदन, विषयभोग महाधन, सब छाड़ि गेला वृन्दावन ॥  
 वृन्दावने प्रजागण, यत स्थावर-जङ्गम, वृक्ष लता गृहस्थ-आश्रमे ।  
 तार घरे भिक्षाटन, फल-मूल-पत्राशन, एइ वृत्ति करे शिष्य सने ॥  
 कृष्ण-गुण रूप-रस, गन्ध-शब्द-परश, से सुधा आस्वादे गोपीगण ।  
 ता सभार ग्रास शेषे, आने पञ्चेन्द्रिय-शिष्ये, सेइ भिक्षाय राखेन जीवन ॥  
 शून्यकुञ्जमण्डप कोने, योगाभ्यास कृष्णध्याने, ताँहा रहे लैया शिष्यगण ।  
 कृष्ण आत्मा निरञ्जन, साक्षात् देखिते मन, ध्याने रात्रि करे जागरण ॥  
 मन कृष्ण-वियोगी, दुःखे मन हैल योगी, से वियोगे दश दशा हय ।  
 से दशाय व्याकुल हैया, मन गेला पलाइया, शून्य मोर शरीर आलय ॥ 124 ॥

(चै.च. अन्त्य 14वाँ परि.)

श्रीराधारानी के प्रेम के प्रभाव ने महाप्रभु के मध्य किस प्रकार के आलोडन की सृष्टि की थी, श्रीकृष्ण के रूप रस आदि के प्रति उनके मन और इन्द्रियों को किस भाव से आकर्षण किया था- इस पद में उसका कुछ इंगित प्राप्त होता है। श्रीभगवान् के रूप, गुण आदि के प्रति प्रेमिक के मन एवं इन्द्रियों को एकान्त भाव से प्रलुब्ध और निविष्ट करना ही प्रेम का कार्य है। प्रेम एक तरफ तो चुम्बक की तरह लोह-कण के स्वभाव प्राप्त श्रीकृष्ण को आकर्षण कर प्रेमिक के नयन गोचर करता है। दूसरी तरफ उसी प्रकार प्रेमिक के चित्त मन को श्रीकृष्ण के रूप गुण आदि के माधुर्य पर आत्महारा कर देता है।

उल्लिखित पद में श्रीकृष्णप्रेम व्याकुलता का एक अतिगूढ़ गम्भीर रहस्य व्यक्त हुआ है। प्रभु एक श्रेणी के विषय विरक्त योगी के संग अपने श्रीकृष्ण अनुरागी और श्रीकृष्ण प्रेम व्याकुल मन की तुलना कर अपने अंतर की व्याकुलता को किंचित व्यक्त करते हैं। विरक्त योगी के त्याग, वैराग्य, वेशभूषा, भजन भोजन आदि के संग अपने श्रीकृष्ण-माधुर्य लुब्ध मन योगी का दृष्टान्त देकर एक दुर्ज्ञेय भाव राज्य की ओर इंगित करते हैं।

यह वैराग्य योगी के कानों में शंख निर्मित कुण्डल है, हाथों के (लौकी के) कमण्डल, देह भस्म से मलिन है, कलाइयों पर बारह धागों (गुणों) से युक्त एक सूत्र बंधा है, कंधे पर भिक्षा की झोली है, देह पर एक छिन्न कांथा, मस्तक पर वस्त्र की पाग बंधी है, मन में निरंजन आत्मा का चिन्तन है। यह

स्वयं भिक्षा नहीं करता, शिष्यों को गृहस्थ आश्रम में भिक्षा करने भेजता है, इसी भिक्षा से योगी जीविका निर्वाह करता है। यह वैरागी विषय के प्रति उदासीन है, ध्यान योग के प्रति पूर्णासक्त है, महाबाउल नाम धारण कर नानाविध तर्ज्जा पाठ करता है और निर्गुण ब्रह्म के ध्यान में निविष्ट रहता है।

प्रभु का प्रेमोन्मादी मन जैसे इस महाबाउल ( ) योगी की तरह है। शुक मुनी रूप कारीगर द्वारा निर्मित श्रीकृष्णलीला रूप शुद्ध शंख कुण्डल प्रभु के मनयोगी के कर्णभूषण हैं। कृष्ण प्राप्ति तृष्णा ही कमण्डल है। कृष्ण प्राप्ति की प्रबल आशा ही झोली है, चिन्तन ही कथा है, कृष्ण विरह व्याकुलता में मुख से 'हा हा कृष्ण' यही प्रलाप है। उद्वेग अर्थात् श्रीकृष्ण प्राप्ति के निमित्त अस्थिरता मनोयोगी की कलाइयों का द्वादश-गुणों का सूत्र है भागवत शास्त्र पाठ ही तर्ज्जा है। दस इन्द्रियाँ शिष्य है, श्रीवृन्दावन के स्थावर जंगम वृक्षलता आदि ही कृष्ण प्रेम भिक्षा के गृहाश्रम है, गोपियों का भुक्तावशेष (प्रसादी) श्रीकृष्ण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यही पंच-विषय ही आध्यात्मिक महा-बाउल ( ) के भिक्षा का द्रव्य हैं। श्रीकृष्ण के ध्यान में दिन-रात जागरण ही इस महाबाउल का कार्य है। प्रभु अति व्याकुल प्राणों से अपने प्राणों के बांधव श्रीस्वरूप-रामानन्द के प्रति कहते हैं- "सखा! मेरा मन कृष्ण विरह दुख से योगी हो वृन्दावन चला गया। देह में मन नहीं है, इन्द्रियाँ नहीं है, देह रूपी गृह शून्य है। कितनी असहनीय क्लेशकर अवस्था है।"

यह बात कहकर महाप्रभु ध्यान से स्तम्भित (स्थिर) नेत्र हो गए, नयनों से अश्रु प्रवाह बहने लगा, वे नीरव और संज्ञाहीन हो गए। प्रभु की अवस्था देखकर रामानन्दराय कृष्ण लीला रसमय कुछ श्लोकों का पाठ करने लगे एवं स्वरूप अपने मधुकण्ठ से कुछ रसगान करने लगे। लीलारस का आस्वादन ही विरही की विरह ज्वाला शान्त करने का एकमात्र उपाय है। दोनों की चेष्टा से प्रभु को कुछ बाह्य ज्ञान हुआ। तब अर्धरात्रि अतिवाहित हुई थी। दोनों ने बहुत यत्न के साथ प्रभु को गम्भीरा के भीतर प्रकोष्ठ पर शयन कराया। रामानन्द राय अपने आवास को चले गए। प्रभु की अवस्था देख स्वरूप और गोविन्द गम्भीरा के द्वार पर ही सो गए। प्रभु के नेत्रों में निद्रा नहीं, वे प्रेमावेश में उच्चस्वर में कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। सहसा गम्भीरा निस्तब्ध हो गया। प्रभु की कोई गतिविधि अनुभव नहीं होने पर शंकित मन से स्वरूप ने दीपक जलाकर द्वार खोला तो देखा प्रभु गम्भीरा में नहीं हैं। एक के बाद एक

तीन द्वार बन्द हैं फिर भी प्रभु का कही पता नहीं। संवाद पाकर सभी जग गए,  
दीपक जलाकर प्रभु को खोजने लगे। सहसा सभी ने देखा—

सिंहद्वारेर उत्तरदिशाय आछे एक ठई।  
तार मध्ये पड़ि आछेन चैतन्यगोसाईं॥  
देखि स्वरूपगोसाईं आदि आनन्दित हैला।  
प्रभुर दशा देखि पुन चिन्तित हइला॥  
प्रभु पड़ि आछे दीर्घ हात पाँचछय।  
अचेतन देह, नासाय श्वास नाहि वय॥  
एकेक हस्त पद-दीर्घ तिन तिन हात।  
अस्थि ग्रन्थि भिन्न, चर्म आछे मात्र तात॥  
हस्त पद ग्रीवा कटि अस्थिसन्धि जत।  
एकेक वितस्ति भिन्न हइयाछे तत॥  
चर्ममात्र उपरे सन्धिर आछे दीर्घ हैया।  
दुःखित हइला सभी प्रभुके देखिया॥  
मुखे लाला फेन प्रभुर उत्तान नयान।  
देखितेइ सब भक्तेर देह छाड़े प्राण॥125॥

(वही)

श्रीश्रीजगन्नाथदेव के सिंह-द्वार की उत्तर दिशा में भक्तवृन्द ने प्रभु को देखा। स्वर्ण के गौरांग का धूलि-धूसरित कलेवर अचेतन अवस्था में धरती पर चित्त होकर पड़ा था। उनकी सभी देह सन्धियाँ शिथिल हो गई थीं। सन्धि-स्थल की अस्थियाँ सब दूर-दूर सरक गई थीं। केवल चर्म थी जो खिंचकर दीर्घ हो गई थी। हस्त, पद, ग्रीवा, कटि के जितने जोड़ थे सभी एक-एक वितस्ति (आधा हाथ माप) परिमाण से अलग हो गए थे। प्रभु का स्वभावतः दीर्घ देह सुदीर्घ दिख रहा था। देह में स्पन्दन नहीं था, नासिका में श्वास नहीं थी, मुख से लार बह रही थी, नयनों का तारा स्थिर हो गया था। प्रभु की ऐसी अवस्था देखकर भक्तों के प्राण अधीर हो गए। वे हाय-हाय कर रोदन करने लगे। इस लीला के प्रत्यक्ष द्रष्टा श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी चरण अपने गौरांग-स्तवकल्पवृक्ष में लिखते हैं—

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपतिसुतस्योरुविरहात्  
श्लथ श्रीसन्धित्वाहवदधिकदैर्य्या भुजसङ्गः।  
लुण्ठन भूमौ काका विकलविकलं गदगदवचा-  
रुदन श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन् मां मदयति॥126॥

अर्थात् किसी एक दिन काशी मिश्र के आवास पर श्रीकृष्ण के उत्कट विरह में अंगों की सभी सन्धियाँ शिथिल होने से, जिनके हस्त-पद अधिक दीर्घ हो गए थे एवं उस अवस्था में भूमि पर गिरते-गिरते अत्यन्त कर कातरता सहित जो गद्गद् काकु वाक्यों से रोदन कर रहे थे, वे ही श्रीगौरांग मेरे हृदय में उदित हो मुझे उन्मत्त कर रहे हैं।

श्रीमन्महाप्रभु के इन अस्थि-संधि वियोग, कूर्माकृति प्रभृति अनुभावों में श्रीश्रीराधारानी के प्रेम की अति अद्भुत शक्ति अभिव्यक्त हुई है। दिव्योन्माद दशा में श्रीराधाप्रेम के अति आश्चर्यमय संकोचन प्रसारण को सहन न कर पाने के कारण श्रीकृष्ण के सच्चिदानन्द श्रीविग्रह की ऐसी अवस्था है। प्रश्न उठ सकता है, ब्रजलीला में तो श्रीकृष्ण विरह में राधारानी की देह में यह अति-आश्चर्यमय अनुभाव नहीं देखा जाता, तब उनके भाव-अंगीकारी श्रीमन्महाप्रभु में किस प्रकार दिखाई देता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-सुख के अतिरिक्त अन्य कोई भी कामना नहीं करती। उनकी विरह दशा का उदय केवल श्रीकृष्ण सेवा के अभाव में होता है। अतः श्रीकृष्ण सुख के प्रति लक्ष्य रखकर कोटि समुद्र प्रेम की मूर्ति श्रीमती राधारानी ने इस श्रेणी के आलोड़न को सहन कर लिया था। श्रीकृष्ण ने महाप्रभु रूप में श्रीराधारानी की प्रेम महिमा और आलोड़न के आतिशय का आस्वादन किया अतः श्रीराधाप्रेम उनके देह-मन पर निर्बाध रूप से अपना प्रभाव विस्तार करने में समर्थ रहा है। श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थ में श्रीराधारानी के दिव्योन्माद वर्णन में श्रीराधा के भी किञ्चित ऐसे ही भावों का वर्णन करते हैं—

वैस्वर्यात् क्रशिमान्वयादवयवस्थित्यन्यभावाश्रयाः-

द्वैवर्ण्यादपि या न सेति मुहरप्युहां बभूवे यदा।

तर्हेषा वत!! लालयावृत्तिवशाच्चेष्टाविघटादुत

शवासाद्यनुपलम्भनान्निजतनावस्थीति नातर्कि च॥127॥

“श्रीकृष्ण विरह में श्रीराधा के स्वर की प्रतिकूलता, अंगों की अत्यन्त कृशता, हस्त-पद आदि के सन्निवेश का अन्यथा होना अर्थात् जिस भाव से अंगों की दीर्घता और सरलता होना आवश्यक है उसके विपरीत होना, वैवर्ण प्रभृति जो सब अवस्थाएँ घटी थी उसमें सखियाँ भी उन्हें पहचानने में असमर्थ हो गयी थी इन सभी भावों का द्वैत (जोड़) नहीं है। यह केवल श्रीराधारानी

की ही निज-समाप्ति है। एकमात्र महाप्रभु में कूर्माकृति, दीर्घाकृति दशा में इन सब भावों की विशेष अभिव्यक्ति देखी जाती है।

जो हो महाप्रभु की दशा देख श्रीपाद स्वरूप प्रभु के कानों में उच्चस्वर से कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। कुछ देर में प्रभु की देह में स्पन्दन चिह्न दिखने लगे, वे हरि-हरि कहते हुए उठकर बैठ गए। चैतन्य प्राप्ति के संग-संग ही अस्थि संधि यथास्थान संलग्न हो गई। वे स्वरूप आदि भक्तगण को देखकर कहने लगे- “यह क्या स्वरूप! तुम सब यहाँ क्या कर रहे हो, यह तो सिंहद्वार है, मैं यहाँ क्यों हूँ?” स्वरूप ने कहा- ‘प्रभु! घर चलो; वहीं तुम्हें सब बात कहूँगा।’ भक्तवृन्द के संग प्रभु वास स्थान को लौट आए तो स्वरूप ने सब घटना प्रभु को सुनाई।

शुनि महाप्रभुर बड़ हैल चमत्कार।  
प्रभु कहे किछु स्मृति नाहिक आमार ॥  
सब देखि-हय मोर कृष्ण विद्यमान।  
विद्युत्प्राय देखा दिया करे अन्तर्धान ॥

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद कहते हैं—

एइत कहिल प्रभुर अद्भुत विकार।  
याहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार ॥  
लोके नाहि देखि ऐछे शास्त्रे नाहि शुनि।  
हेन भाव व्यक्त करे न्यासीशिरोमणि ॥  
शास्त्र लोकातीत जेइ-जेइ भाव हय।  
इतरलोकेर ताते ना हय निश्चय ॥  
रघुनाथदासेर सदा प्रभुसङ्गे स्थिति।  
ताँर मुखे शुनि लिखि करिया प्रतीति ॥ 128 ॥

इस समय प्रभु सतत ब्रजलीला एवं ब्रजभूमि के अनुध्यान में निमग्न रहते थे। किसी प्रकार भी ब्रज के उद्दीपन की कोई वस्तु बाह्य इन्द्रियों के गोचर होते ही विपुल भाव से ब्रजधाम और ब्रजलीला का स्फुरण होता। श्रीगोवर्धन-पर्वत श्रीकृष्ण की अति रहस्यमय लीलास्थली है। महाप्रभु एक दिन श्रीगिरि गोवर्धन एवं वहाँ अनुष्ठित श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं के चिन्तन में विभोर थे। लीलारस में प्रभु का चित्त आविष्ट था, वे अनमने भाव से एकाकी समुद्र की ओर चल दिए। सहसा चटक पर्वत (समुद्र के किनारे बालू का पहाड़) उनके नयन गोचर हुआ। वे सोचने लगे, वे वृन्दावन में अवस्थान कर रहे हैं- और यह गिरिराज गोवर्धन उनके नयनों के सम्मुख

विराजित है! प्रभु बाह्यज्ञान हारा होकर उन्मत्त के समान, श्रीमद्भागवत में वेणुगीत में गोपिकाओं द्वारा गाया गया गोवर्धन-माहात्म्य श्लोक पाठ करते-करते वायु वेग से चटक पर्वत की ओर दौड़ने लगे। श्लोक ( भा. - 10/21/18) इस प्रकार—

हन्तायमद्रिरवला हरिदासवय्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः।

मानं तनोति सहयोगणगोस्तयोर्द्यत् पानीयसूयवसकन्दर-कन्दमूलेः ॥ 129 ॥

“हे सखियो! यह गिरि गोवर्धन हरिदासगणों में सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि यह श्रीरामकृष्ण के चरण स्पर्श से प्रमोदित हो पीने का जल, कोमल तृण, उपवेशन आदि के लिए गुफा, कन्द एवं मूल द्वारा गो-गण और सखागणों सहित रामकृष्ण की पूजा करता है।” सतत प्रभु का विह्वल भाव दर्शन कर उनका अंग सेवक गोविन्ददास हर समय उनके निकट ही रहता था। प्रभु को उन्मत्त की तरह भागते देख गोविन्द चिल्लाते हुए उनके पीछे भागने लगा। इस समय महाप्रभु का निरन्तर आवेशमय भाव दर्शन होने से पार्षद-वृन्द सदा उनके लिए चिन्तित रहते थे। ना जाने प्रभु कब कहाँ किस दशा को प्राप्त होंगे सभी की यही आशंका रहती थी। गोविन्द को भागते देख और उसकी चीख सुनकर जो जहाँ था वहीं से उसी दिशा की ओर दौड़ने लगा। पहले तो प्रभु वायु वेग से दौड़े किन्तु सहसा उनकी देह में स्तम्भ भाव का उदय हुआ। संग-संग श्रीअंग में अति आश्चर्यमय अष्ट-सात्विक भाव प्रकाशित होने लगे, प्रभु काँपते-काँपते धरती पर गिर पड़े।

प्रथमे चलिला प्रभु येन वायुगति। स्तम्भभाव पथे हैल-चलिते नाइ शक्ति ॥

प्रति रोमकृपे मांस व्रणेर आकार। तार उपरे रोमोद्गम कदम्बप्रकार ॥

प्रतिरोमे प्रस्वेद पड़े रुधिरेर धार। कण्ठ घर्घर, नाहि वर्णेर उच्चार ॥

दुइ नेत्र भरि अश्रु बहये अपार। समुद्रे मिलिल येन गङ्गा-यमुना धार ॥

वैवर्ण्यं शङ्खुप्राय श्वेत हैल अङ्ग। तबे कम्प उठे येन समुद्रतरङ्ग ॥

काँपिते काँपिते प्रभु भूमेते पड़िला। तबे त गोविन्द प्रभुर निकटे आइला ॥ 130 ॥

(चै.च. अन्त्य 18वां परि.)

गोविन्द प्रभु की अवस्था देखकर प्रभु के श्रीअंग पर हाथों से जल छिड़क कर बहिर्वास द्वारा हवा देने लगे। कुछ ही समय में स्वरूप आदि भक्तगण भी आ पहुँचे, प्रभु की अवस्था दर्शन कर सभी रोदन करने लगे। श्रीपाद स्वरूप प्रभु के एकान्त अंतरंग है, प्रभु के ही द्वितीय स्वरूप है। किस तरह इन अति आश्चर्यमय सुदीप्त, सात्विक विकाराक्रान्त प्रभु में चेतना का



संचार करना है यह वे जानते हैं। वे प्रभु के मस्तक के पास बैठकर यत्नपूर्वक प्रभु का मस्तक अपनी गोद में रखकर उनके कानों में, उच्चस्वर से हरिनाम कीर्तन करने लगे। बहुत समय तक ऐसा करने पर प्रभु में चेतना का संचार हुआ। प्रभु भी 'हरिबोल' कहते हुए उठे! प्रभु की यह अति आश्चर्यमय भाव विकार दर्शन लालसा में बहुत से सिन्धु-स्नानार्थी उस समय वहाँ एकत्रित हो गए थे। सभी की सम्मिलित कण्ठ की हरिध्वनि से दिगन्त प्रतिनादित हो उठा।

महाप्रभु विस्मित नयनों से चारों ओर देखने लगे, कहाँ से कहाँ आ गिरे हैं, जैसे कुछ समझ ही नहीं पा रहे। उनके सतृष्ण नयन युगल जैसे किसी खोई वस्तु को खोज रहे हैं। जिसे देखना चाहते हैं उसे जैसे देख नहीं पा रहे। सम्मुख खड़े स्वरूप को देख अर्धबाह्य दशा में जिज्ञासा करने लगे—  
 गोवर्द्धन हैते मोरे के इहाँ आनिल। पाइया कृष्णेर लीला देखिते ना पाइल ॥  
 इहाँ हैते आजि मुजि गेलूँ गोवर्द्धन। देखीं यदि कृष्ण करे गोधन-चारण ॥  
 गोवर्द्धने चढ़ि कृष्ण बाजाइला वेणु गोवर्द्धनेर चौदिके चरे सब धेनु ॥  
 वेणुनाद शुनि आइला राधा ठाकुराणी। तौर रूप भाव देखि! वर्णिते ना जानि ॥  
 राधा लजा कृष्ण प्रवेशिला कन्दराते। सखीगण कहि मोके फूल उठाइते ॥  
 हेनकाले तुमि सब कोलाहल कैला। ताँहा हैते धरि मोरे इहाँ लजा आइला ॥  
 केने वा अनिला मोरे वृथा दुःख दिते। पाइया कृष्णेर लीला ना पाइलूँ देखिते ॥  
 एत कहि महाप्रभु करेन क्रन्दन। तौरदशा देखि वैष्णव करेन रोदन ॥131 ॥

(चै.च.)

इस अवसर पर श्रीपरमानन्दपुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती का वहाँ आगमन हुआ। उनके दर्शनों से प्रभु को बाह्य दशा प्राप्त हुई। सभी प्रभु को समुद्र स्नान करा गम्भीर में लौटा लाए।

इस स्थान पर श्रीमन्महाप्रभु के प्रलाप से स्पष्ट ही समझा जाता है कि वे प्रेमरसाविष्ट दशा में सखीभाव में श्रीराधाकृष्ण युगल के रूप, गुण, लीला की माधुरी आस्वादन कर रहे हैं। केवल सखीभाव ही नहीं, यह जो राधा स्नेहाधिका मंजरी भाव है उसकी भी स्पष्ट उपलब्धि है। कारण श्रीयुगलकिशोर की लीला अवसान होने पर उनकी वेष रचना के लिए सखियाँ मंजरियों को ही पुष्प चयन कर लाने का आदेश देती हैं। "सखीगण कहे मोके फूल उठाइते" इस वाक्य से प्रभु का मंजरी भाव ही समझ आता है। अखिल भक्ति भावमय अवतार श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीराधा की भावमाधुरी आस्वादन के

साथ-साथ सखियों का भाव भी आस्वादन किया। श्रीराधारानी आस्वादन करती हैं गोविन्द माधुरी और सखियाँ आस्वादन करती हैं युगल माधुरी- इससे सखियों के आस्वादन की विशेषता समझ आती है। विशेषतः राधा-किंकरियाँ युगलमाधुरी आस्वादन के संग-संग युगल की सेवा-रस माधुर्य का भी आस्वादन करती हैं, यह सखियों की तुलना में मंजरियों की विशेषता है।

श्रीमन्महाप्रभु जो मंजरी भाव का आस्वादन करते हैं- “आपने करि आस्वादने, शिखाइल भक्तगणे” श्रील कविराज की इस वाणी से भी यही प्रमाणित होता है, क्योंकि महाप्रभु भक्तगण को मंजरीभाव की ही शिक्षा देते हैं। महाप्रभु की इस लीला में यह भी विशेष ध्यान देने योग्य विषय है। प्रभु की यह अति-आश्चर्यमय लीला भी उनकी लीला के प्रत्यक्ष दृष्टा श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी चरणन अपने गौरांग स्वत-कल्पवृक्ष (8) में प्रकाशित किया है-

समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलना-  
दये गोष्ठे गोवर्द्धनगिरिपतिं लोकितुमितः।  
ब्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृतो  
गणैः स्वैर्गौरौङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥132 ॥

“नीलाचल के निकट चटक नामक पर्वत प्रधान को देखकर, “हे बन्धुओ, ब्रज में गिरिराज, गोवर्धन के दर्शन करने के लिए मैं इस स्थान से जा रहा हूँ”- ऐसा कहकर जो प्रेम में उन्मत्त की तरह भागे थे एवं निजजन द्वारा रोक लिए गए थे; वही श्रीगौरांगदेव हृदय में उदित हो मुझे उन्मत्त कर रहे हैं।’ श्रील कविराज गोस्वामीपाद श्रीमन्महाप्रभु की इस अलौकिक लीला का वर्णन कर संक्षिप्त फलश्रुति में लिखते हैं-

एवे यत कैल प्रभु अलौकिक लीला।  
के वणिते पारे ताहा महाप्रभुर खेला ॥  
संक्षेपे कहिया करि दिग्-दरशन।  
इहा जेइ शुने पाय कृष्णप्रेमधन ॥133 ॥

इस प्रेमरसमय अति-अद्भुत लीला श्रवण-कीर्तन की यह अपूर्व फलश्रुति है। प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु की अति सुगंभीर गंभीरा लीला के श्रवण कीर्तन से उनकी करुणा का अवदान राधादास्य अथवा मंजरी भावमय प्रेम लाभ कर साधक धन्य हो जाता है। इस विषय में कोई संशय नहीं है।

श्रीमन्महाप्रभु ने गम्भीरा के अति दुर्गम दिव्योन्माद सिन्धु में यथेष्ट रूप से डूबते-उबरते चित्त से जो सब लीलाएँ प्रकाश की है, उनसे प्रेम की चरमसीमा प्रदर्शित होती है। श्रील कविराज गोस्वामी पाद अन्त्य लीला के 15वें परिच्छेद के आरम्भ में इस अवधि के दौरान पुनः-पुनः घटने वाली प्रभु की तीन दशाओं में स्थिति की बात लिखते हैं—

एङ्गमते महाप्रभु रात्रि दिवसे।  
 आत्मस्फुर्ति नाहि रहे कृष्णप्रेमावेशे ॥  
 कभु भावे मग्न कभु अर्द्धवाहा स्फुर्ति।  
 कभु बाह्यस्फुर्ति-तिन रीते प्रभुर स्थिति ॥  
 स्नान दर्शन भोजन देहस्वभावे हय।  
 कुमारेर चाक जेन सतत फिरय ॥134 ॥

श्रील कविराज गोस्वामीपाद के इस वाक्य से पता चलता है कि इस समय महाप्रभु को इस जगत में अवस्थान करते हुए भी उन्हें बाह्य जगत अथवा देह-देहिकादि किसी विषय का अनुसंधान नहीं रहता था। वे सदा ही ब्रज की मधुर लीला रस में मग्न रहते थे। कभी-कभी अंतर्दशा में ब्रजलीला रस सिन्धु की तरंगों में उनका मनोमीन यथेष्ट संतरण सुख का विस्तार करता, उससे उनके बाह्य देह में जो सब अद्भुत सात्विक विकार प्रकाश पाते, भक्तवृन्द उन्हें देखकर उनकी अंतर्दशा का अनुभव प्राप्त करते थे। और फिर किसी समय किंचित बाह्य ज्ञान होता, अर्धबाह्य और अर्ध-अंतर्दशा में प्रभु कुछ भी प्रलाप करते और भक्त उसे श्रवण करते। पूर्ण बाह्य दशा में प्रभु का अंतर कृष्ण विरह ज्वाला से दग्ध हो जाता वे हाहाकार करते हुए रोदन करने लगते। उस समय श्रीस्वरूप दामोदर सुधामधुर लीलाकथा गायन से एवं श्रीरामानन्दराय मधुमय श्रीकृष्ण कथा रस कीर्तन से प्रभु को सान्त्वना दान करते। इस प्रकार किसी एक अतीन्द्रिय आनन्दमय राज्य के अलौकिक सुख-दुख अथवा मिलन-विरह के आस्वादन में प्रभु के दिन रात व्यतीत होते। कुम्हार का चक्का जैसे सतत घूमता रहता है उसी प्रकार स्नान भोजन आदि सभी कार्य बिना मनोयोग के ही सम्पन्न होते।

श्रीकृष्ण की तीन वांछाओं में एक वांछा है— “श्रीराधारानी द्वारा आस्वादित मेरा माधुर्य कैसा है। “अन्यावास्वादयो येनाद्भुत-मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।” श्रीकृष्ण असीम अनन्त माधुर्य के कल्लोलित सिन्धु हैं। भक्तगण अपने-अपने प्रेम के अनुरूप उनका माधुर्य आस्वादन करते हैं। एकमात्र श्रीराधारानी ही

अपने परम महान प्रेम के द्वारा श्रीकृष्ण के समग्र माधुर्य का आस्वादन करती हैं। यह हम पहले आलोचना कर चुके हैं। अपने माधुर्य आस्वादन पर लुब्ध श्रीकृष्ण इसीलिए श्रीराधा की भावकान्ति अंगीकार कर गौर होते हैं एवं श्रीराधा का विरह भाव अवलम्बन कर यथेष्ट रूप से अपने माधुर्य का आस्वादन करते हैं। इस माधुर्य आस्वादन से जो आनन्द अथवा सुख लाभ करते हैं, यही उनकी तृतीय वाञ्छा है।- “सौख्यंचास्या मदनुभवतः कीदृशम् वा” श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद श्रीचैतन्यचरितामृत में अन्त्य लीला के 15वें परिच्छेद से 29वें परिच्छेद तक श्रीकृष्ण की इन्हीं लोभनीय वाञ्छात्रय की परिपूर्ति का अति सरस मधुर एवं मर्म स्पर्शी भाषा में वर्णन करते हैं।

प्रभु एक दिन श्रीजगन्नाथ मन्दिर में श्रीजगन्नाथ दर्शन कर रहे थे। राधाभाव में तन्मय प्रभु श्रीजगन्नाथदेव को साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन रूप में ही देख रहे थे। सहसा श्रीब्रजेन्द्रनन्दन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह पाँच गुण एक ही समय में प्रभु की पाँचों इन्द्रियों के विषय हो गए एवं एक ही समय में प्रभु की पाँचों इन्द्रियाँ अपने स्वयं के माधुर्य आस्वादन के निमित्त प्रभु के मन को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करने लगीं। एक समय में पाँच ओर से आकर्षण के फलस्वरूप प्रभु का मन ज्ञानहारा हो गया, वे श्रीमन्दिर में ही विह्वल हो गए। भक्तगण बहुत यत्न से प्रभु को गम्भीरा में ले गए। विरहणी श्रीराधा के भाव में प्रभु स्वरूप रामानन्द के कण्ठ लगकर विलाप करने लगे। श्रीकृष्ण माधुर्य के प्रति श्रीराधारानी की एक संग पाँचों इन्द्रियाँ आकर्षित होने पर उन्होंने विशाखा के निकट जो विलाप किया था, प्रभु वही श्लोक पाठ कर विलाप करने लगे—

एकदिन करे प्रभु जगन्नाथ दर्शन।  
 जगन्नाथे देखे-साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन ॥  
 एकिवारे स्फुरे प्रभुर कृष्णोर पञ्चगुण।  
 पञ्चगुणे करे पञ्चेन्द्रिय आकर्षण ॥  
 एक मन पञ्चदिके पञ्चगुणे टाने।  
 टानाटानि प्रभुर मन हैल अगोयाने ॥  
 हेनकाले ईश्वरेर उपलभोग सरिला।  
 भक्तगण महाप्रभु के घरे लजा आइला ॥

स्वरूप रामानन्द एइ दुइजने लजा।  
 विलाप करेन दूँहार कण्ठेते घरिया॥  
 कृष्णेर वियोगे राधार उत्कण्ठित मन।  
 विशाखाके कहे आपन उत्कण्ठा कारण॥  
 सेइ श्लोक पढ़ि आपने करे मनस्ताप।  
 श्लोकेर अर्थ शुनाय दोंहाके करिया विलाप॥

सौन्दर्यामृतसिन्धुभङ्गललनाचित्ताद्रिसंप्लावकः,  
 कर्णानन्दिसनर्मरम्यवचनः कोटिन्दुशीताङ्गकः।  
 सौरभ्यामृतसंप्लवामृतजगत्पीयूषरम्याधरः  
 श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियान्यालि मे ॥135 ॥

(गोविन्दलीलामृत 8/3)

श्रीराधारानी विशाखा के प्रति कहती हैं- “हे सखि! जो सौन्दर्य के अमृत सिन्धु की तरंगों द्वारा ललनाओं के चित्त रूप पर्वत को डुबा देता है, जिसके परिहास रसमय रम्य वचन कर्ण-सुखद हैं, जिसका अंग कोटि चन्द्रमाओं की अपेक्षा अधिक सुशीतल है, जो अपने सौरभ्यामृत द्वारा जगत को डुबा देता है, जिसके अधर अमृत की तुलना में अधिक रमणीय हैं, वही गोपेन्द्रनन्दन बलपूर्वक मेरी पंचेन्द्रियों को आकर्षण कर रहा है।” सखी जिसके इन पाँच गुणों में से केवल एक गुण ही त्रिभुवन की रमणियों को उन्मत्त कर सकता है, उन्हीं गुणनिधि श्रीकृष्ण के पाँचों गुण एक संग मेरी पंचेन्द्रियों को आकर्षित कर रहे हैं, अब मैं क्या उपाय करूँ। सखी, उसका रूप देखने के लिए मेरे नयन पागल हैं, अंग स्पर्श लाभ के लिए त्वचा व्याकुल है, अंग गंध ग्रहण करने के लिए नासिका उन्मत्त है, अधरामृत आस्वादन के निमित्त रसना चंचल है, उसकी अमृत-मधुर वाणी श्रवण के लिए कर्ण अधीर हैं। किसी भी गुण का आकर्षण कम नहीं है। महाजनों के पदों में भी भाव व्यक्त होता है-

रूपे भरल दिठि, सोमरि परश मिठि, पुलक ना तेजइ अङ्ग।  
 मोहन मुरलीरवे, श्रुति परिपूरित, ना शुने आन परसङ्ग॥  
 सजनि! इथे कि करवि उपदेश।

कानु अनुरागे मोर, तनु मन जारल, ना सहे धरम भय लेश॥  
 नासिकाह से अङ्गेर, सौरभे उन्मत, वदन ना लय आन नाम।  
 नव नव गुणगने, वान्धल मझु मने, धरम रहब कोन ठाम॥

गृहपति तरजने, गुरुजन-गरजने, को-जाने उपजये हास।  
तहि एक मनोरम, पदि हये अनुरत, पूछत गोविन्ददास॥

उल्लिखित श्लोक पाठ कर महाप्रभु प्रलाप करने लगे—

कृष्ण-रूप-शब्द-स्पर्श, सौरभ्य अधररस, जार माधुर्य कहन ना जाय।  
देखि लोभि पञ्चजन, एक अश्व मोर मन, चढ़ि पञ्च पाँचदिके धाय॥  
सखि हे! शुन मोर दुःखेर कारण।

मोर पञ्चेन्द्रियगण, महालम्पट दस्युपन, सभे करे हरे परधन॥  
एक अश्व एकक्षणे, पाँच पाँचदिगे टाने, एक मन कोन दिगे याय?  
एककाले सभे टाने, गेल घोड़ार पराणे, एइ दुःख सहन ना याय॥136॥

श्रीराधारानी के भाव में महाप्रभु स्वरूप रामानन्द को प्रिय सखी मानकर कहते हैं, “सखी, श्रीकृष्ण के रूप, शब्द, स्पर्श, गंध और अधर रस इन सभी की ही माधुर्य शक्ति अति अनिर्वचनीय है! जिनका माधुर्य दर्शन कर मेरी पंचेन्द्रियाँ इस भाव से प्रलुब्ध होती है कि किसी की भी लालसा दमन करने की शक्ति मुझ में नहीं है। पाँच व्यक्ति एक घोड़े पर चढ़कर प्रबल वेग से पाँच भिन्न-भिन्न दिशाओं में उसे दौड़ाने की चेष्टा करें तो उस घोड़े की जो अवस्था होगी मेरी वही अवस्था हो रही है। सखी मेरे दुख का कारण तुमसे कहती हूँ, सुनो! मेरी पाँचों इन्द्रियाँ परधन लुब्ध हैं, वे दस्यु के समान प्रमाथी और बलवान हैं। एक संग एक ही समय में वे मेरे मन को पाँच दिशाओं में आकर्षित करती हैं। मेरे मन रूपी घोड़े के प्राण अब नहीं रहेंगे। यह असहनीय दुख मैं और नहीं सहन कर पाऊँगी। दूसरे क्षण ही प्रभु का भाव बदल गया, श्रीकृष्ण-माधुर्य की असाधारण आकर्षिणी शक्ति की बात मन में आई। तब कहने लगे—

इन्द्रिये ना करि रोष, इहासभार काँहा दोष, कृष्णरूपादि महा आकर्षण।

रूपादि पाँच-पाँचे टाने, गेल पाँचेर पराणे, मोर देहे ना रहे जीवन॥137॥

“सखी, मैं इन्द्रियों के प्रति रोष कर उन्हें वृथा ही दोष देती हूँ। श्रीकृष्ण के रूप, गंध, स्पर्श आदि की ऐसी ही महा-आकर्षिणी शक्ति है। उसी आकर्षिणी शक्ति के वशीभूत हो मेरे चित्त रूपी घोड़े को वे अपनी-अपनी ओर आकर्षित करती हैं। उसी द्वार आकर्षण से मेरी इन्द्रियों के प्राण गए। अतः मेरी इस देह में अब जीवन नहीं रहेगा। प्रभु श्रीकृष्ण के रूप आदि की प्रबल आकर्षिणी शक्ति की बात कहकर प्रलाप करने लगे।

कृष्णरूपामृतसिन्धु, ताहार तरङ्गबिन्दु, एक विन्दु जगत डुबाय ।  
 त्रिजगते यत नारी, तार चित्त उच्चगिरि, ताहा डुवाय आगे उठि धाय ॥  
 कृष्णोर वचन-माधुरी, नानारस-नर्मधारी, तार अन्याय कहन ना जाय ।  
 जगतेर नारीर काने, माधुरी गुणे वान्धि टाने, टानाटानि कानेर प्राण याय ॥  
 कृष्ण अङ्ग सुशीतल, कि कहिव तार बल, छटाय जिने कोटीन्दुचन्दन ।  
 सशैल नारीर वक्ष, ताहा आकर्षिते दक्ष, आकर्षये नारीगण-मन ॥  
 कृष्णाङ्ग सौरभ्यभर, मृगमद-मदहर, नीलोत्पलेर हरे गर्वधन ।  
 जगत-नारीर नासा, तार भितर करे वासा, नारीगणोर करे आकर्षण ॥  
 कृष्णोर अधरामृत, ताते कर्पूर मन्दस्मित, स्वमाधुर्ये हरे नारीर मन ।  
 छाडाय अन्यत्र लोभ, ना पाइले मन क्षोभ, ब्रजनारीगणोर मूलवन ॥  
 एत कहि गौरहरि, दु'जनेरकण्ठे धरि, कहे शुन स्वरूप रामराय ।  
 काहाँ करों काहाँ जाड, काहाँ गेले कृष्ण पाड, दोहे मोरे कह से उपाय ॥ 138 ॥

श्रीराधारानी ने श्रीकृष्ण के रूप, शब्द, स्पर्श आदि के माधुर्य के प्रति अपनी पंचेन्द्रियों के आकर्षण के विषय में जो श्लोक विशाखा के निकट पाठ किया था, महाप्रभु उसी श्लोक का पाठकर स्वरूप रामराय के निकट विलाप में उसका अर्थ प्रकाश करते हैं। श्रीकृष्ण रूप जैसे अमृत का कल्लोलित सिन्धु हैं। वह रूप दर्शक के नयन और मन में कोटि अमृत की स्वादुता का विस्तार करता है। दृष्टा के मन में आता है कि—

प्रति अंग कोन विधि निरमिल किसे ।

देखिते देखिते कत अमिया वरिषे ॥

(महाजन)

वह रूपसिन्धु अनन्त रस-तरंगों से सतत तरंगायित रहता है। उस सिन्धु की बात तो दूर उसकी एक बिन्दु से विश्व आप्लावित हो जाता है। विश्व की बात दूर, वह मदन, जो विश्व के नर-नारी को पारस्परिक रूप के प्रति मुग्ध कर आत्महारा कर देता है, वह मदन भी उसके हास्य की एक शूद्र तरंग से मूर्च्छित हो जाता है।

ढल ढल काँचा अंगेर लावणि अवनी बहिया जाय ।

ईषत हासिर तरंग हिलोले मदन मूर्च्छा पाय ॥

(महाजन)

इस क्षेत्र में रूप-मुग्धा रमणी की तो बात ही क्या है। समुद्र की उच्छलित तरंगों से पहले समतल भूमि प्लावित होती है और उसके बहुत बाद में पर्वत शृंखला प्लावित होती है। श्रीकृष्ण के रूपामृत सिन्धु का ऐसा विरुद्ध

स्वभाव है कि यह पहले पर्वत श्रृंखला को ही प्लावित कर देता है, रमणी-गणों का चित्त, कुल, शील, धैर्य, मर्यादा ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं के तुल्य हैं, किन्तु श्रीकृष्ण के सौन्दर्य सिन्धु का बिन्दु पहले उसे ही डुबा देता है। उसके प्रवाह में कुल, शील, धैर्य मर्यादा सब डूब जाता है। सखियाँ जाति, कुल, शील की बात स्मरण कर कहती हैं—

सेड़ कि आर कि आर बोल मोरे ।

जाति कुल शील दिया, ओ रूप निछनि लेया, पराणे वाञ्छिया थोव तारे ॥

देखिया ओ मुखछान्द, कान्दे पुनामिक चान्द, लाजधरे भेजाजा आगुनि ।

नयान कोणेर वाणे, हियार माझारे हाने, किवा दुटि भूरु नाचनि ॥

आइ आइ मल्लू मल्लू, कि रूप देखिया आइल्लू, काला-अङ्गे पडिछे विजलि ।

स्वरूपे दढाइल्लू मने- ए रूप यौवन सने, आपना साजाइयाँ दिव डालि ॥

कि खेने देखिल्लू तारै, ना जानि कि हैल मोरे, आठ प्रहर प्राण झुरे ।

बलराम दास भणे, ओ रूप देखिया कोन, पामरी रहिते पारे घरे ॥139 ॥

उसी प्रकार श्रीकृष्ण का परिहासमय वचन माधुर्य जिसमें नाना रसों की अभिव्यक्ति होती है, उसके अन्याय के विषय में क्या कहें। जो रसमय है, वह अन्याय किस प्रकार हो सकता है ?

ऐसा प्रश्न हो सकता है। यही परकीय भावमय गोपीप्रेम की विशेषता है, इसीलिए इस प्रेम के निकट कृष्ण माधुर्य का ऐसा आकर्षण है। महाजन भी इसकी प्रतिध्वनि करते हुए कहते हैं—

कत जे अमिया, प्रति वचने उगारइ, कुलवती मोहन मन्त ।

सो हिय लागि, रजनी दिन जारइ, उहु उहु जीउ करु अन्त ॥140 ॥

श्रीकृष्ण के प्रत्येक वाक्य से जाने कितना अमृत निकलता है, वह कुलवती गणों के लिए मोहन-मंत्र के तुल्य है। वह वाणी हृदय से लगकर अहर्निश दय को दग्ध करती है, देह में जैसे अब प्राण नहीं रहेंगे। महाप्रभु श्रीकृष्ण वाणी का अन्याय कहते हैं— श्रीकृष्ण वाणी विश्व की रमणियों के कान को माधुर्य रूपी रज्जु से बाँध कर खींचती है, इस खींच-तान से जैसे कान के जीवन का अंत हो जाता है।

सखि! ऐसी ही श्रीकृष्ण के अंगों की सुशीतलता है, उसकी शक्ति के विषय में क्या कहें; उसका लेशमात्र ही कोटि-कोटि चन्द्रमाओं और चंदन की शीतलता को पराभूत करता है। स्पर्श की लालसा से सभी की त्वक् (स्पर्शेन्द्रिय) को उन्मत्त कर अपनी ओर आकर्षित करता है। लघु अथवा



हलकी वस्तु को आकर्षण करना सहज है किन्तु विशाल शैल को आकर्षण करना सर्वथा ही असम्भव है। किन्तु श्रीकृष्ण के अंगों की शीतलता दो पर्वतों (स्तन मण्डल) के संग रमणी के हृदय को स्पर्श लालसा से अधीर कर आकर्षित करती है और उसके संग रमणी के मन को भी आकर्षित कर लेती है।

हे सखि! श्रीकृष्ण की अंगगंध की बात कहती हूँ सुन विश्व में जितने प्रकार के सुगन्धित द्रव्य हैं उनमें मृगमद अथवा कस्तूरी और नीलकमल की गंध अति मनोरम हैं। इनमें सुगन्ध का एक गर्व भी है। श्रीकृष्ण का अंग सौरभ इनके गर्व का हरण करता है। इस अंगगंध के निकट कोटि-कोटि मृगमद और नीलकमलों की गंध की क्या बिसात। और फिर जब तक मृगमद और नीलकमल के निकट रहते हैं तभी तक ही उसकी गंध प्राप्त होती है किन्तु श्रीकृष्ण अंगगंध रमणी की नासिका में प्रविष्ट हो वहीं बस जाती है। फिर नारी उस गंध के अतिरिक्त और कोई गंध प्राप्त नहीं करती। वह गंध केवल नासिका में वास नहीं करती, वह नारी को आकर्षित कर उसके निकट ले जाती है।

सखि! श्रीकृष्ण के अधररस की बात कहती हूँ। श्रीकृष्ण के अधर ही अमृत हैं; और फिर उस अमृत के संग मन्द हास्य रूप कर्पूर मिश्रित रहता है। वह अपने माधुर्य से नारी के मन का हरण कर लेता है। अन्य सब इतर-विषयों (वस्तुओं) का लोभ छुड़ाकर अपने में ही नारी के मन को तन्मय कर देता है। “इतररागविस्मरणम् नृणाम्।” (गोपीगीत)। श्रीकृष्ण का अधरामृत तो नरगणों को भी इतरराग विस्मृत करा देता है फिर नारीगणों की तो बात ही क्या। उस अधरामृत के अभाव में रमणीगणों का मन क्षुब्ध हो जाता है। गोपियों के अंतर के भाव और भाषा से यह सब पद रचित हैं। श्रीकृष्ण का अधरामृत ब्रज-रमणियों का मूल धन अथवा मुख्य कमनीय सम्पद है। रासलीला में श्रीकृष्ण की उपेक्षा वाणी श्रवण कर ब्रजरमणियों ने प्रार्थनाकी थी—

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेन  
हासावलो कलगीतज-हृच्छयाग्निम् ।  
नो चेद्वयं विरहजाग्न्यपयुक्तदेहा  
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥141॥

(भा० 10/2/35)

“हे कृष्ण! तुम्हारी सहास-कुटिल दृष्टि से एवं मधुर मुरलीरव से हमारे हृदय में जो कामाग्नि प्रज्वलित हुई है उसे तुम्हारे ही अधरामृत सिंचन से निर्वापित करो। हे सखे! यदि तुम ऐसा नहीं करते, तब हम तुम्हारा ध्यान करते हुए तुम्हारी विरह-अग्नि से दग्ध होकर तुम्हारे ही चरणों में उपस्थित हो जाएँगी। अर्थात् शीघ्र ही प्राण त्याग करेगी।” इस वाक्य से जाना जाता है कि श्रीकृष्ण अधरामृत ही उनकी मुख्य कमनीय सम्पद है।

इस प्रकार प्रलाप करते-करते प्रभु को बाह्य ज्ञान हुआ। स्वयं को श्रीकृष्णचैतन्य एवं स्वरूप और रामराय को पहचान पाए। विशाल विरह ज्वाला में हृदय जल उठा। व्याकुल प्राणों से स्वरूप रामानन्द के गले से लगकर दुख से रुदन करते हुए कहने लगे- “हे स्वरूप! हे रामराय! काहो करो काहाँ जाऊँ, काहाँ गेले कृष्ण पाऊँ, दोहें मोरे कह से उपाय ॥” श्रीकृष्ण की विरह वेदना प्रकाश के पक्ष में यह संक्षिप्त उक्ति विपुल मर्मभेदी है। इसके पीछे विप्रलम्भ-रससिन्धु का जो विशाल आलोड़न है वह मर्मी रसिकों को ही किंचित अनुभव गम्य है।

दिव्योन्माद लीला में श्रीमन्महाप्रभु अधिकांश समय अंतर्दशा में गोपी भाव में ही आविष्ट रहते। उद्यान देखते ही श्रीवृन्दावन की स्मृति चित्त में जागरित हो जाती, बाह्य-ज्ञान सम्पूर्ण रूप से तिरोहित (अदृश्य) हो जाता। लीला माधुर्य में ही मग्न हो जाते। श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं में रासलीला ही सर्वलीला-मुकुटमणि है। जिस लीला में रस-समूह है उसी का नाम रासलीला है। “रस” शब्द के उत्तर समूहार्थ में “ष्ण” प्रत्यय करने से रास शब्द निष्पन्न होता है। प्रभु उद्यान देखते ही रास की स्फूर्ति प्राप्त करते एवं रासलीला का श्लोक पाठ करते-करते श्रीकृष्ण को खोजने लगे।

एकदिन महाप्रभु समुद्रतीरे याइते । पुष्पेर उद्यान ताँहा देखि आचम्बिते ॥

वृन्दावन-भ्रमे ताँहा पशिल धाइया । प्रेमावेशे बुले ताहाँ कृष्ण अन्वेक्षिया ॥

रासे राधा लैया कृष्ण अन्तर्द्धान कैला । पाछे सखीगण यैछे चाहि बेड़इला ॥

सेइ भावावेशे प्रभु प्रति तरुलता । श्लोक पढ़ि-पढ़ि चाहि बुले यथा तथा ॥ 142 ॥

श्रीमद्भागवत में रासलीला के 30वें अध्याय में श्रीकृष्ण-विरह में कातर गोपियों का उन्माद वर्णित है। विरह संतप्त ब्रजगोपियाँ उन्मत्त की तरह आधी रात के समय वन-वन में श्रीकृष्ण को खोजती रहती थीं। अवश्य ही यह दिव्योन्माद उन्माद की तुलना में बहुत उच्चकोटि का है तभी विरह लीला

की तरह श्रीमन्महाप्रभु ने “रासोन्माद” के रस का भी आस्वादन किया एवं भक्तगणों को भी ब्रज-रस की उपासना के कौशल की शिक्षा दी।

गोपियों के आनुगत्य में अपने-अपने वासनामयी श्रीगुरु प्रदत्त सिद्ध देह में अभिमान स्थापित कर निरन्तर रास आदि लीलाओं का अनुध्यान का अभ्यास करते-करते विश्व के माया-प्रपंच का दृष्य साधक के नयनों से अदृश्य हो जाता है और उसके स्थान पर फूट उठता है महा सत्य वृन्दावन रासलीला की मधुमयी चित्रावली। साधक इस लीला में गोपी देह में यथायोग्य सेवाधिकार प्राप्त कर धन्य हो जाता है। वैष्णवी साधना की परासिद्धि इसी स्थान पर है। श्रीमन्महाप्रभु की गम्भीरा लीला विश्व के वृन्दावनीय मधुर-रसाश्रयी साधक गणों का साध्य-साधन का सुमेरु शिखर के समान आदर्श लक्ष्य स्थान है।

जो भी हो, रासलीला में श्रीकृष्ण के अर्न्तधान होने के बाद विलाप करते-करते गोपियों के वन-वन में श्रीकृष्ण अन्वेषण के विषय में श्रीमद्भागवत में वर्णित है- (10/30/4)

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विव्यिरुन्मत्तकवदवनादवम्।

पप्रच्छुराकाशवदन्तरं वहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥143 ॥

“सभी ब्रजरमणियाँ मिलकर उच्चस्वर में श्रीकृष्ण गुणगान करते-करते उन्मादिनी की तरह एक वन से दूसरे वन में श्रीकृष्ण को खोजने लगीं एवं जो आकाश के समान समस्त जीवों के भीतर-बाहर विराजित हैं उस पुरुष की बात वृक्षों के निकट जिज्ञासा करने लगीं।” वृक्ष-लताओं के निकट कृष्णवार्ता जिज्ञासा करते हुए महाप्रभु ने जिस क्रम में श्रीमद्भागवत के श्लोक उल्लेख किए हैं वे इस प्रकार हैं—

“चूत-प्रियाल-पनसासन-कोविदारजम्बवर्कविल्ववकुलाप्रकदम्बनीपाः।

ये हन्यो परार्थभवका यमुनोपकूलाः

शंसन्त कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥

कच्चित्तुलसी कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये।

सह त्वालिकुलेर्विभ्रदृष्टेस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके।

प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥144 ॥

(भा. 10/30/9, 7,8)

रास रजनी में श्रीकृष्ण अन्वेषण में तत्पर गोपियों वृक्ष लताओं से कहती हैं- “हे चूत, प्रियाल, पनस, असन, कोविदार, जम्बू, अर्क, बिल्व, बकुल, आम्र, कदम्ब, नीप, हे यमुना तीरवासी अन्य तरुगण! परोपकार के लिए ही तुम्हारा जन्म है, हम कृष्ण विरह में ज्ञानहारा हो गई हैं, कृष्ण किस पथ से गए है वह हमें बता दो।

हे तुलसि! हे कल्याणि! हे गोविन्द-चरण-प्रिये! जो भ्रमरों के संग विराजमान तुम्हें धारण करते हैं, तुम्हारे अति प्रिय अच्युत को क्या तुमने देखा है?

हे मालति! हे मल्लिके! जाति, यूथिके! पुष्प चयन के छल से कर-स्पर्श द्वारा तुम्हें प्रेम कर माधव कहाँ चले गए, उन्हें क्या तुमने देखा है? यह श्लोक पाठ कर स्वयं उसकी व्याख्या करने लगे—

आम्र पनस प्रियाल जम्बू कोविदार । तीर्थवासी सभे कर पर-उपकार ॥  
कृष्ण तोमार इहाँ आइला-पाइले दर्शन । कृष्णोर उद्देश्य कहि राखह जीवन ॥  
उत्तर ना पाइया पुन करे अनुमान । ए सब पुरुषजाति-कृष्णोर सखार समान ॥  
ए केन कहिवे कृष्णोर उद्देश आमाय ? एइ स्त्रीजाति लता आमार सखीर प्राय ॥  
अवश्य कहिवे कृष्णोर पाजाछे दर्शने । एत अनुमानि पुछे तुलस्यादि गणे ॥  
तुलसि मालति जुथि माधवि मल्लिके । तोमार प्रिय कृष्ण आइला तोमार अन्तिके ?  
तुमि सब हउ आमार सखीर समान । कृष्णोद्देश कहि सबे राखइ पराण ॥ 145 ॥

(चै.च.)

गोपीभाव के पूर्ण आवेश में प्रभु सभी कुछ भूलकर स्वयं को रासलीला में कृष्ण द्वारा परित्यक्ता गोपी ही समझ रहे हैं। नीलाचल में सिन्धु तटवर्ती उद्यान की बात भूलकर प्रभु वृन्दावन में श्रीकृष्ण अन्वेषण में ही पूर्णरूप से आविष्ट हैं। वृक्ष, लता, हरिणि प्रभृति से श्रीकृष्ण जिज्ञासा करते हैं, फिर कोई उत्तर ना पाकर श्रीकृष्ण विरह में सातिशय अधीर हो जाते हैं। अंत में सोचते हैं कि यमुना तट उनकी अतिप्रिय विहार भूमि है एक बार वहाँ जाकर देखता हूँ। यमुना के किनारे आते ही कदम्ब तले कोटि मनमथ विमोहन-मुरली वदन श्रीकृष्ण के दर्शन पाते हैं। अपार सौन्दर्य से विश्व के नयन-मनोहारी श्रीहरि के दर्शन करते ही प्रभु मूर्छित हो जाते हैं। उसी समय स्वरूप आदि सभी वहाँ पहुँच जाते हैं और पूर्ववत् प्रभु के श्रीअंग पर अष्टसात्विक विकारों को देखते हैं। पहले की तरह ही सभी मिलकर प्रभु में चेतना का संचार करते हैं, प्रभु उठकर चारों ओर देखने लगते हैं। उनके नयन जैसे व्याकुल होकर

उसी सौन्दर्य सिन्धु का ही अन्वेषण कर रहे हैं। कुछ भी नहीं देख पाए तो कहने लगे—

काहाँ गेल कृष्ण एखनि पाइलूँ दर्शन।  
ताँहार सौन्दर्ये मोर हरिल नेत्र मन॥  
पुन केने ना देखिये मुरलीवदन।  
ताँहार दर्शन लोभे भ्रमये नयन॥  
विशाखाके राधा यैछे श्लोक कहिला।  
सेइ श्लोक महाप्रभु पढ़िते लागिला॥

नवाम्बूदलसद्युतिर्नवतडिन्मनोज्ञाम्बरः  
सुचित्रमुरलीस्फुरच्छरदमन्दचन्द्रानन।  
मयूरदलभूषितः सुभगतारहारप्रभः  
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नेत्रस्पृहाम्॥146॥

(गोविन्द लीलामृतम्-8/4)

“हे सखि! नव जलधर के समान जिसकी सुन्दर अंगकान्ति है, नवविद्युत की अपेक्षा अधिक मनोहर जिसका वसन है, अकलंक शारदीय पूर्णचन्द्र के जैसा जिसका श्रीमुख है, जिसके केश-कलाप मयूरपिच्छ से भूषित हैं, तारों के जैसी उज्वल जिसके मुक्ताहार की कान्ति है- वही मदनमोहन श्रीकृष्ण मेरी नेत्र स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।”

इस श्लोक का पाठ कर प्रभु इसका अर्थ प्रकाश करते हैं और विलाप करने लगते हैं। श्रीमन्महाप्रभु की उक्ति और श्रील कविराज गोस्वामीपाद की मधुमयी लेखनी से भाव में भाषा में और माधुर्य में श्रीकृष्ण सौन्दर्य जैसे मूर्तिमान हो उठता है—

नवघन स्नग्धवर्ण, दलिताञ्जन चिकण, इन्दीवर निन्दि सुकोमल।  
जिनि उपमानगण, हरे सभार नेत्र-मन, कृष्णकान्ति परम प्रवल॥  
कह सखि! कि करि उपाय?

कृष्णाद्भुत बलाहक, मोर नेत्र चातक, ना देखि पियासे मरि जाय॥  
सौदामिनी पीताम्बर, स्थिर रहे निरन्तर, मुक्ताहार वक्पाँति भाल।  
इन्द्रधनु शिखि-पाखा, उपरे दियाछे देखा, आर धनु वैजन्ती माल॥  
मुरलीर कलध्वनि, मधुर तज्जर्न शुनि, वृन्दावने नाचे मौरचय।  
अकलङ्क पूर्णकल, लावण्य ज्योत्स्ना झलमल, चित्रचन्द्रेर जाहाते उदय॥

लीलामृत-वरिषणे, सिञ्चे चौहूवने, हेन मेघ जबे देखा दिल।  
दुहैव-झंझा-पवने, मेघ निल अन्यस्थाने, मरे चातक पीते ना पाइल ॥147 ॥  
(चै.च.)

श्रीमन्महाप्रभु इस पद में श्रीकृष्ण की नवजलधर के संग तुलना दे रहे हैं। प्रभु श्रीराधारानी के भाव में स्वरूप रामानन्द को ललिता-विशाखा सखी मानकर कहते हैं, “सखि! श्रीकृष्ण की अंगकान्ति नवजलधर के समान स्निग्ध है किन्तु जलधर में तो ऐसी चमक नहीं होती, तभी दलित-अंजन के समान कृष्णकान्ति अत्याधिक चमकदार है। और फिर नवजलधर की स्निग्धता है, दलित-अंजन की चमक है किन्तु इसमें कोमलता कहाँ है? तभी इन्दीवर की अपेक्षा अधिक सुकोमल है। सखी उपमा तो दी है किन्तु श्रीकृष्णकान्ति सभी उपमानों को जय कर लेती है।

“कुवलय नीलरतन दलितान्जन मेघपुंज जिनि वरण सुछन्द”

(गोविन्द दास)

कारण परम प्रबल श्रीकृष्णकान्ति सभी के नयन-मन का हरण कर लेती हैं- यह गुण किसी प्राकृत वस्तु में सम्भव ही नहीं। सखि! तब भी नवधन के संग कृष्णकान्ति का दृष्टान्त इस लिए दिया कि नवधन के संग इसका कुछ सादृश्य है। किन्तु सादृश्य भी अद्भुत है, तभी अद्भुत मेघ कहना ही समीचीन है।

कि रूप देखिलाम कालिन्दी कूले। अपरूप मेघ कदम्ब मूले ॥

अचला चपला मेघेरि गाय। मृगांक रहित शशांक भाय ॥

नचिछे मयूर जलद 'परि। अलिकूल आछे चाँदेर घेरि ॥

आर अपरूप कहिल नहे। यथा मेघ तथा वारि ना वहे ॥

हृदय आकाशे उदय करि। नयन युगले वहाय वारि ॥

हेन मने लय विजूरि हय। जड़ाइये थाकि मेघेर गाये ॥

ज्ञानदास कहे ना कह आन। ये कहिला धनि सेइ परमाण ॥

नयन युगल इस मेघ की वारि बिन्दु के पिपासु चातक हैं, इस मेघ की रूपामृत बिन्दु पान न कर पाने से तृष्णा से मरे जा रहे हैं। पीताम्बर ही इस मेघ की विद्युत है। गले में मुक्तामाला बक-पंक्ति के समान शोभायमान है। इस अद्भुत मेघ में दो इन्द्रधनुष है एक मेघ के ऊपर मयूर-पुच्छ का मुकुट है।

प्रचुर पुरन्दरघनुरनुरजितमेदूरमुदिरसुवेशम्”

(श्रीजयदेव)

और दूसरी वैजयन्ती माला है। मधुर मुरली ध्वनि ही इस मेघ की गर्जन है, जिसे श्रवण कर वृन्दावन के मयूर उन्मत्त हो नृत्य करने लगते हैं। पूर्णिमा की रात में आकाश में उदित नवमेघ के ऊपर कभी-कभी पूर्णचन्द्र देखा जाता है, मेरे श्याम जलधर के ऊपर पूर्णचन्द्र ही उसका मुख है। अद्भुत मेघ हैं अतः मुख भी अद्भुत है, उसमें कोई कलंक नहीं है एवं उससे अपूर्व लावण्य-ज्योत्स्ना झलमल करती है। इस जगत में जहाँ मेघ उदित होता है वहीं वर्षा भी होती है, यह श्याम-जलधर चौदह लोकों में लीलामृत वर्षण कर सभी को आप्यायित करता है। अरे सखी, कितने सौभाग्य से यह श्याम जलधर मेरे भाग्याकाश में उदित हुआ था, किन्तु मेरा दुर्दैव पवन उसे बहा ले गया। मेरे नयन चातक पिपासा से मरे जा रहे हैं, सखी मैं क्या करूँ बता।”

प्रभु यह बात कहते-कहते श्रीकृष्ण विरह में विह्वल हो गए। स्वरूप और रामानन्द की चेष्टा से किञ्चित् बाह्य ज्ञान हुआ तो प्रेम से गद्गद् कण्ठ से श्रीरामानन्द के निकट कुछ कृष्ण कथा सुननी चाही। रामानन्दराय ने प्रभु का मन जान कर रासलीला में श्रीकृष्ण की उपेक्षा वाणी सुनकर विरहिणी गोपी द्वारा कहे एक श्लोक का पाठ किया। प्रभु ने श्लोक श्रवण से उत्पन्न हर्ष और विरह से उत्पन्न विषाद में स्वयं श्लोक की व्याख्या की।

पुन कहे-शय हाय, पढ़ पढ़ रामराय, कहे प्रभु गद्गद् आख्याने।  
रामानन्द पड़े श्लोक, शुनि प्रभुर हर्ष-शोक, आपने प्रभु करेन व्याख्यान ॥

भा. 10/29/39) से—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।

दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणञ्च भवाम दास्याः ॥ 148 ॥

“हे कृष्ण! कुण्डलों की दीप्ति से शोभायमान तुम्हारा गण्डस्थल, अधर सुधा समन्वित (मिला हुआ) हास्य, कुटिल दृष्टि और चूर्ण-कुन्तलों से आवृत तुम्हारा मुख देखकर एवं अभय प्रद तुम्हारी बाहु युगल और कमला को सुख प्रदान करने वाला तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हम तुम्हारी दासी हो गई हैं। महाप्रभु इस श्लोक की गोपी भाव के अनुरूप अपूर्व व्याख्या करते हैं—

कृष्ण जिति पद्मचान्द, पातियाछे मुख-फान्द, ताते अधर मधुस्मितचार ।

ब्रजनारी आसि-आसि, फान्दे पड़ि हय दासी, छाड़ि निज पति-घरद्वार ॥

वान्धव! कृष्ण करे व्याधेर आचार ।

नाहि गणे धर्माधर्म, हरे नारी-मृगी-मर्म, करे नाना उपाय ताँहार ॥

गण्डस्थल झलमल नाचे मकर कुण्डल, सेइ नृत्ये हरे नारीचय ।  
 सस्मित कटाक्ष-वाणे, ता सभार हृदये हाने, नारीवधे नाहि किछु भय ॥  
 अति उच्च सुविस्तार, लक्ष्मी श्रीवत्स अलङ्कार, कृष्णे ये डाकातिया वक्ष ।  
 ब्रजदेवी लक्ष लक्ष, ता सभार मनोवक्ष, हरि दासी करिवारे दक्ष ॥  
 सुवलित दीर्घार्गल, कृष्णभुज-युगल, भुज नहे-कृष्णासर्प काय ।  
 दुइ शैलछिद्रे पैशे, नारीर हृदय दंशे, मरे नारी से विषज्वालाय ॥  
 कृष्ण-करपद-तल, कोटिचन्द्र-सुशीतल, जिति कर्पूर वेनामूल चन्दन ।  
 एकबार यारे स्पर्शे, स्मर ज्वालाविष नाशे, याँ स्पर्शे लुब्ध नारीर मन ॥ 149 ॥

(चै.च.)

प्रभु श्रीरामानन्दराय को सम्बोधित कर कहते हैं, “हे मेरे प्राण-बन्धु! तुम्हें मन की बात बताता हूँ सुनो। शिकारी जैसे हिरण को पकड़ने के लिए वन में जाल बिछा कर उस पर चारा अथवा लोभनीय आहार रख देता है, हिरण अपने लोभ को वश में नहीं रख पाता और स्वयं ही उस जाल में आकर फंस जाता है; श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार गोपी रूप हरिणी को आबद्ध करने के लिए पद्म और चन्द्र की शोभा को भी जय करने अपने मुख रूप जाल को बिछा कर उसमें अधरसुधा और मृदुमंद हास्य रूप चारा रख देता है।

अनुरूप महाजन पद—

“सखि! केन गेलाम यमुनार जले ।  
 नंदेर दुलाल चाँद, पातियाछे मूखफाँद,  
 व्याधछले कदम्बेर तले ॥  
 दिये हास्य सूधाचार, अंग छटा आठा तार,  
 आँखि पाखी ताहाते पड़िल ।  
 मनमृगी हेनकाले पड़िल रूपेर जाले,  
 शून्य देह पिंजर रहिल ॥”

गोपियाँ हरिणी के समान अपना लोभ सम्वरण नहीं कर पातीं और पति, स्वजन, घर, द्वार सब छोड़कर स्वयं जाल में फंस कर उसकी दासियाँ बन जाती हैं। यदि कहो कि गोपियाँ जब जानती हैं कि कृष्ण व्याध है, तब स्वेच्छा से वे उसकी दासी बनने गई क्यों? इसके उत्तर में कहती हैं कि उसकी दासी हो जाने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई उपाय नहीं है, कारण मणिमय, नृत्यशील मकर-कुण्डलों की प्रभा से दीप्त उसके झलमल गण्ड-स्थल की शोभा नारीगण के मन का हरण कर लेती है। सहास्य कटाक्ष वाण से वह उनके हृदय को घायल कर देता है। उसे नारी वध का कोई भय नहीं है। अति



उच्च एवं सुविशाल नीलमणि की चट्टान की अपेक्षा अधिक सुन्दर है जो रमादेवी, श्रीवत्स चिह्न एवं कौस्तुभ आदि अलंकार से शोभित है उसका वह वक्ष दस्यु के समान लक्ष-लक्ष ब्रजबालाओं के मन और हृदय को चुरा कर बलपूर्वक उन्हें दासी बना लेने में अति सुदक्ष है। उसकी बाहू-युगल अत्यन्त बलशाली हैं, दीर्घ हैं (आजानुलम्बित) और अर्गल के समान हैं। वे भुजाएँ नहीं- जैसे कृष्ण-चर्म वाले सर्प हैं। सर्प का स्वभाव है दंशन कर शरीर में विष उड़ेल देना एवं विष ज्वाला से जर्जरित कर मार डालना। श्रीकृष्ण के दो भुजा रूपी सर्प नारी के हृदय में प्रवेश कर नारी के दो ऊँचे एवं सुपीन वक्षोजद्वय के संधिस्थल में प्रविष्ट हो दंशन कर लेते हैं एवं उसके हृदय में स्मर-विष उड़ेल देते हैं। रमणियाँ उस विरह-विष की ज्वाला से अहोरात्र छट-पट करती रहती हैं। इस स्मर विष ज्वाला के प्रशमन का एकमात्र उपाय है रमणी के हृदय पर श्रीकृष्ण के करतल का स्पर्श।

जनश्रुति है कि जो सर्प दंशन कर विष उड़ेल देता है, साँप को ओझा मंत्रों के बल से उसी सर्प को आकर्षित कर घाव पर पुनः दंशन कराता है और वह सर्प विष बाहर खींच लेता है। श्रीकृष्ण के भुज-सर्प के विषय में यह जनश्रुति अति सत्य है। चन्द्र, कर्पूर, बेनामूल, चंदन प्रभृति जितने भी ज्वालानाशक पदार्थ विश्व में हैं, श्रीकृष्ण के कर-पद तल उनसे कोटि-कोटि गुणा अधिक सुशीतल हैं। इनके स्पर्श मात्र से ही रमणी गणों की स्मर-विष ज्वाला प्रशमित हो जाती है। इसीलिए उनके स्पर्श के लिए नारीगण का मन सतत प्रलुब्ध रहता है।

गोपियों के महाभाव सिन्धु से उथित (उत्पन्न) यह श्लोक श्रीकृष्ण के अपार सौन्दर्य-माधुर्य-सुधारस का बोधक है। श्रीकृष्ण के कोटिचन्द्र सुशीतल कर-पद तल की महिमा अति अद्भुत है, जिनके स्पर्शमात्र से ही गोपियों की स्मरविष ज्वाला प्रशमित हो जाती है। विश्व मानव भी संसार रूपी सर्प की कामना-वासना रूपी विष की निदारूण ज्वाला से अनादिकाल से दग्ध हो रहा है। वह श्रीकृष्ण भजन के द्वारा ही अनायास ही इस संसार-सर्प की कामना रूपी विष ज्वाला से परित्राण लाभ कर श्रीकृष्ण के सेवामृत रसास्वादन से चिरकाल के लिए धन्य हो सकता है।

एतेक एतेक प्रलाप करि, प्रेमावेशे गौरहरि, एइ अर्थे पढ़ि एक श्लोक।  
जेइ श्लोक पढ़ि राधा, विशाखाके कहे राधा, उघाड़िया हृदयेर शोक॥

(चै.च.)

हरिणमणिकवाटिकाप्रततहारिवक्षस्थलः  
 स्मरार्त्तरुणीमनः कलूषहन्तदोरर्गलः ।  
 सुधांशुहरिचन्दनोत्पलसिताभृशीताङ्गकः  
 स मे मदनमोहनः सखि! तनोति वक्षःस्पृहाम् ॥ 150 ॥

(गोविन्दलीलामृतम्-8/7)

श्रीराधारानी विशाखा से कहती है- “हे सखि! जिसका वक्षस्थल विस्तीर्ण इन्द्रनीलमणि की खान के समान मनोहर है, जिसकी अर्गल के समान बाहु-युगल मदन-पीड़िता युवतियों के अन्तर-ताप को नष्ट करने में समर्थ हैं एवं चन्द्र, चंदन, कमल एवं कर्पूर की अपेक्षा अधिक सुशीतल जिसका अंग है- वही मदनमोहन मेरी वक्षःस्थल की स्पृहा का विस्तार कर रहा है। प्रभु ने कहा, ‘हाय मैंने अभी कृष्ण को पाया था और अपने दुर्दैववश तुरन्त खो बैठा।’ कृष्ण का स्वभाव अति चंचल है एक स्थान पर नहीं रूकते, दर्शन देकर मन हरण करते हैं और तुरन्त छिप जाते हैं।” प्रभु स्वरूप से कहते हैं- ‘स्वरूप! ऐसा एक गीत गाओ जो मेरे विरह दुख का अंत कर दे। प्रभु की बात सुनकर स्वरूप गोसाँई अति मधुर स्वर में गीतगोविन्द का एक पद गाकर प्रभु को सुनाने लगे।

सञ्चरधर-सुधामधुरध्वनि- मुखरित-मोहनवंशम् ।  
 वलित-दृगञ्चल-चञ्चल-मौलि- कपोल-विलोल-वतंसम् ॥  
 रासे हरिमिह विहित-विलासम् ।  
 स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ध्रुवम् ॥  
 चन्द्रक-चाक-मयुरशिखण्डक-मण्डल-वलयित-केशम् ।  
 प्रचुर-पुरन्दर-धनुरनुरजित- मेदुर-मुदिर-सूवेशम् ॥  
 गोपकदम्ब-नितम्बवती- मुखचुम्बन-लम्बित-लोभम् ।  
 बन्धुजीव-मधुराधर- पल्लवमुल्लसित-स्मितशोभम् ॥  
 विपुल-पुलकभुज-पल्लव-वलयित-वल्लव-युवति-सहस्रम् ।  
 कर-चरणोरसि-मणिगण-भूषण-किरण-विभिन्न-तमिस्रम् ॥  
 जलद-पटल-बलदिन्दु-विनिन्दक-चन्दन तिलक-ललाटम् ।  
 पीन-पयोधर-परिसर- मर्दन-निर्दय-हृदय-कवाटम् ॥  
 मणिमय-मकर-मनोहर-कुण्डल-मण्डित-गण्डमुदारम् ।  
 पीतवसनमनुगत-मुनि-मनुज -सुरासुर-वर-परिवारम् ॥  
 विशद-कदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं समयन्तम् ।  
 मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥

श्रीजयदेव-भणितमति-सुन्दर- मोहन-मधुरिपु-रूपम् ।

हरिचरण-स्मरणं प्रति संप्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥151॥

श्रीजयदेव द्वारा वर्णित वसन्त-रास में श्रीकृष्ण जिस भाव से अन्यान्य गोपियों के संग विहार कर रहे थे, उसी भाव से श्रीराधा के संग भी विहार कर रहे थे; यह देखकर श्रीराधारानी मानिनी होकर रास-स्थली छोड़कर चली गई एवं एक लताकुंज में प्रवेशकर दीन की तरह सखी के निकट अपने मन की गोपित बात कहने लगीं। सखि ! जिसके अधर-पल्लवों की फूँक से सुधामधुर वंशी मोहन सुर से बजने लगी थी, मैंने अपने कानों से सुनी थी, जिसने तिरछी नयनों के कटाक्ष से मेरी ओर देखा था, तब उसके मस्तक के थोड़ा हिलने से कानों के कुण्डल कपोलों पर आन्दोलित हो गए थे- वही चेहरा मेरे मन में बस गया है। जिसने रास में विविध भावों से विहार किया था, कितने परिहास रस का विस्तार किया था- मेरा मन उसे ही स्मरण करता है जिसकी केश-राशि में परिशोभित अर्धचन्द्राकार मयूर-पंख को देखकर ऐसा लगता था मानों नवमेघ में इन्द्रधनुष शोभा पा रहा है। जिसके मुस्कुराते हुए अधर-पल्लव गोपवधुओं के मुख चुम्बन के प्रति प्रलुब्ध थे, बंधूक कुसुम के समान अधर मृदु हास्य से उल्लसित थे। जिसके विपुल पुलकित भुज-युगल सहस्र-सहस्र गोपवधुओं को आलिंगन करने के लिए तत्पर थी। जिसके कर, चरण और वक्ष में शोभित मणियों की प्रभा से अंधकार विनष्ट हो जाता है। जिसके ललाट-फलक का चंदन तिलक मेघमाला से वेष्टित चन्द्र की शोभा की अपेक्षा अधिक समुज्ज्वल था। जिसकी दृढ़ और सुडौल हृदय-कपाट (वक्ष) रमणियों के पीन पयोधरों के मर्दन में अति निर्दय है। मणिमय मनोहर मकर-कुण्डलों से जिसके कपोल परिशोभित थे। मुनि, मानव, देव, असुर की पत्नियों के मन को मोहने वाला पीताम्बरधारी रमणियों की मनोवांछा पूर्ण करने में परम उदार है। कुसुम शोभित कदम्ब वृक्ष के नीचे मिलकर जो प्रेम-कलह से उद्भूत क्लेषादि को जो चाटु-वाक्यों द्वारा प्रशमित करता है एवं अनंग-तरंगायित दृष्टि और मन के द्वारा जो मेरे चित्त का विनोदन करता है- मैं उस प्राण-मनोहारी श्रीहरि को कुछ भी करके भूल नहीं पा रही।  
स्वरूपगोसाजि जवे एड़ पद गाइल। उठि प्रेमावेशे प्रभु नाचिते लागिल ॥  
अष्टसात्त्विक अङ्गे प्रकट हइल। हर्षादि व्यभिचारी सब उथलिल ॥

भावोदय भावसन्धि भावशावल्य । भावे भावे महायुद्ध-सभार प्रावल्य ॥  
एकेक पद पुनःपुनः कराय गायन । पुनःपुनः आस्वादये बाढ़ये नर्तन ॥ 152 ॥

(चै.च.)

महाप्रभु की सान्त्वना के लिए श्रीस्वरूप दामोदर ने जो श्रीगीतगोविन्द के पद का पाठ किया, वह श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य और लीला रस से भरपूर है। और फिर “संगीत में गन्धर्व के समान” श्रीस्वरूप दामोदर के मधुकण्ठ से पद श्रवण कर भाव-निधि महाप्रभु का भावसिन्धु उच्छलित हो उठा। उन्होंने प्रेमावेश में नृत्य आरम्भ कर दिया। प्रभु के चित्त में अनन्त माधुर्यरस की तरंगे उठने लगीं। हर्ष आदि, व्यभिचारी, भावोदय, भाव-सन्धि, भाव-शावल्य प्रभृति के संघर्ष से जैसे उनके चित्त में भाव-भाव में महारण होने लगा। प्रभु के अंगों में अद्भुत अष्ट-सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। प्रभु एक-एक पद स्वरूप से पुनः-पुनः गान करवाने लगे। प्रभु का आस्वादन और आनन्द दर्शन कर स्वरूप भी प्राण उड़ेल कर पदों का पुनः-पुनः गायन करने लगे। प्रभु और अधिक मत्त होकर नृत्य करने लगे। प्रभु का नृत्य-आवेश दर्शन कर स्वरूप गोसाँई ने पद गायन समाप्त कर दिया। प्रभु बार-बार आवेश में भरकर ‘बोल बोल’ कहने लगे किन्तु प्रभु का परिश्रम दर्शन कर स्वरूप ने और गायन नहीं किया। प्रभु आवेश में जितना “बोल-बोल” कहते, चारों ओर खड़े भक्तवृन्द समवेत कण्ठ से हरि ध्वनि करने लगते। रामानन्द राय ने प्रभु को स्वस्थ कर बैठाया, वीजन आदि के द्वारा प्रभु को श्रम से राहत दिलाई। उसके बाद प्रभु को समुद्र स्नान कर घर ले आकर भोजन और विश्राम करवाया। श्रीमत् रूपगोस्वामी पाद स्वरचित श्रीचैतन्य-अष्टक में इस लीला का वर्णन करते हैं—

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालिकलनया  
मूहर्वृन्दावण्यस्मरणजनित- प्रेमविवशः ।  
क्वचित् कृष्णावृत्तिप्रचलरसनो भक्तिरसिकः  
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यतिपदम् ॥ 153 ॥

‘किसी समय समुद्र के किनारे उपवन श्रेणी के दर्शन कर वृन्दावन स्मरण जनित प्रेमावेश से जो विवश हो गए थे एवं भक्तिरस में डूबे चित्त से जो पुनः-पुनः ‘हा कृष्ण’ कहकर जो आर्तनाद कर रहे थे, वही श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे नयन गोचर होंगे?’ इन सब लीलाओं से प्रभु की प्रकृष्ट भाव से तीन-वांछाओं की परिपूर्ति जानी जाती है। इसमें “येनाद्भूत मधुरिमा

कीदृशो वा मदीयः” “कैछन मोर मधुरिमा” श्रीकृष्णमाधुर्य का यह आस्वादन कार्य ही मुख्य रूप से प्रदर्शित होता है। श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्यलीला के 14वें परिच्छेद में प्रभु का देह रूप गृहत्याग कर मन योगी का इन्द्ररूप शिष्यों के संग वृन्दावन प्रस्थान एवं शिष्यों द्वारा गोपी-अवशिष्ट श्रीकृष्ण के रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श (इन पंचगुण) रूपी भिक्षा का आस्वादन वर्णित है। इसके फल स्वरूप प्रभु में अति आश्चर्यमय अस्थि-सन्धि वियोग अनुभाव प्रदर्शित होता है। 15वें अध्याय में श्रीकृष्ण के पंचगुणों से राधाभाव में अविष्ट प्रभु की पाँचों इन्द्रियों का युगपत आकर्षण एवं सिन्धु तट पर स्थित उद्यान में रासलीला के स्फुरण में नेत्रयुगल का अति आश्चर्यमय रूपामृत आस्वादन वर्णित है। इस समय 16वें अध्याय में वर्णित प्रभु की रसनेन्द्रियों का श्रीकृष्ण अधरामृत आस्वादन प्रदर्शित है।

शेष लीला में प्रभु हर समय ही प्रेम विह्वल दशा में अवस्थान करते। एक दिन ऐसी ही प्रेम-विवश दशा में श्रीजगन्नाथ दर्शन को गए। सिंह-द्वार पर द्वारपाल ने प्रभु के चरणों की वन्दना की। प्रभु विकल भाव से उसका हाथ पकड़कर कहने लगे- ‘सखे! मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्ण कहाँ है, उनके दर्शन कराओ। द्वारपाल ने प्रभु का विह्वल भाव दर्शन कर कहा- ‘ब्रजेन्द्रनन्दन यहीं हैं, आइए आपको उनके दर्शन करवाता हूँ।’ यह कहकर प्रभु का हाथ पकड़ कर प्रभु को श्रीजगमोहन (आंगन) में ले जाकर श्रीजगन्नाथदेव को दिखा कहने लगा- यह देखिए, आपके प्राणनाथ, नयनभर कर इनके दर्शन कीजिए। प्रभु ने गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर सतृष्ण-नयनों से दर्शन किए तो श्रीजगन्नाथदेव साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन मुरलीधारी रूप में उनके नयन गोचर हुए। प्रभु के नयन मन श्रीकृष्ण के सौन्दर्यामृत सिन्धु में मग्न हो गए। प्रभु की इस दिन की लीला का श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी अपने श्रीचैतन्यस्तव-कल्पतरु में वर्णन करते हैं (7)–

क्व मे कान्तः कृष्णत्वरितमह तं लोकय सखे  
त्वमेवेति द्वाराधिपमभिदधन्नुन्माद हैव।  
द्रुतं गच्छ द्रष्टुंप्रियमितितदुक्तेन धृततद्  
भुजान्तो गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥154 ॥

अर्थात् “एक बार श्रीकृष्ण विरह-विह्वल श्रीगौरांगदेव सिंहद्वार के द्वारपाल को पकड़कर उन्मत्त की तरह अतिव्याकुल भाव से कहने लगे, “सखे, मेरे प्राणकान्त श्रीकृष्ण कहाँ हैं तुम उनके दर्शन करवाओ।” द्वारपाल ने कहा-

“श्रीकृष्ण दर्शन करना चाहते हैं तो शीघ्र आइए”- यह कहकर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें श्रीमन्दिर के भीतर ले गया- वही भावाक्रान्त श्रीगौरांग मेरे हृदय में उदित होकर मुझे प्रमत्त कर रहे हैं।”

प्रभु प्रेमाविष्ट हो श्रीकृष्ण दर्शन कर रहे थे, उसी अवसर पर श्रीजगन्नाथदेव को गोपालवल्लभ भोग लगने लगा, शंख-घंटा आदि वाद्ययंत्रों के संग आरती होने लगी। भोग उतरने पर जगन्नाथ के सेवकगण माला-प्रसाद लेकर प्रभु के निकट आए, प्रभु के कण्ठ में माला पहनाई और प्रभु के हाथ में प्रसाद दिया। अत्याधिक मूल्यवान् उत्कृष्ट प्रसाद, आस्वादन तो दूर की बात है उसकी गंध से ही मन मत्त हो गया। सेवक ने प्रभु से किंचित प्रसाद सेवन का अनुरोध किया तो प्रभु ने किंचित प्रसाद ग्रहण कर अवशिष्ट गोविन्द के आंचल में बांध लिया। प्रसाद की कोटि अमृत की अपेक्षा अधिक स्वादुता अनुभव कर प्रभु चमत्कृत हो गए। सर्वांग पुलकित हो गया और नयनों से अश्रुधारा बहने लगी। प्रभु चिन्तन करने लगे कि इस द्रव्य में ऐसी लोकागीत गंध और आस्वादन कहाँ से आया? निश्चय ही इसमें श्रीकृष्ण के अधरामृत का स्पर्श हुआ है, ऐसा सोच कर प्रभु प्रेमाविष्ट हो गए। तब श्रीजगन्नाथदेव के सेवकों को देख प्रभु ने प्रेमावेश का संवरण कर लिया एवं पुनः-पुनः “सुकृतिलभ्य फेलालव” कहने लगे। सेवकों ने प्रश्न किया- “प्रभु! इसका अर्थ क्या है?”

प्रभु कहे-एइ ये दिले कृष्णाधरामृत।  
 ब्रह्मादि दुर्लभ एइ-निन्दये अमृत॥  
 कृष्णे जे भुक्तशेष, तारै 'फेला' नाम।  
 तार एक लव पाय, सेइ भाग्यवान्॥  
 सामान्य भाग्य हैते तार प्राप्ति नाहि हय।  
 कृष्णे याते पूर्ण कृपा, से-इ ताहा पाय॥  
 'सुकृति' शब्दे कहे-कृष्णाकृपाहेतु पुण्य।  
 सेइ जार हय, फेला पाय से-इ धन्य॥155॥

श्रीजगन्नाथ के सभी सेवक महाप्रसाद निष्ठ थे, प्रभु के मुख से महाप्रसाद की महिमा श्रवण कर उन्होंने अतिशय आनन्द लाभ किया। प्रभु ने गम्भीरा लौटकर मध्याह्न-क्रिया आदि को पूर्ण कर महाप्रसाद सेवन किया। सारा दिन कृष्ण-अधरामृत का सघन आवेश रहा। संध्या के समय रोज की तरह भक्त-वृन्द तारों के समान गौर शशि को घेर कर बैठ गए। कृष्णकथा रस की

धारा बह निकली। प्रभु के इंगित पर गोविन्द महाप्रसाद ले आया। प्रभु ने पुरी भारती को किंचित प्रसाद प्रेरण (निवेदन) किया। स्वरूप, रामानन्द, सार्वभौम आदि सभी प्रमुख भक्तों में प्रसाद वितरण करवा दिया। प्रसाद के सौरभ एवं अलौकिक आस्वादन ने सभी को चमत्कृत कर दिया। सभी के निकट प्रभु ने प्रसाद के इस अलौकिक आस्वादन का हेतु व्यक्त किया—

प्रभु कहे-एइसब प्राकृत द्रव्य। ऐक्ष्व कर्पूर मरिच एलात्रि लवङ्ग गव्य ॥  
रसवास गुडत्वक्-आदि जत सब। प्राकृत वस्तुर स्वादु सभार अनुभव ॥  
सेइ द्रव्येर एइ स्वादु गन्ध लोकातीत। आस्वाद करिया देख सभार प्रतीत ॥  
आस्वाद दूरे रह, जार गन्धेमातेमन। आपना विनु अन्य माधुर्य कराय विस्मरण ॥  
ताते एइ द्रव्ये कृष्णाधरस्पर्श हैल। अधरेर गुण सब इहाते सञ्चारिल ॥  
अलौकिक गन्ध स्वादु-अन्यविस्मरण। महामादक हय-एइ कृष्णाधरेर गुण ॥  
अनेक सुकृते इहार हैजाछे सम्प्राप्ति। सभेइ आस्वाद कर करि महाभक्ति ॥  
हरिध्वनि करि सबे कैल आस्वादन। आस्वादिते प्रेमे मत्त हैल सभार मन ॥156 ॥

साधारण भाव से भोजन-द्रव्य के संग जो श्रीकृष्ण-अधरामृत मिश्रित होता है, भक्त-वृन्द उसी का आस्वादन करते हैं। गोपियाँ मधुर भाव में साक्षात् श्रीकृष्ण-अधरामृत का ही आस्वादन करती हैं। सभी भक्तों के घर चले जाने पर प्रभु ने गोपी-भाव से श्रीकृष्ण-अधरामृत आस्वादन की वार्ता सुननी चाही तो श्रीरामानन्दराय ने गोपी-गीत के श्लोक का पाठ किया—

सुरतवर्द्धनं शोकनाशनं, स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम्।

इतररागविस्मरणं नृणां, वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥157 ॥

“हे वीर, तुम्हारा यह अधरामृत प्रेम विशेषमय है- सम्भोग इच्छा का वर्धनकारी है, तुम्हारे अप्राप्ति जनक शोक को नष्ट करने वाला है, जो वेणु वादन द्वारा सुष्ठु रूप से चुम्बित है और जो अन्य आसक्तियों को भुला देने वाला है- तुम्हारा वही अधरामृत हमें वितरण करो।” महाप्रभु ने यह श्लोक श्रवण कर परम आनन्द लाभ किया एवं श्रीकृष्ण अधरामृत के प्रति श्रीराधा की जिह्वा-स्पृहा-विस्तार का उत्कण्ठा श्लोक पाठ करने लगे—

व्रजातुलकुलाङ्गने तररसालितृष्णाहरः

प्रदीव्यधरामृतः सुकृतिलभ्यफेलालवः।

सुधाजिदहिवल्लिकासुदलवीटिकाचर्चितः

स मे मदनमोहनः सखि तनोति जिह्वास्पृहाम् ॥158 ॥

“अपने अधरामृत द्वारा जो अतुलनीय ब्रजांगनागणों की अन्य रस सम्बन्धित तृष्णा का हरण करते हैं, जिसका अधरामृत प्रकृष्ट रूप दीप्तिशाली है, जिसका फेलालव सुकृतिलभ्य है, जिसका चर्वित ताम्बूल सुधा को भी जय करता है- हे सखि! वही मदनमोहन मेरी जिह्वा की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।” भावाविष्ट दशा में प्रभु प्रलाप करते हुए इन दो श्लोकों का अर्थ प्रकाश करने लगे।

तनु-मन करे क्षोभ, बाढाय सूरत-लोभ, हर्ष-शोकादि भाव विनाशय।  
पासराय अन्यरस, जगत् करे आत्मवश, लज्जा धैर्य्य धर्म करे क्षय॥

नागर! शुन तोमार अधर चरित।

माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण, विचारिते सब विपरीत॥ध्रु॥  
आहूक नारीर काज, कहिते वासिये लाज, तोमार अधर बड़ धृष्टराय।  
पुरुषे करे आकर्षण, आपना पियाइते मन, अन्य सब रस पासराय॥  
सचेतन रहू दूरे, अचेतन सचेतन करे, तोमार अधर बड़ वाजिकर।  
तोमार वेणुशुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय-मन, तारे आपना पियाय निरन्तर॥  
वेणु धृष्ट पुरुष हजा, पुरुषाधर पिया पिया, गोपीगणे जानाय निजपान।  
अहो शुन गोपीगण, बले पिऊँ तोमार धन, तोमार यदि थाके अभिमान॥  
तवे मोरे क्रोध करि, लज्जा भय धर्म छाड़ि, छाड़ि दिमु करसिया पान।  
नहे पिमु निरन्तर, तोमारे मोर नाहि डर, अन्ये देखों तृणेर समान॥  
अधरामृत निज स्वरे, सञ्चारिया सेइ बले, आकर्षये त्रिजगतेर जन।  
आमरा धर्मभय करि, रहि यदि धैर्य्य धरि, तबे आमर करे विडम्बन॥  
नीविखसाय गुरु-आगे, लज्जा-धर्म कराय त्यागे, केशे धरि जेन लया जाय।  
आनि करे तोमार दासी, शुनि लोके करे हाँसि, एइमत नारीरे नाचाय॥  
शुष्क बाँशेर काठिखान, एत करे अपमान, एइ दशा करिल गोसाईं।  
ना सहित कि करिते पारि, ताहे रहि मौन धरि, चोरार माके डाकि जैछे काँदिते नाइ॥  
अधरेर एइ रीति, आर शुनह कुनीति, से अधर सने जार मेला।  
सेइ भक्ष्य भोज्य पान, हय अमृत-समान, नाम तार हय 'कृष्ण-फेला'॥  
से फेलार एक लव, ना पाय देवतासब, ए दम्भे केवा पातियाय।  
वहु जन्म पुण्य करे, तबे सुकृति नाम धरे, से सुकृति तार लव पाय॥  
कृष्ण जे खाय ताम्बूल, कहे तार नाहि मूल, ताहे आर दम्भपरिपाटी।  
तार जेवा उद्गार, तारे कय अमृत-सार, गोपीर मुख करे आलवाटी॥  
ए सब तोमार कुटिनाटि, छाड़ एइ परिपाटी, वेणुद्वारे काहे हर प्राण?  
आपनार हासि लागि, नह नारीर वधभागी, देह निजाधरामृत दान॥159॥

(चै.च.)



रासलीला के गोपीगीत में गोपियाँ श्रीकृष्ण के अधरामृत के माधुर्य पर प्रलुब्ध हो कहती हैं- 'हे नागर! तुम्हारे अधरों की यह क्या अद्भुत मोहिनी शक्ति अथवा प्रभाव है वह तुम स्वयं भी नहीं जानते। हम सब भुक्त-भोगी हैं सो तुम्हारे अधरों की चरित कथा तुमसे कहती हैं- सुनो! तुम्हारे अधर हमारे देह-मन को क्षुब्ध कर, प्रेम-सम्भोग तृष्णा को कोटि गुणा वर्धित कर देते हैं। केवल इतना ही नहीं, इस त्रिजगत में जो कुछ भी रस अथवा आस्वाद्य वस्तु है वे सब कुछ भुला देते हैं एवं विश्व को अपने आधीन कर लेते हैं। रमणी की लज्जा, धर्म, धैर्य, विनष्ट कर उसके मन को विमत्त और जिह्वा को आकर्षित कर तन्मय कर देते हैं।

अहो! बड़ी ही लज्जा की बात है, तुम्हारे अधर इतने धृष्ट अथवा उद्धत हैं कि ये रमणी की बात तो दूर पुरुष को भी आकर्षित कर स्वयं का पान कराते हैं। श्रीकृष्ण के अधरों के माधुर्य के प्रति पुरुष भी गोपीभाव से भजन कर कृष्ण की अधरसुधा आस्वादन के लिए प्रलुब्ध हो जाते हैं एवं साधना की सिद्धि होने पर गोपी देह से उसका आस्वादन सौभाग्य भी लाभ करते हैं- यही सिद्धान्त अभिव्यक्त है। केवल इतना ही नहीं अन्य सभी रसों का आस्वादन भुला देता है। तुम्हारे अधर केवल उद्धत ही नहीं, एक बहुत बड़े जादूगर भी है, वे अचेतन को भी सचेतन कर सकते हैं। उसका प्रमाण है तुम्हारी यह वेणु, मात्र एक बांस का टुकड़ा, उसमें भी मन-इन्द्रियाँ जन्मा कर निरन्तर उसे अपना पान कराता है। इस धृष्ट के संग वश वेणु भी धृष्ट हो जाता है, कारण पुरुष के द्वारा कभी पुरुष के अधरपान की बात नहीं सुनी जाती। यह धृष्ट वेणु पुरुष होते हुए भी पुरुष-अधर पान करता है और गोपियों को उसके पान की बात भी बताता है- कहता है- उन्हें गोपीगण यह अधरसुधा सम्पूर्ण रूप से तुम्हारी ही भोग्य-सम्पदा है, मैं बलपूर्वक तुम्हारा धन भोग रहा हूँ। तुम्हारा भोग्य द्रव्य मुझे पान करते देख यदि तुम्हारे अभिमान को चोट पहुँचती है तो लज्जा, धर्म, भय इत्यादि छोड़कर यहाँ आ जाओ और मुझ पर क्रोध करें। तुम्हारे यहाँ आने पर मैं इसे छोड़ दूँगा फिर तुम अपनी भोग्य-सम्पदा को स्वच्छन्द रूप से पान कर सकोगी। अन्यथा मैं ही निरन्तर पान करता रहूँगा। तुम्हारी सम्पदा भोग करने में मुझे तुम्हारा ही कोई भय नहीं, अन्य को तो मैं तृण के समान तुच्छ ही मानता हूँ।

महाभाव के स्वभाव वश गोपियाँ सोचती हैं, अधरामृत अपनी शक्ति से बाँस के टुकड़े इस वेणु को मन-इन्द्रिय देकर जीवन्त और बुद्धिमान बनाकर

स्वयं का उसे पान करा रहा है एवं वेणु के मोहन सुर से विमोहित और आकर्षित हो सोचती हैं वेणु उन्हें सब छोड़कर कृष्ण के निकट जाकर कृष्ण-अधरामृत पान करने के लिए जैसे प्रलुब्ध कर रहा है और निमंत्रण दे रहा है।

फिर कहती है, 'हे मोहन! तुम्हारे वेणु के स्वर के संग अधरामृत मिश्रित है, उसी अधरामृत के बल से बलवान होकर वेणु त्रिजगत के मन को आकर्षित करता है। हम पुत्रवधुएँ हैं, यदि पातिव्रत धर्मनाश के भय से धैर्य रखती हैं तो यह वेणु हमें नाना प्रकार से लांछित करता है। जब हम गुरु-जनों के समक्ष रहती हैं तब वेणु बज उठता है, उनके सामने ही नीवी बंधन स्खलित हो जाता है। स्त्री जाति-सुलभ लज्जा धर्म आदि का विसर्जन करा देता है। हमारे केश खींचते हुए हमें तुम्हारे निकट ले आता है। केवल ले नहीं आता, तुम्हारे चरणों की चिर दासी बना देता है। यह सब बातें सुनकर परिजन हमारी हंसी उड़ाते हैं। इस तरह नाना प्रकार से तुम्हारा वेणु नारीगण को नचाता है। एक अति सामान्य, तुच्छ वस्तु, सूखे बांस का टुकड़ा, वह जब हमारा इतना अपमान करता है तब हमारे मन में क्या आता है जानते हो, - यह निश्चय ही ईश्वर की इच्छा से ही हो रहा है, नहीं तो क्या एक बांस का टुकड़ा हमारी ऐसी दुर्दशा कर सकता है? यदि तुम कहो कि वंशी इतनी लांछना देती है, तब तुम यह बात किसी से न कहकर चुपचाप सहन क्यों करती हो? इसके उत्तर में कहती हैं, सहन न करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। तभी चुपचाप सहन करने को हम बाधित हैं। जैसे चोर चोरी करने जाता है और गृहस्थ के अस्त्र से भारी चोट खाकर घर लौटता है, गम्भीर दशा है, फिर भी चोर की माता ऊँचे स्वर में रो नहीं सकती। सब सहन करना पड़ता है, कारण उच्चस्वर में रोने से चोर पकड़ा जाएगा।

हे श्याम! तुम्हारे अधरों का चरित्र तो कह दिया, अब उसकी ओर भी कुनीति और मन्दस्वभाव की बात कहती हूँ सुनो। तुम्हारा अधर स्वयं तो अच्छा नहीं ही है उसके ऊपर यदि उसके संग किसी का मेल होता है तो उसमें भी उसके स्वभाव का संक्रमण हो जाता है। जिस भोज्य और पेय वस्तु का तुम भोजन-पान आदि करते हो वह अमृत के समान स्वादिष्ट हो जाती है, उसका नाम हो जाता है कृष्ण फेला, जिसकी एक कर्णिका देवतागण को भी दुर्लभ है यह अवश्य ही कृष्ण फेला के दम्भ का हेतु है; किन्तु इस दम्भ पर

क्या कोई विश्वास करेगा ? यदि कोई नहीं भी करता तो भी यह परम सत्य ही है।

बहुत जन्म जो पुण्य करता है उसका नाम सुकृति है। यहाँ सुकृति का अर्थ है, बहुत जन्म जो सत्संग में शुद्ध भक्ति के आश्रय में श्रीकृष्ण भजन करता है, वह ही सुकृति है। उस सुकृति को ही यह फेला अथवा कृष्ण अधरामृत प्राप्त होता है। और फिर तुम जो ताम्बूल चर्वण करते हो। गोपियाँ श्रीकृष्ण के चर्वित ताम्बूल रूपी अमृतसार के प्रति ऐसी लोभातुर है कि श्रीकृष्ण पीकदानी में चर्वित ताम्बूल फेंक ही नहीं पाते। गोपियाँ साग्रह उसे निजमुख में ग्रहण करती हैं। वह अति अमूल्य वस्तु है, उसका जो उद्गार (चर्वित पान की पीक और चर्वित ताम्बूल जिसे फेंक दिया जाता है) है वह अमृत सार है। उसकी भी ऐसी दम्भ परिपाटी है कि गोपियों का मुख उसकी आलबाटि अथवा पीकदानी हो जाती है।

नागर! यह जो तुम्हारे कुटिल स्वभाव की बात कही है, इस कुटिलता की परिपाटी का परित्याग करो, वंशी ध्वनि से और हम गोपियों के प्राण हरण मत करो। तुम कौतुक में यह सब अन्याय करते हो किन्तु तुम क्या जानते नहीं कि तुम्हें इन्हीं कार्यों के कारण नारीवध के पाप का भागी होना होगा। यदि तुम इस पाप से रक्षा पाना चाहते हो तो तुम्हारे अधरामृत का पान कराओ।” कहिते कहिते प्रभुर भाव फिरि गेल। क्रोध-अंश शान्त हैल उत्कन्ठा बाडिल ॥ परम दुर्लभ एइ कृष्णाधरामृत। ताहा सेइ पाय, तार सफल जीवित ॥ योग्य इया ताहा केहो करिते ना पाय पान। तथापि निर्लज्ज सेइ वृथा धरे प्राण ॥ अयोग्य हैया ताहा केह सदा पान करे। योग्यजन नाहि-पाय-लोभे मात्र मरे ॥ ताहे जानि कोन तपस्यार आछे बल। अयोग्येरे देओयाय कृष्णाधरामृत-फल ॥ कह रामराय! किछु शुनिते हय मन। भाव जानि पड़े राय गोपीकार वचन ॥

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं का स्म वेणु-

दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।

भुङ्क्वितस्वयं यदवशिष्टरसं हृदिन्यो

हृष्यत्वचोऽश्रुऽमूमुचुस्तरवो यथार्याः ॥ 160 ॥

(भा.-10/21/9)

श्रीरामानन्दराय के मुख से यह श्लोक सुन प्रभु भावाविष्ट हो गए, विपुल उत्कण्ठा वर्धित हो गई, प्रभु इस श्लोक का अर्थ प्रकाश कर प्रलाप करने लगे।

एहो ब्रजेन्द्र-नन्दन, रजेर कोन कन्यागण, अवश्य करिवे परिणय ।  
से सम्बन्धे गोपीगण, जारे माने निजधन, से सुधा अन्येर लभ्या नय ॥  
गोपीगण! कह सबे करिया विचारे ।

कोन् तीर्थे कोन् तप, कोन् सिद्ध मन्त्र जप, एइ वेणू कैल जन्मान्तरे? ध्रु॥  
हेन कृष्णाधरसुधा, जे कैल अमृत मुधा, जार आशाय गोपी धरे प्राण ।  
ए वेणु अयोग्य अति, ताते स्थावर पुरुष जाति, एइ सुधा सदा करे पान ॥  
जार धन ना कहे तारे, पान करे बलात्कारे, पिते तारे डाकिया जानाय ।  
तार तपस्यार फल, देख इहार भाग्यफल, इहार उच्छिष्ट महाजने खाय ॥  
मानसगङ्गा कालिन्दी, भुवन पावन नदी, कृष्ण जदि ताते करे स्नान ।  
वेणुर झुटाधर-रस, हजा लोभे परवश, सेइ काले हर्षे करे पान ॥  
ए त नारी रह दूरे, वृक्ष सब तार तीरे, तप करे पर-उपकारी ।  
नदीर शेष-रस पाजा, मूलद्वारे आकर्षिया, केन पिये बुझिते ना पारे ॥  
निजांकुरे पुलकित, पुष्पहास्य विकसित, मधु-मिषे बहे अश्रुधार ।  
वेणुके मानि निजजाति, आर्येर येन पुत्र-नाति, वैष्णव हैले आनन्द-विकार ॥  
वेणुर तप जानि यबे, सेइ तप करि तबे, ओ-त अयोग्यआमरा योग्य नारि ।  
जा ना पाजा दुःखे मरि, अयोग्य पिये सहिते नारि, ताहा लागि तपस्या विचारि ॥161 ॥

(चै.च.)

श्रीराधारानी के भाव में प्रभु श्लोक के अर्थ का आस्वादन करते हैं। कहते हैं- हे गोपीगण, श्रीकृष्ण ब्रजराज की संतान हैं, जाति से गोप हैं और आयु से किशोर हैं, शीघ्र ही इनका ब्रज की ही किसी गोप-कन्या के संग विवाह होगा, इसमें कोई संशय नहीं। इसी सम्बन्ध से गोपियाँ सोचती हैं कि श्रीकृष्ण की अधरसुधा हमारी ही भोग्य-सम्पदा है। गोपियों के अतिरिक्त यह अधरसुधा भोग करने का अधिकार किसी का नहीं। किसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने के लिए लोग किसी तीर्थ पर जाकर कठोर तपस्या करते हैं या फिर किसी महाशक्तिशाली सिद्ध मन्त्रजप प्रभृति कठिन साधना के द्वारा देवता को सन्तुष्ट कर उस देवता के वर प्रभाव से दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करते हैं। हे गोपीगण! तुम सब विचार कर के कहो कि इस वेणु ने किस तीर्थ पर, किस उग्र तपस्या अथवा किस सिद्ध मन्त्र का जप किया था; जिसके कारण श्रीकृष्ण की अधरसुधा जो अमृत का भी तिरस्कार करती है, जिसकी आशा में हम गोपियाँ प्राण धारण करती हैं, उसे यह अयोग्य एक तो स्थावर और फिर पुरुष जाति होते हुए भी उस सुदुर्लभ श्रीकृष्ण अधरसुधा का सर्वदा पान करता है।

इस वेणु की ओर एक धृष्टता देखो, श्रीकृष्ण की अधरसुधा, जो गोपियों की अनन्य सम्पदा है, उसे उनसे मांग कर नहीं लेता, बलपूर्वक पान करता है। केवल इतना ही नहीं, यह कार्य वह गुप्त रूप से भी नहीं करता, जिनकी सम्पत्ति है उन्हीं गोपियों को यह वेणु ऊँचेस्वर से चिल्ला कर बताता है कि वह उनके धन इस अधरसुधा को बलपूर्वक पान कर रहा है- इसका दुःसाहस तो देखो। यह वेणु अति-तुच्छ जाति से है, किन्तु देखो, कठोर तपस्या से इसके कैसे महा-सौभाग्य का उदय हुआ है कि महाजन पर्यन्त इसका उच्छिष्ट खा रहे हैं। मानसीगंगा, यमुना यह सब महातीर्थ हैं, विश्व को पवित्र करते हैं, श्रीकृष्ण जब वेणु हाथ में लिए इनमें स्नान करते हैं तब वेणु के मुख पर जो श्रीकृष्ण-अधरसुधा लिप्त रहती है, नदियाँ प्रलुब्ध होकर महानन्द से उसका पान करती हैं सखियों, यह तो नदियाँ हैं स्त्री-जाति है; यह जो वेणु का उच्छिष्ट श्रीकृष्ण अधरामृत का पान करती है इसमें कोई आश्चर्य नहीं अतः इनकी बात छोड़ दो किन्तु इन दोनों नदियों के तीर पर जो सब वृक्ष हैं वे तो पुरुष-जाति हैं, धर्म परायण हैं, परोपकारी हैं, और महा-तपस्वी हैं वे भी नदियों के आस्वादित वेणुके उच्छिष्ट श्रीकृष्ण-अधरामृत के अवशेष को मूल-द्वार से आकर्षित कर उसका पान क्यों करते हैं, यह समझ नहीं आता। यदि कहो कि तुमने कैसे जाना कि यह वृक्ष नदियों के अवशिष्ट श्रीकृष्ण अधरसुधा का पान करते हैं? उसके उत्तर में कहती हैं कि यह समझने में कोई असुविधा नहीं। यह वृक्ष अंकुर उद्गम के छल से पुलकित हो रहे हैं, कुसुम विकास रूप हास्य द्वारा हर्ष प्रकाश कर रहे हैं एवं मधुधारा वर्षण के छल से आनन्द-अश्रु मोचन कर रहे हैं। उनके विशेष आनन्द का हेतु है कि उनके वृक्ष-वंश में ही वेणु का जन्म है।

जैसे किसी वंश में यदि कोई वैष्णव होता है, तो कुलपति पिता पितामह प्रभृति वे भी अपना सौभाग्य मानकर आनन्द प्रकाश करते हैं।” इससे श्रीकृष्ण-अधरामृत के विषय में ब्रजगोपियों का कल्पना-राज्य कितनी दूर तक फैला है, इसकी कुछ उपलब्धि होती है। “सखियों यदि वेणु की तपस्या की बात जान पाती तो हम भी वही तपस्या का आचरण करती, वेणु पुरुष जाति है श्रीकृष्ण अधरपान के सर्वथा अयोग्य है, हम नारी हैं हम ही उसके योग्य हैं। हम जिसके अभाव में दुख से मरी जा रही हैं, वह अयोग्य वेणु सर्वदा हमारे समक्ष ही उसका पान करता रहता है, यह असहनीय है। इसी कारण वेणु की तपस्या को जानना एवं उसे तपस्या को करना हमारा एकान्त

कर्तव्य है।”

इस प्रलाप से श्रीराधारानी के भाव में महाप्रभु की श्रीकृष्ण अधरामृत आस्वादन की स्पृहा कितनी प्रबल है, उसमें जिह्वा की लालसा कितनी सुतीव्र है, यह जाना जाता है। यह राधारानी के मादनाख्य-महाभाव का ही कार्य है। कारण मादन-भाव का एक अनुभाव है- “अत्रेर्षयाया अयोग्योऽपि की (ईर्ष्या) के अयोग्य वस्तु में भी प्रबल ईर्ष्या देखी जाती है। श्रीकृष्ण की वेणु, वनमाला प्रभृति के प्रति श्रीराधारानी में ईर्ष्या का उदय होता है।

एतेक प्रलाप करि, प्रेमावेशे गौरहरि, सङ्गे लैया स्वरूप रामराय ।

कभु नाचे कभु गाय, भावावेशे मूर्च्छा पाय, एङ्गरूपे रात्रिदिन याय ॥ 161 ॥

श्रीराधारानी की प्रेम-महिमा का अनुभव, श्रीकृष्णमाधुर्य का आस्वादन और उससे प्रभु की भाव-विह्वलता- “कैछन राधाप्रेम, कैछन ( मोर ) मधुरिमा, कैछन भावे तिहो भोर” एक संग इन वांछाओं का आस्वादन गम्भीरालीला में प्रदर्शित होता है।

गम्भीरा में श्रीमन्महाप्रभु के दिन रात किस प्रकार व्यतीत होते, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद ने स्वल्प अक्षरों में उसकी निर्दोष छवि अंकित की है एवं प्रभु की अन्त्यलीला की एक-एक रहस्यमय घटना का उल्लेख कर उसे समुज्ज्वल किया है। अन्त्यलीला के 17वें परिच्छेद के प्रारम्भ में लिखते हैं—

एङ्गमत महाप्रभु रात्रि दिवसे । उन्मादेर चेष्टा प्रलाप करे प्रेमावेशे ॥

एकदिन प्रभु स्वरूप रामानन्द-सङ्गे । अर्द्धरात्रि गोणाइल कृष्णकथा-रङ्गे ॥

यबे सेइ भाव प्रभुर करये उदय । भावानुरूप गीत गाय स्वरूप महाशय ॥

विद्यापति चण्डीदास श्रीगीतगोविन्द । भावानुरूप श्लोक पड़े राय रामानन्द ॥

मध्ये मध्ये प्रभु आपने श्लोक पढ़िया । श्लोकेर अर्थ करेन प्रलाप करिया ॥ 162 ॥

उद्धृत पयारों में महाप्रभु की प्रेम-विह्वलता एवं श्रीपाद स्वरूप दामोदर और श्रील रामानन्दराय का प्रभु को सान्त्वना प्रदान प्रसंग व्यक्त होता है। इस समय श्रीवृन्दावन की मधुमयी लीलामाधुरी प्रभु के नयन पथ पर प्रकाशित होती, इन माधुर्यमय लीलाओं के दर्शन से वे आनन्द में विह्वल हो जाते। किसी समय मूर्च्छित हो गिर पड़ते। स्वरूप आदि पार्षदों की चेष्टा से मूर्च्छा दूर होने पर ‘हा कृष्ण हा कृष्ण’ कहकर रोते-रोते विरह-विवश हो जाते। प्रभु की दशा दर्शन कर, स्वरूप प्रभु के भाव अनुरूप विद्यापति चण्डीदास श्रीगीतगोविन्द के पद अपने मधुकण्ठ से गायन करते। और कभी रामानन्द

राय रासलीला आदि के श्लोक पाठ करते, प्रभु उसका आस्वादन कर प्रलाप वचनों में उसका अर्थ प्रकाश करते। और कभी स्वयं रासलीला, श्रीकृष्णकर्णामृत आदि के श्लोक पाठ कर श्लोक का अर्थ प्रकाशित करते और विलाप करने लगते। इसी भाव से प्रभु के दिन-रात व्यतीत होते। देह स्वभाव से ही स्नान-भोजन आदि कार्यों का निर्वाह होता।

एक दिन प्रभु ने स्वरूप और रामानन्द के संग कृष्णकथा रंग में आधी रात बिता दी। प्रभु को शयन करा स्वरूप और रामानन्द घर चले गए, गोविन्द गम्भीरा के द्वार पर ही सो गया। प्रभु के विरह-तृषित (प्यासे) नेत्रों में निद्रा नहीं थी, सारी रात उच्चस्वर से नाम कीर्तन करते रहे। रात्रि के अंत में प्रभु ने श्रीकृष्ण का वेणुगान सुना एवं भावावेश में वेणु गान का अनुसरण करते बाहर चले गए। तीन द्वार अर्गल से बन्द थे फिर भी प्रभु भाव के आवेग से बाहर निकल गए। तीन द्वार बन्द होने पर भी प्रभु किस प्रकार बाहर निकले, यह एक दुर्ज्ञेय रहस्य है। प्रेमिक के प्रति श्रीकृष्ण-आकर्षण की गति को कोई भी रोक नहीं सकता। श्रीभगवान् के लिए बन्द द्वारों से बाहर निकल जाना कुछ भी कठिन नहीं, यहाँ तक कि योग प्रभाव से योगीगण की देह भी वायु की अपेक्षा भी हल्की हो जाती है एवं वे भी आकाश में विचरण कर सकते हैं किन्तु महाप्रभु का तीन बन्द द्वारों से बाहर निकलने का कार्य उस प्रकार का नहीं है। इसे उनके श्रीकृष्ण के माधुर्य-आकर्षण का ही अलौकिक प्रभाव समझना होगा। श्रील रघुनाथदास गोस्वामीपाद श्रीचैतन्य कल्पवृक्ष स्तव में लिखते हैं, प्रभु तीन द्वारों को खोले बिना, तीन ऊँची दीवारों का उलंघन कर कलिंग देश की गायों के बीच जा कर गिरे।’ “अनुद्घाटय द्वारत्रयमूरू च भित्तित्रयमहो विलंघयोचैः कालिंगिकसूरभीमध्ये निपतितः।” जो भी हो, गोविन्द नेत्र मूंद कर शय्या पर शयन कर रहे थे। किन्तु उनके कर्णद्वय प्रभु के उच्च कीर्तन में सजग थे अकस्मात् गम्भीरा निस्तब्ध हो गया तो उन्हें सन्देह हुआ। उन्होंने दीपक जलाया तो देखा प्रभु गम्भीरा में नहीं हैं। वे महाशक्ति चित्त से स्वरूप के शयन-कक्ष में गए, उन्हें जगाकर इस दुसहः समाचार की जानकारी दी। स्वरूप अन्य भक्तों के संग द्वार बन्द देख कर गम्भीरा के कक्षों में ही प्रभु को खोजने लगे किन्तु कहीं नहीं पाया। तब सभी भक्त मुख्य द्वार खोलकर प्रभु को खोजने चारों दिशाओं में निकल पड़े। स्वरूप गोसाँई दीपक प्रज्वलित कर भक्तों के एक दल के संग इधर-उधर खोज करते-करते श्रीजगन्नाथदेव के सिंहद्वार पर आए और वहाँ देखा कुछ

गायें जैसे किसी वस्तु को चारों ओर से घेर कर सतृष्ण भाव से उसे आघ्राण कर रही हैं। वहाँ जाकर वे एक अलौकिक और अति-अद्भुत दृश्य देखकर अतिशय विस्मित हो गए। एक अविश्वसनीय अवस्था में उन्होंने गायों के मध्य प्रभु को देखा। श्रील कविराज गोस्वामीपाद प्रभु की उस दशा का वर्णन करते हैं-

पेटेर भितर हस्त-पद-कूर्मैर आकार । मुखे फेन पुलकाङ्ग, नेत्रे अश्रुधार ॥  
अचेतन पड़ि आछे जेन कुष्माण्ड फल । वाहिरै जड़िमा अन्तरे आनन्दविह्वल ॥  
गाभीसब चौदिके शुद्धे प्रभु-अङ्ग । दूर कैले नाहि छाड़े महाप्रभुर सङ्ग ॥  
अनेक करिल यत्न ना हय चेतन । प्रभुरे उठाइया घरे आनिल भक्तगण ॥ 163 ॥

भक्तवृन्द चन्द्र के समान उज्ज्वल मुख-कान्ति के दर्शन से ही समझ गए- यह उनके प्राणाराम, उनके नयन चकोरों के पूर्णचन्द्र ही धूल में लुण्ठित हुए पड़े हैं। गायें उनके सुधामधुर अंगों के आघ्राण से विह्वल हो रही हैं। सचकित नयनों से भक्तों ने देखा कि प्रभु के हाथ-पैर नहीं हैं। वे एक कुष्माण्ड फल की तरह पड़े हैं। जैसे कछुए के पैर मस्तक आदि उसके देह में प्रविष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार प्रभु के महाभावमय श्रीविग्रह के आजानुलम्बित भुजाएँ एवं विशाल पद-द्वय प्रेम-चमत्कार से मृदुल होकर पेट के भीतर प्रवेश कर गए हैं। मुख से लार निकल रही है, देह पुलकित है, नयनों से अश्रुधारा बह रही है, प्रभु अचेतन अवस्था में पड़े हैं। गायें प्रभु के सौरभ से ऐसी मत्त हैं कि वे दूर करने पर भी प्रभु का संग छोड़ना नहीं चाहती। स्वरूप आदि भक्त-वृन्द की बहुत चेष्टाओं से भी जब प्रभु में चेतना का संचार नहीं हुआ तो वे प्रभु को उठाकर गम्भीरा ले आए। भक्तगण ऊँचेस्वर से प्रभु के कानों में कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे तो प्रभु में चेतना का संचार हुआ। चेतना संचार के संग-संग ही प्रभु के हस्त-पद आदि बाहर निकल आए और देह यथायोग्य हो गई। वे उठकर बैठ गए एवं इधर-उधर देखने लगे। जैसे किसी विशेष वस्तु को देखना चाह रहे हैं किन्तु देख नहीं पा रहे, जैसे कहाँ से कहाँ आ पड़े। स्वरूप को सम्मुख देख प्रश्न करते हैं- “तुम मुझे कहाँ ले आए? श्रीकृष्ण का वेणुनाद श्रवण कर मैं वृन्दावन गया था, देखा कृष्ण वहाँ वेणु बजा रहे हैं। वेणु नाद के संकेत से श्रीराधारानी को गोष्ठ में ले आए। श्रीराधाकृष्ण ने क्रीड़ा के निमित्त कुंज में प्रवेश किया। मैंने भी उनके पीछे-पीछे गमन किया। युगल के आभूषणों की ध्वनि से मेरे कर्ण-युगल मुग्ध हो गए थे, गोपियों के हास-परिहासमय कण्ठ ध्वनि श्रवण कर मेरे कर्ण



उल्लसित हो गए थे।

प्रभु की वंशी ध्वनि श्रवण से बाहर निकल जाना एवं कूर्माकृति अनुभाव एकमात्र श्रीराधारानी के दिव्योन्माद में ही सम्भव है। दिव्योन्माद राधारानी के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं है। तब फिर प्रभु के चैतन्य होने पर उन्होंने श्रीराधारानी की सखी अथवा मंजरी के भाव में, वेणुनाद से श्रीराधारानी के आगमन, युगल के कुंज प्रवेश एवं उनके अनुगमन की बात क्यों कही? ऐसा प्रश्न उठा सकता है। इसका उत्तर यह है कि दिव्योन्माद भ्रमाभ अनन्त वैचित्र्य से पूर्ण है। ललितमाधव नाटक के तृतीय अंक में दिव्योन्माद भाव की उद्घूर्णा दशा में श्रीराधारानी का ललिता में राधा-ज्ञान एवं स्वयं में ललिता ज्ञान की बात देखी जाती है। इसी प्रकार की भाव-वैचित्र्य के वशीभूत होकर ही वे स्वयं को श्रीराधारानी की सखी अथवा मंजरी ही समझ रहे हैं। इसके तुरन्त बाद ही स्वरूप दामोदर के निकट भागवत का श्लोक श्रवण कर प्रभु गोपीभाव में अथवा नायिका भाव में प्रलाप करते हुए उसका अर्थ प्रकाश करते हैं। जो भी हो, उसके बाद प्रभु कहते हैं—

हेनकाले तुमि सब कोलाहल करि। आमा इहा लैया आइला बलात्कारे हरि ॥  
शुनिते ना पाइलूँ सेइ अमृतसम वाणी। सुनिते ना पाइलूँ भूषण-मुरलीर ध्वनि ॥  
भावावेशे स्वरूपे कहे गद्गद वाणी। कर्ण तृष्णाय मरे, पढ़ रसामृत शुनि ॥  
स्वरूपगोसाजि प्रभुर भाव जानिया। भागवतेर श्लोक पढ़े मधुर करिया ॥

(चै.च.)

का स्त्रयांग ते कलपदायतवेणुगीत-  
सम्मोहितार्यचरितान् चलेत त्रिलोक्याम्।  
त्रैलोक्यसौभगमिदंच निरीक्ष्य रूपम्  
यदेगा द्विजद्रुममृगाः पुलकान्यविभ्रन् ॥

“हे कृष्ण! त्रिभुवन में ऐसी कौन स्त्री है जो, तुम्हारी इस मधुर-स्फुट पदावली और स्वरालाप से युक्त वेणुगीत को श्रवण कर एवं तुम्हारे इस त्रैलोक्य-सुन्दर मधुर रूप का दर्शन करके भी निजधर्म से विचलित न हो? रमणी की तो बात ही दूर तुम्हारे इस भुवन मोहनरूप से एवं वेणु गान से पक्षी, वृक्ष, गाये, हरिण आदि पशु पर्यन्त परमानन्द से पुलकित हो जाते हैं।” स्वरूप दामोदर के मुख से यह श्लोक श्रवण कर प्रभु गोपीभाव में आविष्ट हो प्रलाप करते हुए इस श्लोक का अर्थ प्रकाश करने लगे।

हैलगोपीभावावेश, कैल रासे परवेश, कृष्णोर शुनि उपेक्षा वचन ।  
 कृष्णोर मधुर हास्यवाणी, त्यागे ताहा सत्य मानि, रोषे कृष्णे देन उलाहन ॥  
 नागर! कह तुमि करिया निश्चय ।  
 एइ त्रिजगत भरि, आछे यत योग्य नारी, तोमार वेणु काहा ना आकर्षण ॥  
 कैला यत वेणुध्वनि, सिद्धमन्त्रादि योगिनी, दूती हैया करे नारीर मन ।  
 महोत्कन्ठा बाडाइया, आर्य्यपद छाडाइया, आनि तोमाय करे समर्पण ॥  
 धर्म छाडाय वेणुद्वारे, हाने कटाक्ष कामशरे, लज्जा भय सकल छाडाय ।  
 एवे आमाय करि रोष, कहि पतित्याग दोष, धार्मिक हये धर्म शिखाय ॥  
 अन्य कथा अन्य मन, वाहिरे अन्य आचरण, एइ सब शठ परिपाटि ।  
 तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्व्वनाश, छाड़ एइसब कुटिनाटी ॥  
 वेणुनाद अमृत घोले, अमृतसमान मिठाबोले, अमृत समान भूषण शिंजित ।  
 तिन अमृते हरे कान, हरे मन करे प्रान, केमने नारि धरिवेक चित्त ॥ 165 ॥

(चै.च.)

श्रीरासलीला में श्रीकृष्ण की उपेक्षा वाणी श्रवण के बाद गोपियों की प्रार्थना वाणी का श्लोक श्रीस्वरूपदामोदर के मुख से श्रवण करने पर प्रभु को गोपीभाव के आवेश में रासलीला का स्फुरण हुआ। श्रीकृष्ण ने उनके वंशीनाद से आकृष्ट गोपियों को उपेक्षावाणी में उनके “परकीया” दोष को बता कर उन्हें घर लौट जाने और पतिव्रता-धर्म के पालन का उपदेश प्रदान किया। यद्यपि उनकी यह उपेक्षावाणी परिहास मात्र ही थी किन्तु तब भी उत्कण्ठावती गोपियाँ उसे सत्य मान बैठी एवं यह सोचकर कि कृष्ण उनका त्याग कर देंगे, वे किंचित रोष से भरकर उन्हें कहने लगीं- ‘हे नागर! हमने पतिव्रता धर्म धैर्य, लज्जा आदि सब छोड़कर तुम्हारा भजन किया है- तभी तुम हमारे ‘नागर’ हो। तुम सत्य-सत्य कहो- स्वर्ग में मृत्युलोक में पाताल में जितनी रमणियाँ हैं, तुम्हारी वंशी किसे आकर्षित नहीं करती? तुम्हारी यह वंशीध्वनि केवल ध्वनि मात्र नहीं है; जैसे कोई मन्त्र सिद्धा योगिनी यदि किसी नागर की दूती बन कर रमणी का मन नागर के प्रति आकर्षण करे, तो कोई भी रमणी उसके हाथों स्वयं की रक्षा नहीं कर सकती। उसी प्रकार मंत्र सिद्धा योगिनी की तरह तुम्हारी वंशीध्वनि के मोहन प्रभाव के हाथों कोई भी धैर्यशालिनी रमणी रक्षा पा नहीं सकती।

नागर! तुम्हारी वंशीध्वनि की यह क्या मोहिनी शक्ति है, वह हम नहीं जानती, यह ध्वनि रमणी के कर्ण में प्रवेश करते ही ऐसी महा-उत्कण्ठा का वर्धन करती है कि पतिव्रता धर्म की बात भी उनके मन में नहीं आती।

बलपूर्वक उन्हें आकर्षित कर तुम्हारे निकट ले आती है। “ध्वनि वड उद्यत, पतिव्रतार भांगेव्रत, पतिकोल हैते टानि आने। इत्यादि (चै.च.) इस वेणुध्वनि के द्वारा तुम हमें धर्म त्याग को बाध्य कर देते हो, उसके दुर्वार आकर्षण से हम जब तुम्हारे निकट उपस्थित होती हैं तब नयन-कटाक्ष से, मदन के पंच वाणों से हमारा हृदय बिंध कर, लज्जा भय सब छुड़ा देते हो और बाहर से हमारे प्रति राग दिखाकर धर्म की शिक्षा देते हो।

हे शठ-शिरोमणि! तुम्हारे मन में अन्य भाव हैं, मुख पर अन्य बात और बाहर आचरण अन्य प्रकार का है। “वहिरे नागरराज, भितरे शठेर काज, परनारी वधे सावधान।” (वही) किसी का किसी से भी मेल नहीं है। यह सब तुम्हारी शठता है। तुम केवल परिहास करते हो, किन्तु इससे जो रमणी का सर्वनाश होता है, वह क्यों नहीं समझते? इस सब कूटिनाटि और कपट व्यवहार को त्याग दो। अमृत जैसे सुस्वादिष्ट होता है वैसे ही घोल स्निग्ध और तापहारक होता है- तुम्हारी वेणु में यह दोनों गुण हैं। उसी प्रकार अमृतमधुर तुम्हारी श्रीमुख-वाणी और फिर अमृत-निन्दि तुम्हारे भूषणों का शिंजन- इन तीन अमृत से रमणी के मन-प्राण का हरण करते हो; वे किस प्रकार धैर्य धारण करें बताओ तो?

एत कहि क्रोधावेशे, भावेर तरङ्गे भासे, उत्कण्ठा सागरे डुबे मन।  
राधार उत्कण्ठावाणी, पढ़ि आपनि वाखानि, कृष्णमाधुर्य करे आस्वादन॥

नदज्जलदनिस्वनः श्रवणकर्षिसच्छिन्जितः

सनर्मरससूचकाक्षरपदार्थभंग्युक्तिकः।

रमादिकवराङ्गनाहृदयहारीवंशीकलः

स मे मदनमोहनः सखि! तनोति कर्णस्पृहाम्॥ 166 ॥

(गोविन्दलीलामृतम्-8/5)

“श्रीराधारानी विशाखा से कहती हैं- हे सखि! जिसकी कण्ठ-ध्वनि मेघों की तरह गम्भीर है, जिसकी श्रुतिमधुर भूषण-ध्वनि कर्णों को आकर्षित करती हैं, जिसके वाक्य परिहास रसमय है, मधुराक्षर युक्त हैं एवं पदार्थ-भंगिमय हैं, जिसकी वंशी-ध्वनि रमा आदि वारांगनागणों का भी हृदय हरण करने वाली है- वही मदनमोहन मेरी कर्ण-स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।” महाप्रभु का आस्वादन—

कण्ठेर गम्भीर ध्वनि, नवघनध्वनि जिनि, जाँर गुणे कोकिल लाजाय।  
तार एक श्रुतिकणे, डूबे जगतेर काणे, पुन काण वाहुड़ि ना आय॥

कह सखि! कि करि उपाय ?

कृष्णेर से शब्दगुणे, हरिले आमार काणे, एवे ना पाय तृष्णायमरि जाय ॥ ध्रु ॥  
 नूपुर किङ्किणी-ध्वनि, हंस सारस जिनि, कङ्कणध्वनि चटक लाजाय ।  
 एकबार जेइ शुने, व्यापि कहे तार काणे, अन्य शब्द से काणे ना जाय ॥  
 से श्रीमुखभाषित, अमृत हैते परामृत, स्मितकर्पूर ताहाते मिश्रित ।  
 शब्द अर्थ दुइ शक्ति, नाना रस करे व्यक्ति, प्रत्यक्षरे नर्मविभूषित ॥  
 से अमृतेर एककण, कर्म-चकोर-जीवन, कर्ण-चकोर जीये सेइ आशे ।  
 भाग्यवश कभु पाय, अभाग्ये कभु ना पाय, ना पाइले मरये पियासे ॥  
 जेवा वेणु-कलध्वनि, एकवार ताहा शुनि, जगन्नारीचित्त आउलाय ।  
 नीविबन्ध पड़े खसि, विनिमूले हय दासी, वाउलि हइया कृष्णपाशे धाय ॥  
 येवा लक्ष्मीठाकुराणी, तेंहो जे काकलि शुनि, कृष्णपाशे आइसे प्रत्याशाय ।  
 ना पाय कृष्णेर सङ्ग, बाढ़े तृष्णार तरङ्ग, तप करे तभु नाहि पाय ॥  
 एइ शब्दामृत चारि, जार हय भाग्य भारि, सेइ कर्ण इहा करे पान ।  
 इहा येइ नाहि शुने, से काण जन्मिल केने, काणाकड़ि सम सेइ काण ॥ 167 ॥

श्रीराधा के भाव में महाप्रभु श्रीकृष्ण के शब्द-गुण से उनके कर्णेन्द्रियों की आस्वाद-माधुरी वर्णन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण की कण्ठ ध्वनि नवमेघों की गर्जन की अपेक्षा अधिक गुरु-गम्भीर है, और फिर कोकिला के कण्ठ-स्वर को भी लज्जित करती है, इतनी मधुर है। जिसके एक कण के श्रवण से जगत का कान डूब जाता है और वह कान फिर लौटकर नहीं आता- अर्थात् श्रीकृष्ण का कण्ठ-स्वर जो एक बार श्रवण कर लेता है उसके कर्ण-युगल अन्य कोई और शब्द सुन नहीं पाते, अहरहः वही कण्ठध्वनि ही कानों में गूँजती रहती है। सखि मैं क्या उपाय करूँ बता, श्रीकृष्ण के कण्ठ स्वर के माधुर्य पर मेरे श्रवण-युगल आत्महारा हो गए हैं, किन्तु अब उसे सुन नहीं पा रहे, तभी कर्णयुगल उसी शब्द माधुरी की पिपासा में मरे जा रहे हैं। सखि! श्रीकृष्ण की कण्ठ-ध्वनि का प्रभाव तुम्हें बताया, अब नूपुर आदि के ध्वनि माधुर्य की बात कहती हूँ सुनो। उसके नूपुर-किंकणी की ध्वनि हंस-सारस की ध्वनि को पराभूत करती है। कंगनों की ध्वनि (चटक गौरैया पक्षी) के शब्द को भी लज्जित करती है। जो उसे एकबार सुन लेता है उसके कानों में वही रव-माधुरी व्याप्त हो जाती है, अन्य कोई शब्द उस कान में प्रवेश ही नहीं करता। “कानेर भितरे वासा करे आपने ताँहा सदा स्फुरे, अन्य शब्द ना देय प्रवेशिते।”

सखि! अब श्रीकृष्ण के वाणी माधुर्य की कुछ बात कहती हूँ सुन। उस श्रीमुख वाणी के निकट स्वर्गीय सुधा की क्या सामर्थ्य! उसकी वाणी परामृत स्वरूप है और उस पर शुचि-शुभ्र-मंद हास्य रूपी कर्पूर का मिश्रण। वह वाणी शब्द-अलंकार से, अर्थ-अलंकार से भूषित होकर शृंगार आदि रस-समूह विस्तार करती है। उसके वाक्यों का प्रत्येक अक्षर ह्रास-परिहास रस का विस्तार कर अति रमणीय हो जाता है। उस अमृत का एक कण रमणी के कर्णरूपी चकोर का जीवन स्वरूप है, कर्ण-चकोर उसी की ही आशा में प्राण धारण किए रहता है। किन्तु सब समय तो उसे पाता नहीं, सौभाग्यवश कभी प्राप्त करता है और कभी जैसे सौभाग्य के अभाव में प्राप्त नहीं करता, तब तो प्यास से मरा जाता है। (महाजन गोपियों की उक्ति से कहते हैं- “कत ये अमिया, प्रतिवचने उगारई, कूलवती मोहन मन्त)।”

सखि! इस बार श्रीकृष्ण के वेणु का प्रभाव कहती हूँ सुन वेणु का अस्फुट मधुर नाद यदि एक बार कानों में प्रवेश करता है, तब केवल हमारा ही नहीं, समग्र विश्व की रमणियों का चित्त अनियंत्रित अथवा अवश हो जाता है। उनका कटि-बंधन स्खलित हो जाता है, उन्मादिनी की तरह वे कृष्ण के निकट दौड़ी चली जाती हैं एवं उसे चरणों में आत्म समर्पण कर चिरकाल के लिए उसकी बिना मूल्य की दासी हो जाती है। (केना वाँशी वाए वड़ाई से ना कोन जना। दासी हआँ तार पाए निशिवों आपना ॥ चण्डीदास)। सखि! विश्व की रमणियों की तो बात ही दूर है, श्रीनारायण की वक्ष-विलासिनी वैकुण्ठेश्वरी श्रीलक्ष्मी ठाकुराणी, जो पतिव्रतागणों की शिरोमणि और उपास्य हैं, वे भी श्रीकृष्ण का वंशीनाद श्रवण कर आकर्षित हो- कृष्ण प्राप्ति की लालसा से श्रीवृन्दावन आती हैं किन्तु श्रीकृष्ण का संग प्राप्त नहीं करती। और फिर लोभ का भी त्याग नहीं कर पाती। सो इसके लिए श्रीवृन्दावन में दुष्कर तपस्या करती हैं परन्तु फिर भी नहीं पाती। “यदवाँछया श्रीर्ललनाचरतपो, विहाय कामान सुचिरम् धृतव्रता (भा. 10/16/36) श्रीकृष्ण की चरण-रेणु प्राप्ति की लालसा में लक्ष्मीदेवी समस्त कामनाओं का त्याग कर श्रीवृन्दावन में सुचिरकाल के लिए तपस्या करके भी उसे प्राप्त नहीं करती। स्वयं वैकुण्ठेश्वरी लक्ष्मीदेवी की ही जब ऐसी अवस्था है तब दूसरों की बात क्या कहूँ।

सखि! श्रीकृष्ण का कण्ठ-स्वर, उनके भूषणों का सिंचन उनकी मुख-निर्गत वाणी एवं उनका वेणुनाद- यह चारों शब्द अमृत-स्वरूप हैं।

किन्तु इस अमृत चातुष्टय का आस्वादन क्या सभी के भाग्य में होता है? यदि उत्तम भाग्य न हो तो इसका आस्वादन लाभ नहीं होता। (यहाँ महा-महत् का संग एवं उनकी कृपा से उत्पन्न सौभाग्य की ही बात कही गयी है)। जिनका इस प्रकार से भाग्य उदय हुआ है वे ही उसका पान कर सकते हैं। जो कर्ण इस अमृत-चातुष्टय का श्रवण सौभाग्य प्राप्त नहीं करते उस कर्ण का जन्म ही व्यर्थ है, वह कानाकड़ि (फूटी कौड़ी) के समान निष्फल है। श्रीकृष्ण माधुर्य के आस्वादन में ही इन्द्रियों की सफलता है अन्यथा इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं। कानाकड़ि का छिद्र कान की ही आकृति का होता है किन्तु कान का कोई कर्म अथवा धर्म उसमें नहीं होता; उसी प्रकार श्रीकृष्ण की शब्द माधुरी के आस्वादन के बिना कर्णधारी के कर्ण निष्फल है।

भगवद्-रसास्वादन में ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की चरम परिणति है। परम माधुर्यमय श्रीकृष्ण के रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध अनुभवी वैष्णवों के आस्वादन के विषय हैं। श्रीगौरांगदेव का आस्वादन ही इस विषय का चरम आदर्श है। वे श्रीकृष्ण के शब्द माधुर्य में निमग्न हो प्रलाप करने लगे। प्रलाप के फलस्वरूप क्रमशः उद्वेग बढ़ने लगा। संग-संग और भी बहुल भाव एक संग उदित होने से भाव-शावल्य उत्पन्न हो गया। करिते ऐछे विलाप, उठिल उद्वेगभाव, मने काँहो नाहि आलम्बन। उद्वेग विषाद मति, औत्सुक्य त्रास धृतिस्मृति, नानाभावेर हड़ल मिलन॥ भावशावल्य राधार उक्ति, लीलाशुके हेल स्फुर्ति, सेइ भावे पढ़े सेइ श्लोक। उन्मादेर सामर्थ्ये, सेइ श्लोकेर करे अर्थे, जेइ अर्थ ना जाने सब लोक॥

“किमिह कृणुमः कस्य क्रमः कृतं कृतमाशया  
कथयत कथामन्यां धन्यामहो हृदयेशयः।  
मधुरमधुरस्मेराकारे मनोनयनोत्सवे  
कृपणकृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं वत लम्बते॥168॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतम-42)

“अब मैं क्या करूँगी? किससे क्या कहूँगी? अब तो श्रीकृष्ण को पाने की आशा करना ही व्यर्थ है। कृष्ण कथा को छोड़ अन्य कोई बात कहो। अहो! जिसे त्यागने को मन करता है वह जैसे मेरे हृदय में ही शयन कर रहा है, मधुर-मधुर मृदु मंद-हास्य युक्त जिसका आकार है, जो मन और नयनों को आनन्ददायक है, उन्हीं श्रीकृष्ण में मेरी उत्कण्ठा-निमित्त अति दीना तृष्णा चिरकाल वृद्धि पा रही है।” महाप्रभु का प्रलाप—

एइ कृष्णेर विरहे, उद्वेगे मन स्थिर नहे, प्रात्युपाय चिन्तन ना जाय ।  
जेवा तुमि सखीगण, विषादे वाउल मन, कारे पुछों के कहे उपाय ॥  
हा हा सखि! कि करि उपाय ?

काँहा करो काँहा जाऊँ, काहा गेले कृष्ण पाऊँ, कृष्ण विनु प्राण मोर जाय ॥श्रु॥  
क्षणो मन स्थिर हय, तबे मने विचारय, बलिते हइल मति भावोद्गम ।  
पिगलार वचन स्मृति, कराइल भाव-मति, ताते करे अर्थ निद्धारण ॥  
देखि एइ उपाये, कृष्णेर आशा छाड़ि दिये, आशा छाड़िले सुखी हय मन ।  
छाड़ कृष्णकथा अधन्य, कह अन्य कथा धन्य, जाते कृष्णेर हय विस्मरण ॥  
कहितेइ हइल स्मृति, चित्ते कैल कृष्णस्फुर्ति, सखीके कहे हइया विस्मित ।  
जारे चाहि छाड़िते, से-इ शुइया आछे चित्ते, कोन रीति ना पारि छाड़िते ॥  
राधाभावेर स्वभाव आन, कृष्णेर कराय कामज्ञान, कामज्ञाने त्रास हैल चित्ते ।  
कहे ये जगत मारे, से पशिल अन्तरे, एइ वैरी ना देय पासरिते ॥  
औत्सुक्येर प्रावीण्ये, जिति अन्य भावसैन्ये, उदय कैल निजराज्य मने ।  
मने हैल लालस, ना हय आपन वश, दुःखे मने करेन भर्त्सने ॥  
मन मोर वाम दीन, जल विनु जेन मीन, कृष्ण विनु क्षणे मरि जाय ।  
मधुर हास्य वदने, मनोनेत्र रसायने, कृष्णतृष्णा द्विगुण बाढाय ॥  
हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन, हा हा दिव्यसद्गुणसागर ।  
हा हा श्यामसुन्दर, हा हा पीताम्बर धर, हा हा रासविलास नागर ॥  
काहाँ गेले तोमा पाइ, तुमि कह ताहाँ जाइ, एत कहि चलिल धाइया ।  
स्वरूप उठि कोले करि, प्रभुरे आनिल धरि, निज स्थाने वसाइल लैया ॥ 169 ॥

श्रीराधारानी के भाव में महाप्रभु कहते हैं- “हे सखिगण! श्रीकृष्ण विरह व्यथा से मेरा चित्त इतना अधीर हो गया है कि मैं मन स्थिर कर कुछ सोच ही नहीं पा रही कि किस उपाय का अवलम्बन कर श्रीकृष्ण को प्राप्त करूँ। तुम सब मेरी सखियाँ हो सुख-दुख की चिर-संगिनी हो, तुमसे जिज्ञासा करके शायद कोई एक उपाय स्थिर कर पाती, किन्तु देखती हूँ कि तुम भी तो विरह-व्यथा में पगली की तरह विचार-विवेचना की शक्ति खो बैठी हो, अतः तुम में भी परामर्श देने की सामर्थ्य नहीं है। इस विपद दशा से उद्धार का उपाय किससे जिज्ञासा करूँगी, कौन इसका उपाय बताएगा, यह मैं नहीं समझ पा रही। जिस-तिस को तो मन की बात कही नहीं जाती और कहने से भी मेरे प्राणों की व्यथा समझेगा कौन? सखियो, मैं और धैर्य धारण नहीं कर पा रही। मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, क्या करने से कृष्ण को पाऊँगी, कृष्ण के

बिना इस देह में अब प्राण नहीं रहेंगे।” इससे श्रीमती के चित्त में “चिन्ता” और “उद्वेग” संचारी भावों का उदय देखा जाता है।

उद्वेग और चिन्ता की तरंग कुछ शान्त हुई तो मन कुछ स्थिर हुआ, विचार करने की शक्ति प्राप्त हुई, तब चित्त में ‘मति’ भाव का उदय हो गया। मति भाव में अन्तर में पिंगला की स्मृति उदित हुई। श्रीमद्भागवतम् के एकादश स्कन्ध के अष्टम अध्याय में पिंगला की कथा वर्णित है। पिंगला विदेह नगर वासिनी एक वर-वनिता थी। कामासक्त व्यक्ति को आकर्षित करने के लिए उत्तम वेश-भूषा धारण कर ग्रह के मुख्य द्वार पर खड़ी थी। एक दिन अधिक रात्रि बीत जाने पर भी कोई व्यक्ति उसके पास नहीं आया। तब वह निर्वेद ग्रस्त होकर सोचने लगी- ‘रक्त, मांस, मल-मूत्र के इस घृणित पुरुष-देह के लिए मैं इतना कष्ट भोग कर रही हूँ, यदि इस आशा का परित्याग कर श्रीभगवान् का भजन करती तो जीवन में कितनी शान्ति लाभ कर पाती। आज से श्रीहरि का भजन ही करूँगी। श्रीभागवत कहती हैं- “आशा हि परमम् दुःखम् नैराश्यम् परमम् सुखम्। यथा संच्छिद्य कान्ताशाम् सुष्वाप पिंगला ॥” अर्थात् “आशा ही परम दुख है, निराशा ही परम सुख है, क्योंकि पिंगला कान्त की आशा त्याग कर सुख से सो गई थी।”

पिंगला की स्मृति में प्रभु कहते हैं- ‘सखिगण! अब मन में एक उपाय स्थिर कर रही हूँ, समझ रही हूँ कि जहाँ आशा है वहीं दुख है। अतः यदि कृष्ण की आशा का मैं त्याग कर पाऊँ, तभी इस प्राणान्तकर दुख का अवसान होगा। तब मन को अन्य विषय में निविष्ट कर सुखी हो पाऊँगी। सखि! तुम अब यह दुखदायी कृष्ण कथा मुझे और मत कहना, अधन्य कृष्ण कथा को छोड़ और कोई अच्छी बात कहो, जिससे कृष्ण को भूल सकूँ। उसे भुलाने पर ही यह विरह यंत्रणा दूर होगी और मन सुखी होगा।’ कृष्ण को भूलने की बात कहने मात्र से ही चित्त में विपुल कृष्ण स्मृति का उदय हुआ- हृदय में कोटि मन्मथ विमोहन श्रीकृष्ण की स्फूर्ति हुई। विस्मय के सहित सखियों से कहती हैं- ‘सखी जिसे भूलने के विषय में सोच रही थी, वह तो मेरे हृदय में ही अवस्थान कर रहा है, इसे भूलने का तो कोई उपाय नहीं सखी।’

श्रीराधारानी के भाव का स्वभाव अन्यरूप है, श्रीकृष्ण उनके निकट मन्मथ रूप में प्रकट होते हैं! मन्मथ ज्ञान से श्रीमती के चित्त में भय का संचार हुआ। सखी से कहती हैं- ‘सखि! जगत को मारता है तभी मन्मथ का एक



नाम 'मार' है। यह बैरी ही मेरे भीतर प्रवेश कर गया है- यही मुझे कृष्ण को भूलने नहीं दे रहा है।”

इस प्रकरण में श्रीराधारानी के भाव में प्रभु के चित्त में उद्वेग, चिन्ता, मति, स्मृति, अमर्ष और त्रास क्रमशः यह संचारीभाव समूह उदित होता है। सहसा प्रभु के चित्त में औत्सुक्य नामक संचारी ऐसे प्रबल भाव से उदित होता है कि यह उद्वेग आदि सभी भावों को पराजित कर प्रभु के मनोराज्य पर अधिकार कर बैठ गया। औत्सुक्य की प्रबलता से कृष्ण-प्राप्ति की लालसा से मन अबाध (अवश) हो गया। मन को वशीभूत न कर पाने से दुखी हो उसकी भर्त्सना करते हुए कहने लगी- 'सखियो! मेरा मन मेरे विरुद्ध आचरण करता है इसी कारण वह दीन और इतना दुर्दशा ग्रस्त हो गया है। जल के बिना मछली जैसे क्षण भर में ही मर जाती है उसी प्रकार मेरा मन भी कृष्ण के बिना मरणासन्न है। यदि कहो कि, जो कृष्ण तुम्हें इतनी दुःसहः ज्वाला देता है- उसी कृष्ण के प्रति तुम्हें इतनी तृष्णा क्यों है? उसका उत्तर कहती हूँ- श्रीकृष्ण का मधुर हास्य और वदनचन्द्र मेरे मन और नयनों का रसायन है, मेरे मरणासन्न मन को बचाने की एकमात्र अमोघ औषधि है। यह बात कहते-कहते प्रभु तीव्र लालसा से अधीर हो गए। प्राणों के आवेग से कृष्ण को सम्बोधित करते हुए प्रभु कहने लगे-

हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन, हा हा दिव्य सदगुणासागर ।  
हा हा श्यामसुन्दर, हा हा पीताम्बरधर, हा हा रास विलास नागर ॥  
काहाँ गेले तोमा पाइ, तुमि कह ताँहा जाइ, एत कहि चलिल धाइया ।  
स्वरूप उठि कोले करि, प्रभुरे आनिल धरि, निज स्थाने वसाइल लैया ॥ 170 ॥

इस उत्कण्ठामयी वाणी की कोई व्याख्या सम्भव नहीं। प्रभु के श्रीकृष्ण माधुर्य के प्रति आकृष्ट चित्त-मन की चरमोत्कण्ठामय हृदय विदारक तृष्णा का यही ज्वलन्त संकेत है। अंत में पागल की तरह श्रीकृष्ण के निमित्त प्रभु भागने लगे। स्वरूप उन्मादी प्रभु के पीछे दौड़े उन्हें हाथ से पकड़ कर निज स्थान पर लाकर बिठाया।

क्षणेके प्रभुर वाह्य हैल, स्वरूपेरे आज्ञा दिल, स्वरूप किछु कर मधुर गान ।  
स्वरूप गाय विद्यापति, गीतगोविन्देर गीति, शुनि, प्रभुर जुड़ाइल कान ॥  
“एइमत महाप्रभु प्रतिरात्रि दिने। उन्माद चेष्टित हय प्रलापवचने ॥  
एकदिने यत हय भावेर विकार । सहस्र मुखे वर्णे यदि नाहि पाय पार ॥  
जीव दीन कि करिवे ताहार वर्णन ? शाखाचन्द्र न्याय करि दिगदर्शन ॥

इहा येइ शुने तार जुड़ाय मन-कान । अलौकिक गूढ प्रेमेर हय चेष्टा-ज्ञान ॥  
 अद्भुत निगूड़ प्रेमेर माधुर्य-महिमा । आपनि आस्वादि प्रभु देखाइल सीमा ॥  
 अद्भुत दयालु चैतन्य अद्भुत वदान्य । ऐछे दयालु दाता लोके नाहि शुनि अन्य ॥  
 सर्वभावे भज लोक! चैतन्यचरण । याहा हैते पावे कृष्णप्रेमामृतधन ॥ 171 ॥

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद कहते हैं, महाप्रभु की लीला माधुरी श्रवण कर भक्त के कान और मन तृप्त हो जाते हैं। अलौकिक गूढ प्रेम चेष्टाओं का अनुभव होता है। अति रहस्यमय प्रेम-माधुर्य-महिमा का प्रभु ने स्वयं आस्वादन किया एवं विश्व को प्रेम की पराकाष्ठा दिखलाई। वदान्य-शिरोमणि प्रभु जिस माधुरी का आस्वादन करते हैं, विश्वमानव को उसी का दान भी करते हैं। ऐसा दयालु और दाता विश्व में और कोई नहीं। उनके चरणों में एकान्त शरणागत हो श्रीकृष्ण भजन करने से जीव कृष्ण प्रेमामृत धन लाभ कर धन्य होगा।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद अन्त्यलीला के 18वें परिच्छेद में प्रभु की सिन्धु में पतन लीला वर्णन के प्रारम्भ में स्पष्ट भाषा में उल्लेख करते हैं कि यह गम्भीरा लीला जीव के लिए सर्वथा अवर्णनीय है—

पूर्वें यैछे देखा-इछि दिगदरशन । तैछे जानिह विकार प्रलाप-वर्णन ॥  
 सहस्रवदने यवे कहये अनन्त । एकदिनेर लीलार तवु नाहि पाय अन्त ॥  
 कोटियुग पर्यन्त जदि लिखये गणेश । एकदिनेर लीलार तभु नाहि पाय शेष ॥  
 भक्तेर प्रेमविकार देखि कृष्णेर चमत्कार । कृष्णयार ना पाय अन्त केवा छार आर ॥  
 भक्तप्रेमेर जत दशा जे गति प्रकार । यत दुःख यत सुख यतेक विकार ॥  
 कृष्ण ताहा सम्यक् ना पारे जानिते । भक्तभाव अङ्गी करे ताहा आस्वादिते ॥  
 कृष्णरे नाचाय प्रेम भक्तेरे नाचाय । आपने नाचये-तिने नाचे एकठाय ॥  
 प्रेमेर विकार वर्णिते चाहे येइ जन । चान्द धरिते चाहे येन हइया वामन ॥  
 वायु यैछे सिन्धुजलेर हरे एक कण । कृष्णप्रेमा कणेर तैछे जीवेर स्पर्शन ॥  
 क्षणे क्षणे उठे प्रेमारे तरङ्ग अनन्त । जीव छार काहाँ तार पाइवेक अन्त ॥ 172 ॥

भगवत् प्रेम मानवीय भाव-भाषा से अतीत है— कोई एक अतीन्द्रिय चिन्मयानन्द रस वस्तु है। रहस्यमय वृन्दावनीय प्रेम तो और भी दुर्गम है।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधारानी का भाव अंगीकार कर जिस प्रेमरस का आस्वादन करते हैं, वह मानव की तो बात ही दूर, सहस्र वदन अनन्तदेव अनन्तकाल वर्णन करके भी प्रभु की एकदिन की लीला का अन्त नहीं पाते। गणेश यदि कोटि युग पर्यन्त लिखे तब भी एक दिन की लीला लिखकर समाप्त नहीं कर पाते। भक्त के प्रेम विकार दर्शन कर स्वयं श्रीकृष्ण भी

चमत्कृत हो उठते हैं, वे भी उसका अन्त नहीं पाते, वहाँ जीव की क्या सामर्थ्य। भक्त की प्रेममाधुरी सम्यक् रूप से नहीं जान पाते तभी तो श्रीकृष्ण भक्त-शिरोमणि श्रीराधा-श्रीराधा का भाव अंगीकार कर उसका आस्वादन करते हैं। प्रेम भक्त को नचाता है, श्रीकृष्ण को नचाता है एवं स्वयं भी अपूर्व नर्तन-चातुरी का विस्तार कर उनके संग-संग नाचता है। वहाँ तो सभी विभोर हैं- कौन किसकी कथा का वर्णन करेगा। अतः प्रेम के विकार अवर्णनीय हैं। यह एक वामन की चाँद को छू लेने की इच्छा के जैसा है।

श्रील कविराज गोस्वामीपाद ने महाप्रभु के प्रेम विकार का वर्णन करते हुए अपने मानस नेत्रों के समक्ष एक अति उच्च तरंग माला से युक्त एक विशाल प्रेम के महासागर को देखा। वह सागर असीम, अनन्त, दुष्पार एवं अतल-स्पर्श था!! वे अतिशय विस्मित और स्तम्भित हो गए। उनकी लेखनी स्थगित हो गई। वे समझ गए- यह दुरुह कार्य मानवीय भाव और भाषा के सर्वथा अतीत है। अतः वे जिस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं, वह मानव के लिए सिन्धु की मात्र एक बिन्दु स्पर्श से अधिक और कुछ भी नहीं है। इसलिए उन्होंने एक अति सत्य बात लिखी- “क्षणे क्षणे उठे प्रेमर तरंग अनन्त। जीव छार काहाँ तार पाइवेक अन्त ॥”

एक बार शरद ऋतु की ज्योत्स्ना-पुलकित रजनी में प्रभु निजजनों के संग कौतुक से भरे उद्यान-उद्यान में भ्रमण कर रहे थे। कभी रासलीला का श्लोक पढ़ते-सुनते और कभी प्रेमावेश में नृत्य करने लगते। कभी तो भावावेश में रासलीला का अनुकरण और कभी इधर-उधर दौड़ने लगते। और कभी मूर्छित होकर धरती पर धूल में लोटने लगते। रास का एक-एक श्लोक पाठ एवं श्रवण कर पूर्ववत् प्रलाप में उसका अर्थ आस्वादन करने लगते। इस भाव से रास के सभी श्लोकों का आस्वादन कर अन्त में जलकेलि का श्लोक पाठ करने लगे।

ताभिर्युतः श्रममपोहितमङ्गसङ्गधृष्टस्त्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः ।

गन्धर्व्वपालिभिरनुदुत आविशद्वाः श्रान्तो गजिभिरभराडिव भिन्नसेतुः ॥ 173 ॥

( भा० 10/33/22 )

“जिस प्रकार गजेन्द्र शैलसेतु के विदारण से क्लान्त होकर हथिनियों के संग जल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने लोक-वेद मर्यादा का अतिक्रमण कर श्रान्ति दूर करने के लिए गोपियों से परिवृत्त होकर यमुना के जल में प्रवेश किया। उस समय गोपांगनाओं के अंग संग से

सम्मर्दित, उनके कुच-कुमकुम से रंजित, कृष्ण के कण्ठ में स्थित पुष्पमाला की गंध से आकृष्ट होकर गंधर्वपति की तरह गीति परायण भ्रमरों ने उनका अनुगमन किया था।” श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

एङ्मत महाप्रभु भ्रमिते भ्रमिते । एक टोटा हैते समुद्र देखे आचम्बिते ॥  
चन्द्रकान्त्यो उच्छलित तरङ्ग उज्ज्वल । झलमलकरे येन यमुनार जल ॥  
यमुनार भ्रमे प्रभु धाइया चलिला । अलक्षिते याइ सिन्धुजले झाँप दिला ॥  
पड़ितेइ हैल मूर्च्छा किछुइ ना जाने । कभू डुबाय कभू भासाय तरङ्गे गणे ॥  
तरङ्गे बहिया बले जेन शुष्ककाष्ठ । के बुझिते पारे एइ चैतन्येर नाट ॥  
कोणार्के दिगेप्रभुकेतरङ्गे लजायाय । कभू डुबाइया राखे कभू भासाइया लया जाय ॥  
यमुनाते जलकेलि गोपीगण सङ्गे । कृष्ण करे महाप्रभु मग्न सेइ रङ्गे ॥

प्रभु की देह समुद्र में मग्न और उनकी देह रससिन्धु में निमग्न। वे यमुना में गोपियों के संग श्रीकृष्ण की जलकेलि लीला संदर्शन सुख में विभोर हो सिन्धु की तरंगों से कोणार्क की दिशा में बहने लगे। इधर श्रीपाद स्वरूप प्रभृति भक्तगण प्रभु के अदर्शन से व्याकुल हो गए! चारों ओर कोलाहल मच गया, प्रभु कहाँ चले गए इस पर भक्तवृन्द नाना संशय करने लगे। प्रभु क्या जगन्नाथ मन्दिर या अन्य किसी देवालय में दर्शनों को गए हैं? या फिर उन्माद दशा में अन्य किसी उद्यान में चले गए हैं? गुंडीचा मन्दिर में अथवा नरेन्द्र (सरोवर) की ओर गए हैं? अथवा चटक पर्वत या कोणार्क की दिशा में गए हैं? व्याकुल भाव से भक्तवृन्द उन्हीं स्थानों पर अन्वेषण करने लगे। किसी-किसी ने समुद्र की ओर गमन किया वहाँ युक्ति कर कुछ एक जन चिराइया पर्वत की ओर चले गए। इसी प्रकार अन्वेषण करते-करते रात्रि समाप्त हो गई। प्रभु के अदर्शनों से व्याकुल हो सभी ने सोचा कि प्रभु अन्तर्धान हो गए हैं। श्रीपाद स्वरूप कुछ एक भक्तों के संग पूर्व दिशा में समुद्र के तीर पर एवं समुद्र के जल में प्रभु का अन्वेषण करने लगे।

इसी प्रकार अन्वेषण करते-करते सहसा स्वरूप ने एक धीवर (मछुआरा) को देखा। उसके कंधे पर जाल था, वह कभी हंसता, कभी रोता और कभी हरि-हरि कह कर नृत्य करने लगता। केवट के भाव देखकर स्वरूप ने उसके निकट जाकर जिज्ञासा की— ‘अरे, क्या तुमने इस पथ पर किसी को देखा है? और तुम्हारे ऐसे भाव क्यों हो रहे हैं? उसने कहा— ‘इस पथ पर मैंने किसी को नहीं देखा। मैंने समुद्र में जाल डाला था, सहसा मुझे जाल में बहुत भार का अनुभव हुआ, ऐसा लगा— बड़ी मछली फंसी है; जाल खींचा। तो देखा एक

मृत मनुष्य है। देखकर मैं भयभीत हो गया। जाल खोलते समय उसके अंगों से स्पर्श हो गया और मात्र स्पर्श से ही वह भूत मेरे हृदय में प्रवेश कर गया। उसी से मेरी देह में कम्पन हो रहा है, वाक्य स्तम्भित हो रहे हैं, नेत्रों से जल बह रहा है और शरीर रोमांचित हो रहा है। कौन जाने वह भूत था या ब्रह्मदेवता, देखने मात्र से ही शरीर में प्रवेश कर गया। उसका शरीर पाँच-छः हाथ दीर्घ था, एक-एक हाथ तीन-तीन हाथ जितना लम्बा था। हाथों-पैरों की सब अस्थि-सन्धि अलग थी, देखते ही प्राण कांप गए। उसकी दोनों आँखें ऊपर की ओर उठी थी, रह-रहकर गों-गों की आवाज करता था और कभी अचेतन हो जाता था। उसी शव के स्पर्श से मैं भूतग्रस्त हो गया हूँ तभी ओझा के पास जा रहा हूँ। मैं प्रति रात्रि को मछली पकड़ने जाता हूँ और नृसिंहदेव का स्मरण करता हूँ जिससे भूत मुझे छू भी ना पाए। किन्तु नृसिंह के नाम से तो यह भूत दोगुनी शक्ति से मेरे पीछे आता था। सावधान! उस तरफ तुम जाना नहीं, उधर जाने से ही यह भूत तुम सभी को लग जाएगा।' मस्त्य जीवी के मुख से सब सुनकर जैसे स्वरूप की देह में प्राण लौट आए, वे समझ गए कि महाप्रभु ने ही इस पर कृपा की है।

एत शुनि स्वरूप गोसाजि सबतत्त्व जानि । जालियाके कहे किछु सुमधुर वाणी ॥  
 आमि बड़ ओझा जानि भूत छाड़ाइते । मन्त्र पड़ि श्रीहस्त दिल तार माथे ॥  
 तिन चापड़ मारि कहे भूत पालाइल । ' भय ना पाइहु' बलि सुस्थिर करिल ॥  
 एके प्रेम, आरे भय, द्विगुण अस्थिर । भय अंश गेल, सेइ किछु हैल धीर ॥  
 स्वरूप कहे-यारे तुमि कर भूतज्ञान । भूत नहे तेहों-कृष्णचैतन्य भगवान् ॥  
 प्रेमावेशे पड़िला तेहो समुद्रेर जले । तारे तुमि उठाइयाछ आपनार जाले ॥ 175 ॥

“अरे धीवर! तुम बहुत भाग्यवान हो, योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी जिसे अपनी साधना के जाल से बांधने में सक्षम नहीं होते, तुमने उसे मछली पकड़ने के जाल से बांध लिया। उनके स्पर्श से तुममें प्रेम का उदय हुआ है, भय मत करो, वे कहाँ हैं हमें दिखाओ।” किन्तु धीवर को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, वह कहने लगा- मैंने प्रभु को कितनी बार देखा है- वे कितने सुन्दर हैं और यह तो अति विकृत आकार का है।' स्वरूप ने कहा- “प्रेम के विकार से उनका यह रूप है- वे वही सुन्दर ठाकुर श्रीकृष्णचैतन्य ही हैं। धीवर आश्वस्त हो गया और सभी को ले जाकर प्रभु को दिखाया। श्रीचैतन्यचरितामृत में उनकी दशा वर्णित है—

भुमि पड़ि आछे प्रभु, दीर्घ सब काय । जले श्वेततनु बालू लागियाछे गाय ॥

अति दीर्घ शिथिल तनु चर्म नटकाय । दूर पथ, उठाइया घरे आनन ना जाय ॥176 ॥

प्रभु की ऐसी अवस्था दर्शन कर भक्तगण उन्हें घर ले आए। गीला कोपीन निकलवा कर शुष्क कोपीन पहनाई। बालू झाड़कर बहिर्वास में सुला दिया। तब भी वे अचेतन ही थे, उन्हें चेतन कराने का एकमात्र उपाय श्रीकृष्णनाम संकीर्तन ही है। सो सभी भक्तगण मिलकर उच्चस्वर में हरिनाम संकीर्तन करने लगे। बहुत क्षणों के बाद प्रभु के कानों में श्रीकृष्णनाम का प्रवेश हुआ। वे हुंकार करते हुए उठे और तत्क्षणात् उनकी अस्थि-संधि यथास्थान संलग्न हो गई। भक्तगणों ने परमानन्द लाभ किया। अर्धबाह्य अवस्था में प्रभु इधर-उधर देखने लगे।

पहले कहा गया है- महाप्रभु उस समय तीन अवस्थाओं में अवस्थान करते थे- अंतर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा। अंतर्दशा में प्रभु मूर्च्छित अवस्था में ब्रजलीला रस में मग्न रहते। अर्धबाह्य दशा अंतर्दशा की कुछ घोर अवस्था है- कुछ बाह्य ज्ञान रहता है, इसी अवस्था में संज्ञा लाभ कर वे प्रलाप वाणी कहते। स्वरूप दामोदर-रामानन्दराय को सखी कहकर सम्बोधन करते। जो भक्तगण उनके निकट रहते थे उन्हें इसका बहुत अल्पज्ञान ही होता। बाह्य दशा में स्वयं को “श्रीकृष्णचैतन्य” रूप में पहचान पाते। इन तीनों दशाओं में ही ब्रजरस की आस्वादन धारा अविच्छिन्न भाव से चलती। यहाँ अर्धबाह्य दशा में प्रभु अपनी अंतर्दशा में दृष्ट लीला को आकाश से कहने लगे—

कालिन्दी देखिया आमि गेलाउ वृन्दावन । देखि-जलक्रीडा करे ब्रजेन्द्रनन्दन ॥  
राधिकादि गोपीगण सङ्गे एकत्र मेलि । यमुनार जले महारङ्गे करे केलि ॥  
तीरे रहि देखि सखीगण-सङ्गे । एक सखी सखीगणे देखाय से रङ्गे ॥  
“पट्वस्त्र अलङ्कारे, समर्पिया सखीकरे, सूक्ष्म शुक्ल वस्त्र परिधान ।  
कृष्ण लैया कान्तगण, कैल जलावगाहन, जलकेलि रचिल सूठाम ॥

सखि हे! देख कृष्णोर जलकेलिरङ्गे ।

कृष्ण मत्तकरिवर, चञ्चल करपुष्कर, गोपीगण करिणीर सङ्ग ॥ध्रु ॥  
आरम्भिल जलकेलि, अन्योन्ये जल फेलाफेलि, हुड़ाहड़ि वर्षे जलासार ।  
सभे जय पराजय, नाहि किछु निश्चय, जलयुद्ध बाढिल अपार ॥  
वर्षे स्थिर तड़िदगण, सिञ्चे श्याम नवघन, धन वर्षे तड़ित उपरे ।  
सखीगणे नयन, तृषित चातकगण, से अमृत सुखे पान करे ॥  
प्रथमे युद्ध जलाजलि, तबे युद्ध कराकरि, तार पाछे युद्ध मुखामुखि ।  
तबे युद्ध हृदाहृदि, तबे हैल रदारदि, तबे हैल युद्ध नखानखि ॥

सहस्रकर जलसेके, सहस्र नेत्रे गोपी देखे, सहस्रपदे निकट गमने।  
सहस्र मुख चुम्बने, सहस्र वपु सङ्गमे, गोपीनर्म शुने सहस्रकाने॥  
कृष्ण राधा लइया बले, गेला कण्ठदन्ध जले, छाड़िल ताँहा जाँहा अगाध पानी।  
तेहो कृष्ण कण्ठधरि, भासे जलेर ऊपरि, गजोखाते जैछे कमलिनी॥

ऐछे चित्र क्रीड़ा करि, तीरे आइला श्रीहरि, सङ्गे लैया सब कान्तगण।  
गन्ध-तैल मर्दन, आमलकि उद्धर्तन, सेवा करे तीरे सखीगण॥  
पुनरपि कैल स्नान, शुष्कवस्त्र परिधान, रत्न मन्दिरे कैल आगमन।  
वृन्दाकृत सम्भार, गन्धपुष्प अलङ्कार, वनावेश करिल रचन॥  
वृन्दावने तरुलता, अद्भुत ताँहार कथा, वारमास धरे फूलफल।  
वृन्दावने देवीगण, कुञ्जदासी जतजन, फलपाड़ि आनिल सकल॥  
उत्तम संस्कार करि, बड़ बड़ थालि भरि, रत्नमन्दिर पिण्डार ऊपरे।  
भक्षणेर क्षम करि, धरियाछे सारि-सारि, आगे आसन वसिवार तरे॥  
एक नारिकेल नानाजाती, एक आम्र नानाभाँति, कला कोलि विविध प्रकार।  
पनस-खज्जुर कमला, नारङ्ग जाम समतारा, द्राक्षा बादाम मेवाया यत आर॥  
खरबूजा खिरिणी ताल, केशर पानिफल मृणाल, बिल्व पिलू दाड़िमादि जत।  
कोन देशे कारो ख्याति, वृन्दावने सब प्राप्ति, सहस्रजाति लेखा जाय कत?॥  
गङ्गाजल अमृतकेलि, पीषुषग्रन्थि कर्पूरकेलि, सरपूपी अमृत-पद्म-चिनि।  
खण्ड-क्षीरिसार वृक्ष, घरे करि नाना भक्ष्य, राधा जाहा कृष्ण लागि आनि॥  
भक्षेर परिपाटी देखि, कृष्ण हैल महासुखी, वसि कैल वन्यभोजन।  
सङ्गे लैया सखीगण, राधा कैल भोजन, दोहै कैल मन्दिरे शयन॥  
केहो करे वीजन, केहो पादसम्वाहन, केहो कराय ताम्बूल भक्षण।  
राधाकृष्णनिद्रा गेला, सखीगण शयन कैला, देखि आमार सुखी हइल मन॥  
हेनकाले मोरे धरि, महा कोलाहल करि, तुमि सब इहाँ लैया आइला।  
काहाँ यमुना वृन्दावन, काहाँ कृष्ण गोपीगण, सेइ सुख भङ्ग कराइला॥177॥

इसके बाद प्रभु को बाह्यज्ञान हुआ। उन्होंने चारों ओर देखा, वे एक दूरवर्ती अपरिचित स्थान पर समुद्र के किनारे अवस्थान कर रहे थे। भक्तगण उन्हें चारों ओर से घेर कर खड़े थे। उन्होंने स्वरूप से जिज्ञासा की, कि वे उन्हें इस दूरवर्ती स्थान पर किस उद्देश्य से लाए हैं? स्वरूप ने कहा- 'प्रभु, तुम यमुना के भ्रम से समुद्र में कूद गए थे और बहते-बहते इतनी दूर आ गए हो। हम सारी रात तुम्हें खोज रहे थे। तुम समुद्र में डूब रहे थे, यह धीवर अपने जाल से तुम्हें निकाल कर ले आया। तुम्हारे स्पर्श से यह प्रेमोन्मत्त हो गया था, किन्तु भूत ग्रस्त हो गया है ऐसा सोचकर ओझा के पास जा रहा था, तब

तुम्हारी खोज में लगे हमने इससे तुम्हारा पता पाया एवं यहाँ आकर तुम्हें देखा। प्रभु तुम तो मूर्च्छा के छल से वृन्दावन में लीला दर्शन करते हो और हम तुम्हारी मूर्च्छा दर्शन कर दुखी होते हैं। बहुत देर कृष्ण नाम कीर्तन से तुम्हारी अर्द्धबाह्य दशा हुई, तब तुमने जो यमुना में सखियों के संग श्रीराधाकृष्ण की जल क्रीड़ा, स्नान, वेषभूषा, भोजन, शयन आदि के विषय में प्रलाप किया वह हमने सुना।

प्रभु ने कहा, “मैंने स्वप्न में देखा कि मैं वृन्दावन गया हूँ, वहाँ श्रीकृष्ण गोपियों के संग रासलीला कर रहे हैं। रास के अंत में जल क्रीड़ा कर फिर वन में भोजन कर रहे हैं, लगता है मैं वही देखकर प्रलाप कर रहा था।” तब स्वरूप गोसाँई उन्हें स्नान करा कर आनन्दित मन से घर ले आए।

महाप्रभु अहर्निशी इसी भाव से श्रीकृष्णप्रेम में विभोर रहते। जब बाह्य-ज्ञान होता, तब महाभागवत के समान हृदय भक्ति-रस से परिपूर्ण रहता। कौन कहाँ है, कैसा है, यह सभी खबर उनके पार्षदगण उन्हें देते रहते। स्नेहमयी वृद्धा जननी की बात सुनते, तो वे अतिशय व्याकुल हो जाते। माँ किस भाव से अपने निमाई की चिन्ता में दिन-रात व्यतीत करती हैं। निमाई की प्रिय वस्तु देखते ही व्याकुल भाव से रुदन करने लगती हैं। रंधन के समय वे सोचती हैं, यह शाक (सब्जी) मेरे निमाई को कितनी प्रिय है, हाय निमाई तो घर में ही नहीं! यह भोजन कौन ग्रहण करेगा? माँ की यह सब बातें सोचते-सोचते गौरांग अधीर हो जाते। नयन अश्रुओं से वक्ष भीग जाता। प्रतिवर्ष माँ को देखने के लिए, उन्हें सान्त्वना देने के लिए पण्डित जगदानन्द को नादिया भेजते। श्रील कविराज गोस्वामीपाद ने यह विषय अति मर्मस्पर्शी और करुण भाषा में वर्णन किया है—

प्रभुर अत्यन्त प्रिय पण्डित-जगदानन्द । जाँहार चरित्रे प्रभु पायेन आनन्द ॥  
 प्रतिवत्सर प्रभु तौरै पाठान नदीयाते । विच्छेद-दुःखिता जानि आशवासिते ॥  
 नदीया चलह माताके कहिउ नमस्कार । आमार नासमे पादपद्म धरिह ताँहार ॥  
 कहिय ताँहारे-तुमि करह स्मरण । नित्य आसि आमि तोमार वन्दिये चरण ॥  
 जेदिने तोमार इच्छे कराइते भोजन । सेइ दिने आसि अवश्य करिये भक्षण ॥  
 तोमार सेवा छाड़ि आमि करिल संन्यास । वातूल हइया आमि कैल धर्मनाश ॥  
 एइ अपराध तुमि ना लइह आमार । तोमार अधीन आमि-पुत्र तोमार ॥  
 नीलाचले आछि आमि तोमार आज्ञाते । यावत् जीव तावत् आमि नारिव छाड़िते ॥ 178 ॥



श्रीगौरांग जगदानन्द को कितने प्राणों की बात कहते हैं, यह चिन्तन करने से तो निष्ठुर चित्त भी विगलित हो जाता है। जगदानन्द नवद्वीप जाने को प्रस्तुत हुए तो महाप्रभु ने माँ के लिए उत्तम-उत्तम महाप्रसाद और वस्त्र लाकर जगदानन्द को हाथ में दिए। भक्तों के लिए भी पृथक् भाव से दिए एवं कहा, “मेरी दुखिया माँ को यह महाप्रसाद देना और मेरा प्रणाम कहना। तुम मेरी ओर से मेरी माँ के श्रीचरण पकड़कर उन्हें प्रणाम करना एवं कहना- जब वे मेरा स्मरण करती हैं मैं तभी उनकी वन्दना करता हूँ। जिस दिन भी उनकी मुझे भोजन कराने की इच्छा होगी- उस दिन अति अवश्य मैं माँ के हाथ से अन्न ग्रहण करूँगा। माँ से कहना कि तुम्हारे निमाई ने कहा है- माँ की सेवा मेरी परमधर्म है किन्तु माँ की सेवा छोड़कर मैंने संन्यास ले लिया- पागल होकर निज धर्म का नाश कर लिया। माँ! तुम मेरा यह अपराध मत लेना। मैं तुम्हारी संतान हूँ सतत तुम्हारे ही आधीन हूँ। तुम्हारे आदेश से ही मैं नीलाचल वास कर रहा हूँ। जब तक जीवित रहूँगा मैं तुम्हें नहीं छोड़ पाऊँगा।” कहते-कहते प्रभु के नयन युगल अश्रुसिक्त हो गए। मुख-मण्डल पर अश्रुधारा बहने लगी। प्रभु ने बड़े कष्ट से निज भाव सम्बरण कर जगदानन्द को विदा किया।

महाप्रभु की प्रेरणा से पण्डित जगदानन्द यथासमय नवद्वीप में शची माता के घर आ पहुँचे। माँ के श्रीचरणों में प्रणत होकर जगदानन्द ने प्रभु द्वारा प्रेरित प्रसाद, वस्त्र आदि माँ के हाथों में दिए। प्रभु ने जो सन्देश-वार्ता माँ के लिए भेजी थी, जगदानन्द ने माँ के श्रीचरण पकड़कर एक-एक कर सभी बातें निवेदन कर दीं। माँ के मुखमण्डल पर प्रबल वेग से अश्रुधारा बहने लगी। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया वे कुछ कह नहीं पाईं। माँ को पत्थर की मूर्ति के समान नीरव निश्चल देखकर जगदानन्द सान्त्वना देने लगे- ‘माँ! स्थिर हो जाओ, धैर्य धारण करो। आपके प्राणों के प्राण निमाई को कोई दुख नहीं है, वे अहर्निशी कृष्ण-प्रेम रस में डूबे रहते हैं। हम सदा उनकी सेवा करते हैं। जब बाह्यज्ञान होता है तब आपकी कितनी बातें करता है। आपकी बात स्मरण होते ही वह अश्रु बहाने लगता है। और कभी शिशु के समान माँ-माँ कहते-कहते अस्थिर हो जाता है।’

माँ कुछ धैर्य धारण कर कहती है- ‘बाबा जगदानन्द! यह बात और मत कहो। मैं बहुत अभागिनी हूँ। जो ऐसी संतान को छोड़कर यहाँ जीवित हूँ। मेरी नयन-मणि को मैंने तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है। तुम ही उसे देखो।’ माँ

रोते-रोते उनके प्राण-तुल्य निमाई द्वारा प्रेरित प्रसाद को खोलने लगीं। कुछ प्रसाद ग्रहण कर शेष वधूमाता को देने के लिए गृह के भीतर गई तो देखा कि माता एवं जगदानन्द की परस्पर वार्ता श्रवण कर प्रियाजी मूर्छित हो धरती पर गिरी हैं। धूल-धूसरित, उलझे केशों से मुखमण्डल आच्छन्न है, केश सहित मुख-मण्डल अश्रुजल से सिक्त है। वधूमाता की दशा दर्शन कर माँ उच्च-स्वर में रोदन करने लगी। माँ का क्रन्दन श्रवण कर निकटवर्ती गृह की ठाकुराणीगण ने आकर प्रियाजी को सचेतन किया, उन्हें और माँ को सान्त्वना दी। और जगदानन्द की भी आहार की व्यवस्था करने लगीं।

जगदानन्द के आगमन से शचीमाता के घर में महाप्रभु का कुशल जानने के लिए उत्कण्ठित नवद्वीप वासियों का समागम होने लगा, बहुत लोग एकत्रित हो गए। जगदानन्द ने सभी से महाप्रभु की कुशल वार्ता कही। माँ की नयनधारा को विराम नहीं हुआ, अश्रुजल से भीगते-भीगते माँ ने निमाई द्वारा प्रेरित प्रसाद को सभी में वितरित किया। श्रीजगदानन्द पण्डित ने माँ की सान्त्वना के लिए एक मास पर्यन्त नवद्वीप में वास किया, गौर-गत प्राण नवद्वीप वासियों को महाप्रभु की कथाएँ सुनाई और फिर श्रीअद्वैत आचार्य के निकट शान्तिपुर को चले गए। जगदानन्द को प्राप्त कर आचार्य ने परमानन्द लाभ किया। जगदानन्द के मुख से महाप्रभु की कितनी-कितनी कथाएँ श्रवण कर आचार्य आनन्द में मग्न हो गए। सभी शान्तिपुर वासियों को जगदानन्द ने महाप्रभु की कथाएँ श्रवण करा आनन्द दान किया। विदाई के समय श्रीअद्वैत आचार्य ने महाप्रभु से कहने के लिए जगदानन्द के निकट एक तर्जा-पहेली की भाषा में कुछ निगूढ़ बात कही—

प्रभु के कहिउ आमार कोटि नमस्कार।

एइ निवेदन तार चरणे आमार॥

वाउल के कहिउ-लोके हइल बाउल।

वाउल के कहिउ-हाटे ना विकाय चाउल॥

वाउल के कहिउ-काजे नाहिक आउल।

वाउल के कहिउ-इहा कहियाछे वाउल॥179॥

आचार्य की यह पहेली श्रवण कर जगदानन्द हंसने लगे- कहा—‘अच्छ आपकी यह बात अविकल प्रभु के निकट कह दूँगा। इसके बाद जगदानन्द माता से विदा लेकर यथासमय प्रभु के निकट पहुँच गए। प्रभु के समक्ष माता का संवाद, नादिया एवं शान्तिपुर निवासी भक्तगणों का संवाद प्रस्तुत कर

आचार्य की पहेली को अविकल महाप्रभु के निकट कह दिया। प्रभु उसे श्रवण कर थोड़ा हंसे और कहा- “अच्छ, उनकी जो आज्ञा है वही होगा।” श्रीपाद स्वरूप निकट ही थे, वे आचार्य की पहेली श्रवण कर कहने लगे- “प्रभु इसका अर्थ तो कुछ भी समझ नहीं आया।”

**प्रभु कहे-आचार्य हय पूजक प्रवल। आगमशास्त्रे विधि-विधाने कुशल ॥  
उपासना लागि देवेर करे आराधन। पूजा-लागि कथोकाल करेनिरोधन ॥  
पूजा-निर्वाह हैले पाछे करे विसर्जन। तरजार ना जानि अर्थ-किवा तार मन ॥  
महायोगेश्वर आचार्य तरजाते समर्थ। आमि हो बुझिते नारि तरजार अर्थ ॥ 180 ॥**

महाप्रभु ने पहेली का जो आभास दिया उससे समझ आता है कि- आचार्य महाप्रभु को उपासना के लिए एवं विश्व में प्रेमभक्ति के प्रचार के लिए आह्वान कर लाए थे। यद्यपि मुख्य रूप से तीन-वांछओं के आस्वादन के लिए ही प्रभु का अवतरण है तथापि किसी प्रेमिक भक्त के आकुल आह्वान के बिना वे विश्व में अवतीर्ण हो नहीं पाते। तभी श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा है-

**राधिकार भावकान्ति अङ्गीकार बिने। सेइ तिन सुख कभु नहे आस्वादने ॥  
राधाभाव अङ्गीकरि धरि तार वर्ण। तिनसुख आस्वादिते हव अवतीर्ण ॥  
सर्वभावे कैल कृष्ण एइत निश्चय। हेनकाले आइल युगावतार समय ॥  
सेइ काले श्रीअद्वैत करेन आराधन। ताँहार हुङ्गारे कैल कृष्णआकर्षण ॥ 181 ॥**

प्रेम के पुजारी आचार्य ने देखा कि प्रेम वितरण तो छोटी बात है, उन्होंने प्रेम के सैलाब में विश्व में सभी को (नीच, दुष्ट आदि सभी को) निमग्न कर दिया है। जिस उद्देश्य से उन्होंने प्रभु का आह्वान किया था, वह उद्देश्य प्रयोजन से भी परे सिद्ध हुआ है। अब इस समय उत्कट विरह ज्वाला में अहर्निशी उनकी देह विगलित हो कूर्माकृति, अस्थि-संधि वियोग आदि दशा को प्राप्त हो रही है, प्रेमीभक्त के लिए प्राण कोटि प्रियतम प्रभु की ऐसी दशा असहनीय है, तभी आचार्य प्रभु को विदा कर रहे हैं- यदि इच्छा हो तो अब प्रभु अप्रकट लीला में प्रवेश कर सकते हैं, यहाँ का कार्य समाप्त हो गया है। प्रभु भक्तों के निकट सब बात व्यक्त करके भी पुनः बात छुपाते हुए कहते हैं- ‘आचार्य महायोगेश्वर हैं पहेली करने में समर्थ है, इसके अतिरिक्त भी पहेली का कोई अर्थ हो सकता है। मैं भी उनकी पहेली का अर्थ समझ नहीं पाया।’ प्रभु की बात सुनकर स्वरूप अनमने से हो गए, भक्तगण भी बात सुनकर विस्मित हो गए।

सेइ दिन हैते प्रभुर आर दशा हैल । कृष्णोर विच्छेद दशा द्विगुण बाढ़िल ॥  
 उन्माद-प्रलाप-चेष्टा करे रात्रि दिने । राधाभाववेशे विरह बाढ़े अनुक्षणे ॥  
 आचम्बिते स्फूरे कृष्णोर मथुरागमन । उद्घूर्णा दश हैल उन्माद लक्षण ॥  
 रामानन्देर गलाधरि करे प्रलपन । स्वरूपे पूछये मानि निजसखीजन ॥ 182 ॥

उस दिन से श्रीमन्महाप्रभु के भाव राज्य में एक विशाल परिवर्तन दिखने लगा। श्रीकृष्ण विरह की निदारूण दशा दो गुणा अधिक वर्धित हो गई। उनकी देह तो विश्व में ही थी किन्तु वे जगत से अतीत किसी विशाल भाव में विभोर हो गये। रह-रह कर उन्माद अवस्था, प्रलाप और रोदन। बाह्यावेश तो रहता ही नहीं था, जो कुछ भी आवेश रहता था वह केवल अर्ध-बाह्य दशा में। श्रीकृष्ण विरह की उस महा आकुलता से, उस हृदय विदारक हाहाकार से, उस पाषाण को भी द्रवित कर देने वाले रोदन से, क्षण-क्षण में मूर्च्छा से- महाप्रभु की इस महाभाव-तरंग से भक्तगण व्याकुल हो गए। राधाभाव में प्रभु को श्रीकृष्ण के मथुरा गमन का स्फुरण हुआ, उद्घूर्णा दशा आ उपस्थित हुई। महा उन्माद दशा प्रकाशित हुई। रामानन्द के कण्ठ लगकर प्रलाप करने लगे। अपनी सखी समझकर स्वरूप के निकट मनोभाव व्यक्त करने लगे। माथुर विरह-कातरा श्रीराधारानी ने उद्घूर्णा दशा में श्रीविशाखा के निकट जो श्रीकृष्ण-वार्ता जिज्ञासा की थी प्रभु वही श्लोक पाठ कर प्रलाप करने लगे—

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व शिखिचन्द्रिकालंकृतिः-  
 क्व चन्द्रमुरलीधरः क्व नू सुरेन्द्रनीलद्युतिः।  
 क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधिः-  
 निधिर्मम सुहृत्तमः क्व वत हन्त हा धिग्वधिम् ॥ 183 ॥

(श्रीललितमाधव - 3/25)

“सखि! वह नन्दकुल चन्द्रमा कहाँ हैं, वह शिखिपिच्छ भूषण कहाँ हैं? वह मृदुमन्द मुरली-रव कारी श्रीकृष्ण कहाँ हैं, इन्द्रनील मणि की जैसी कान्ति वाला मेरा श्यामल सुन्दर कहाँ हैं? वह रास रस ताण्डवी कहाँ हैं, मेरे प्राण रक्षा की महोषधि कहाँ हैं? हाय-हाय! मेरा प्राणधन, मेरा सुहृत् श्रीकृष्ण कहाँ हैं? ऐसे प्रियतम से विधाता ने मेरा वियोग करा दिया- उस विधाता को धिक्कार है।” महाप्रभु का प्रलाप—

ब्रजेन्द्रकुल-दुग्ध-सिन्धु, कृष्ण ताहे पूर्ण इन्दु, जन्म कैल जगत उजोर ।  
 कान्त्यामृत येवा पिए, निरन्तर पिया जीये, ब्रज-जनेर नयन-चकोर ॥

सखि हे! कोथा कृष्ण कराह दर्शन ।

क्षणोक जाँहार मुख, ना देखिले फाटे बूक, शीघ्र देखाओ ना रहे जीवन ॥ ध्रु ॥  
 एइ ब्रजेर रमणी, कामार्क तप्त कुमुदिनी, निजकरामृत दिया पान ।  
 प्रफुल्लित करे येइ, काँहा मोर चन्द्र सेइ, देखाओ सखि! राख मोर प्राण ॥  
 काँहा से चूड़ार ठान, शिखिपुच्छेर उड़ान, नवमेघे येन इन्द्रधनु ।  
 पीताम्बर तडिदद्युति, मुक्तामाला वकपाँति, नवाम्बुद जिनि श्यामतनु ॥  
 एकबार यार नयने लागे, सदा तार हृदये जागे, कृष्णतनु येन आम्र आठ ।  
 नारीर मने पैशे याय, यत्ने नाहि वाहिराय, तनु नहे-शैयाकुलेर काँटा ॥  
 जिनिया तमालद्युति, इन्द्रनील सम कान्ति, सेइ कान्ति जगत माताय ।  
 शृङ्गारस सार छानि, ताते चन्द्र ज्योत्सना सानि, जानि विधि निरमिल ताय ॥  
 काँहा से मुरलीध्वनि, नवा भ्रगर्जित जिनि, जगदाकर्षे श्रवणे याँहार ।  
 उठि धाय ब्रजजन, तुषित चातकगण, आसि पिये कान्त्यामृतधार ॥  
 मोर सेइ कलानिधि, प्राणरक्षा-महौषधि, सखि! मोर तेँहो सुहृत्तम ।  
 देह जिये ताहाँ विने, धिक् एइ जीवने, विधि करे एत बिडम्बन ॥  
 ये जन जीते नाहि चाय, तारे केने जीयाय, विधिप्रति उठे क्रोध शोक ।  
 विधिर करे भर्त्सन, कृष्णे देह ओलाहन, पढ़ि भागवतेर एक श्लोक ॥ 184 ॥

ऐसी प्रसिद्धि है कि समुद्र मंथन के समय क्षीर-सिन्धु से चन्द्र उत्पन्न हुआ था। श्रीराधारानी कहती हैं- “सखि! नन्दकुलरूपी दुग्ध-सिन्धु से श्रीकृष्ण-चन्द्र का आविर्भाव हुआ है। इस जगत का चन्द्र तो सकलंक है और फिर कला-कला से घटता एवं बढ़ता है। श्रीकृष्ण निष्कलंक चन्द्र है एवं सतत ही पूर्ण हैं। इन्होंने आविर्भूत होकर विश्व को उज्ज्वलित किया है। पूर्णचन्द्र जगत का आनन्ददाता है किन्तु चकोर का तो जीवन ही है उस चन्द्र की किरणें, उसी प्रकार कृष्णचन्द्र विश्व के आनन्द दाता हैं किन्तु ब्रजजन के नयन चकोर तो श्रीकृष्ण का रूपामृत पान करके ही जीवित हैं। सखि! वह श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ हैं, मुझे दर्शन कराओ। क्षण भर भी उसका मुख न देखूँ तो मेरा हृदय फटता है, शीघ्र दर्शन कराओ अन्यथा इस देह में अब प्राण नहीं रहेंगे।’

सखि! ब्रजरमणियाँ कुमुदिनी की तरह कोमल हैं। सूर्य की किरणों से कुमुदिनी तप कर शुष्क हो जाती है एवं रात्रि के समय चन्द्र की स्निग्ध किरणों से प्रफुल्लित हो जाती है; उसी प्रकार काम (कृष्ण सेवा की प्रबल आकांक्षा) रूपी सूर्य के ताप से ब्रजरमणियाँ शुष्क हो जाती हैं तब कृष्णचन्द्र अपनी स्निग्ध कोमल अंगकान्ति से प्रफुल्लित करते हैं। सखी वह कृष्णचन्द्र

कहाँ हैं, शीघ्र उसे दिखा कर मेरी प्राण रक्षा करो। मयूरपिच्छ द्वारा श्रीकृष्ण अपूर्व भंगिमा से अपना चूड़ा बंधन करते हैं, नव-मेघों में इन्द्रधनुष के समान उसकी क्या मनोहर शोभा होती है, वह चूड़ा कहाँ हैं। श्रीकृष्णरूप नवमेघ में उनका पीताम्बर स्थिर विद्युत के समान है एवं उनके वक्ष की मुक्तामाला वक-पंक्ति के समान शोभा पाती है। सखि! इस नवमेघ की अपेक्षा भी अधिक मनोहर श्याम तनु जिसके नयनों के समक्ष एकबार आ जाता है वह फिर सर्वदा उसके हृदय में वास करता है। आम के पेड़ का गोंद जैसे अंग से लग जाने पर सहज ही छूटता नहीं है उसी प्रकार नारी के मन से यदि कृष्ण की अपरूप अंग छटा लग जाती है तो नारी के शत चेष्टा करने पर भी वह उसे मन से पोंछ (साफ) नहीं पाती।

सखि! अपने दुख की क्या बात कहूँ, श्रीकृष्ण का रूप (से ही) के कांटे के समान हैं, देह में चुभ जाने पर यह कांटा फिर सहज ही बाहर नहीं निकलता और बाहर न आने तक सर्वदा देह को ज्वाला देता रहता है। उसी प्रकार श्रीकृष्ण तनुरूप कांटा एक बार नारी के मन में बिंध जाए तो फिर वह हृदय से नहीं निकलता और सर्वदा ज्वाला देता रहता है।

सखि! श्रीकृष्ण के अंगों का श्याम वर्ण अत्यन्त मनोहारी है, यह नव तमाल से भी अधिक श्यामल है एवं इन्द्रनील मणि से भी अधिक उज्वल द्युति पूर्ण है। उस देह की अपरूप श्याम कान्ति समस्त विश्व को उन्मत्त कर देती है। सखी, कृष्ण की अंग शोभा से तुलना करने योग्य वस्तु इस विश्व में कोई भी नहीं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी अपूर्व विधाता ने शृंगार रस के सार को पुनः-पुनः वस्त्र से छान कर- निर्मल कर उसके संग चन्द्र की ज्योत्स्ना को मिला कर श्रीकृष्ण की अंग शोभा का निर्माण किया है।

सखि! नवजलधर में जैसे गुरु-गम्भीर गर्जन होता है वैसे ही कृष्ण जलधर का मृदु-मधुर गर्जन ही उसकी वेणु-ध्वनि है। मेघ का गर्जन श्रवण कर लोगों में भय का संचार होता है, किन्तु कृष्ण की वेणु ध्वनि से समस्त जगत का चित्त आकर्षित होता है। मेघों का गर्जन श्रवण कर जैसे चातक-कुल जलपान की लालसा से तृषित प्राणों से मेघों की दिशा में दौड़ता है, वैसे ही ब्रजजन तृषित चातक के समान कृष्ण-मेघ की मुरलीध्वनि श्रवण कर उसकी ओर व्याकुल प्राणों से दौड़ते हैं एवं उसका रूपबिन्दु पान कर अपने प्राणों की पिपासा शान्त करते हैं।

सखि! मेरा कृष्ण नृत्य-गीत आदि समस्त कलाओं का परम आश्रय है- मेरी प्राण रक्षा की महोषधि है। वह मेरा श्रेष्ठमत सुहृत् है। उसके विरह में अभी तक इस देह में प्राण है- इन प्राणों को धिक्कार है। निश्चय ही यह विधाता की विडम्बना है, मुझे दुख देने के लिए ही उसने मुझे जीवित रखा है। जो जीवित रहना ही नहीं चाहता उसे विधाता ने क्यों जीवित रखा है?” श्रीराधारानी विधाता के प्रति क्रोध से भरकर श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पाठ कर शोक प्रकाश करने लगीं एवं विधाता की भर्त्सना कर श्रीकृष्ण को उलाहना देने लगीं।

अहो विधातस्तव न कच्चिद्दया, संयोज्य मैत्रया प्रणयेन देहिनः।  
तांश्चाकृतार्थान् वियूनंगक्षयपार्थक्यम्, विक्रीडितम् तेहर्भकचेष्टितम् यथा ॥

(भा. 10/39/19)

गोपियों ने कहा, “हे विधाता! तुममें दया का लेशमात्र भी नहीं है। तुम जीव को मैत्री और प्रणय के बंधन में बांध देते हो और उनके मनोरथ पूर्ण होने से पूर्व ही पुनः उन्हें वियुक्त कर देते हो। तुम्हारी यह चेष्टा बालक की चेष्टा के समान निरर्थक है।” महाप्रभु के प्रलाप में श्लोक का अर्थ प्रकाश—  
ना जानिस् प्रेम धर्म, व्यर्थ करिस् परिश्रम, तोर चेष्टा बालक समान।  
तोर यदि लाग पाइये, तबे तोरे शिक्षा दिये, एमन जेन ना करिस् विधान ॥

अरे विधि तों बड़' नितूर।

अन्योन्य दुर्लभ जन, प्रेमे कराइया सम्मीलन, अकृतार्थान् केने करिस दूर ॥ १४९ ॥  
अरे विधि! अकरुण, देखाइया कृष्णानन, नेत्र-मन लोभाइलि आमार।  
क्षणक करिते पान, काढ़ि निलि अन्यस्थान, पाप कैले दत्त-अपहार ॥  
अक्रूर करे तोमार दोष, आमाय केने कर रोष, इहा यदि कह दुराचार।  
तुमि अक्रूरमूर्ति धरि, कृष्णे निलि चुरि करि, अन्योर ऐछे नहे व्यवहार ॥  
आपनार कर्म दोष, तोरेकिवा करि रोष, तोय मोय सम्बन्ध विदूर।  
जे आमार प्राणनाथ, एकत्र रहि यार साथ, सेइ कृष्ण हइल नितूर ॥  
सब तेजि भजि यारे, सेइ आपन हाथे मारे, नारीवधे कृष्णे नहि भय।  
तार लागि आमि मरि, उलटि ना चाहे हरि, क्षणमात्रे भाङ्गिल प्रणय ॥  
कृष्णे केने करि रोष, आपन दुहैव दोष, पाकिल मोर एइ पापफल।  
जे कृष्ण मोर प्रेमाधीन, तारे कैल उदासीन, एइ मोर अभाग्य प्रवल ॥  
एइमत गौरराय, विषादे करे हाय हाय, हाहा कृष्ण! तुमि गेला कति।  
गोपीभाव हृदये, तार वाक्य विलापये, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 185 ॥

प्रभु गोपीभाव में विधाता के प्रति कोप करते हुए कहते हैं- “अरे विधाता! प्रेम क्या वस्तु है वह तुम नहीं जानते, इसी कारण उस विषय में तुम्हारे जितने कार्य हैं सभी बालक के कार्यों की तरह निरर्थक हैं। दुख का विषय यह है कि तुमसे साक्षात्कार नहीं हुआ। एक बार यदि तुमसे मिल पाता तो तुम्हें ऐसी शिक्षा देता कि ऐसा काम तुम फिर कभी नहीं करते। अरे विधि! तुम्हारे जैसा ऐसा कठोर हृदय और किसी का नहीं देखा। परस्पर दुर्लभ जन के मध्य प्रेम उत्पन्न कर, मिलनानन्द भोग होने से पूर्व ही पुनः उन्हें विच्छिन्न कर दूर फेंक देते हो, यह बड़ा ही निष्ठुरता का कार्य है। अरे निष्ठुर विधाता! तूने कृष्ण का मनोहर वदन कमल दिखाकर मेरे नयन-मन को प्रलुब्ध किया, उस वदन माधुर्य को कुछ पान किया भी नहीं था कि उन्हें अन्यत्र प्रस्थान करा दिया, अहो तुम दत्तापहारी (दान की हुई वस्तु को वापस ले लेने वाला) पाप से ग्रस्त हो गए हो!

अरे दुराचारी विधि। यदि तू कहे- अक्रूर तुम्हारे कृष्ण को मथुरा ले गया है, वह तुम्हारा दोषी है, तुम मुझसे क्यों अप्रसन्न हो? इसका उत्तर कहती है सुन- मनुष्य कभी भी ऐसा निष्ठुर कार्य नहीं कर सकता। तू अति कठिन और निर्मम है, तूने ही अक्रूर की मूर्ति धारण कर कृष्ण को चुरा लिया है।

देखते-देखते भाव की गति में परिवर्तन हो गया। विधाता पर से क्रोध दूर हो गया। सोचने लगे कि यह सब मेरे स्वयं के ही कर्मों का फल है- ‘विधाता के प्रति वृथा ही दोषारोपण कर रही हूँ, कारण उनके संग मेरा अति दूरवर्ती सम्बन्ध है। मेरे कर्मफलों के कारण ही कृष्ण मुझे त्याग कर चले गए हैं। जो कृष्ण मेरे प्राणनाथ हैं, जिनके संग कभी सर्वदा विहार करती थी, वे मेरे प्रति इतने निष्ठुर हो मुझे त्याग कर चले गए यह मेरे भाग्य दोष के अतिरिक्त और क्या होगा! कृष्ण के लिए मैंने आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव, यश, लोक लज्जा यहाँ तक की पतिव्रता धर्म तक का त्याग कर उसका भजन किया और उसने निज हाथों से मुझे मार कर फेंक दिया। उसे नारी वध का कोई भय नहीं है। जिसके लिए मैं प्राणों का भी त्याग करने का प्रस्तुत हूँ, वह इतना बड़ा निष्ठुर है कि मुड़कर मेरी ओर एक बार देखा भी नहीं। इतने दिनों का प्रेम अनायास ही समाप्त कर दिया, बिना किसी दुविधा के मथुरा चला गया।’

यह बात कहते-कहते पुनः भाव-गति परिवर्तित हो गई, कहने लगे- “कृष्ण सर्वसद्गुणनिधि है, उनमें कोई दोष नहीं हो सकता, सब मेरा ही दुर्दैव



है- मेरे ही पाप कर्मों का फल है! जो कृष्ण मेरे प्रेमाधीन थे, मेरे कर्मफलों ने उन्हें मेरे प्रति उदासीन कर दिया, यह मेरा दुर्भाग्य छोड़ और कुछ नहीं है।' विरही महाप्रभु यह बात कहकर विषाद में हाहाकार करने लगे। हा कृष्ण! तुम कहाँ चले गए? कहकर विलाप करने लगे। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों में जिस भाव का उदय हुआ था, प्रभु के चित्त में वही भाव उदय हुआ। वे धैर्य धारण कर श्रीकृष्ण के 'गोविन्द, दामोदर माधव' इन सब नामों का गायन करने लगे।

महाप्रभु की ऐसी विशाल विपुल व्याकुलता में चित्त के उन्मादक अलौकिक विरह के अवसर पर श्रीपाद स्वरूप और श्रीरामानन्द राय प्रभु के श्रीचरण प्रान्त में बैठकर उन्हें सान्त्वना देने लगे एवं परिचर्या करने लगे। श्रीपाद स्वरूप ने मिलन संगीत से एवं रामराय ने विविध आश्वास वाक्यों से प्रभु के विरह व्याकुल चित्त मन को कुछ स्थिर किया। श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं—

**तवे स्वरूप रामराय, करि नाना उपाय, महाप्रभुर करे आस्वादन।**

**गायेन सङ्गमगीत, प्रभुर फिराइल चित, प्रभुर किछु स्थिर हैल मन ॥186 ॥**

प्रभु का मन किंचित स्थिर तो हुआ किन्तु प्रलाप की झंकार नहीं थमी। विरह की बड़वानल (समुद्र के भीतर की अग्नि) मिलन के संगीत से भी शान्त नहीं हुई। एक के बाद एक ज्वालामुखी की तरह विरहानल की प्रचण्ड शिखा प्रलाप की भाषा के माध्यम से व्यक्त होने लगी। इसी भाव से अर्धरात्रि व्यतीत हो गई। स्वरूप और रामानन्द ने भावों की कुछ विशेष बाह्य-प्रबलता न देखकर सोचा कि प्रभु के हृदयस्थ विरह सिन्धु की तरंगे कुछ प्रशमित हो गई हैं। सम्भवतः अब और किसी आशंका का कारण नहीं है। ऐसा सोचकर प्रभु को गम्भीरा में शयन करा दिया। कुछ क्षण प्रतीक्षा कर पुनः देखा कि प्रभु नीरव हैं, तब वे कुछ निश्चिन्त होकर विश्राम करने लगे। रामानन्द अपने घर को चले गए, स्वरूप और गोविन्द गम्भीरा के द्वार पर ही शयन करने लगे। उन्हें थोड़ी निद्रा आ गई।

इस तरफ गम्भीरा में एक अभावनीय हृदय विदारक घटना घटी। महाप्रभु शयन कर रहे थे किन्तु वह विरह की अतिशयता में मूर्च्छा के समान एक अवस्था मात्र ही थी। इस अवस्था का अपनोदन होते ही वे उठ गए और विपुल प्रेमावेश में नाम संकीर्तन करने लगे। सहसा विरह-व्याकुलता ने अति तीव्र आकार धारण कर लिया। विशाल उत्कण्ठा में गृह में नहीं रह पा रहे थे

सो बाहर जाने का द्वार खोजने लगे। द्वार ना पाकर गम्भीरा की दीवारों से मुख घर्षण करने लगे भीषण संघर्षण से उनकी नाक, मुख, गण्ड गम्भीर रूप से घायल हो गए एवं उनसे रक्तधार बह निकली। भावावेश में विह्वल प्रभु गों-गों की आवाज करने लगे। यह आवाज सुनकर स्वरूप जाग गए, दीपक जला कर गम्भीरा में प्रवेश किया तो प्रभु की अवस्था देखकर हाहाकार करने लगे। महाप्रभु की नाक, मुख और चेहरा बहुत गम्भीर रूप से घायल थे और उनमें से झर-झर कर रक्त धारा बह रही थी। प्रभु की दशा देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। प्रभु को उठा कर शैय्या पर लिटाया। स्वरूप ने प्रभु से जिज्ञासा की- “यह तुमने क्या किया?”

प्रभु ने कहा- “क्या करूँ? उद्वेग के कारण स्थिर होकर घर में रह नहीं पा रहा था, बाहर जाने के लिए द्वार खोज रहा था किन्तु वह मिला नहीं। दीवार से मुख घर्षित होकर घायल हो गया और रक्त बहने लगा।” श्रीचैतन्यचरितामृत में यह लीला इस भाव से वर्णित है—

एइ मत विलपिते अर्धरात्रि गेल ।  
 गंभीराते स्वरूप गोसाँई प्रभूके शोयाइल ॥  
 प्रभूके शोयाइया रामानन्द गेला घरे ।  
 स्वरूप गोविन्द शुइल गम्भीरार द्वारे ॥  
 प्रेमावेशे महाप्रभूर गर गर मन ।  
 नाम संकीर्तन करे वसि करे जागरण ॥  
 विरहे व्याकुल प्रभूर उद्वेग उठिला ।  
 गंभीरार भित्ते मुख घषिते लागिला ॥  
 मुखे गण्डे नाके क्षत हइल अपार ।  
 भावावेशे ना जाने प्रभु पड़े रक्तधार ॥  
 सर्वरात्रि करे भावे मुख संघर्षण ।  
 गों गों शब्द करे, स्वरूप शुनिला तखन ॥  
 दीप ज्वालि घरे गेला, देखि प्रभुर मूख ।  
 स्वरूप गोविन्द दोहार हैल महादूख ॥  
 प्रभूके शय्याते आनि, सुस्थिर करिल ।  
 ‘काहा कैले एइ तूमि?’ स्वरूप पूछिल ॥  
 प्रभू कहे - उद्वेगे घरे ना पारि रहिते ।  
 द्वार चाहि वूलि शीघ्र वाहिर हइते ॥

द्वार नाहि पाइ, मूख लागे चारिभिते ।  
 क्षत हय रक्त पड़े ना पारि याइते ॥  
 उन्माद दशाय प्रभूर स्थिर नहे मन ।  
 ये करे, ये बोले सब उन्माद लक्षण ॥

इस लीला के प्रत्यक्ष दृष्टा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीपाद अपने श्रीगौरांगस्तव कल्पतरु में (6) इस लीला का वर्णन करते हैं—

स्वकीयस्य प्राणाव्बुदसदृशगोष्ठस्य विरहात्-  
 प्रलापानून्मादात् सततमतिकुर्वन् विकलधीः ।  
 दधद्वित्तौ शश्वद्वदनविधुघर्षेण रुधिरं-  
 क्षतोयम् गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥187 ॥

“जो अपने कोटि-कोटि प्राणों के तुल्य श्रीवृन्दावन के विरह में उन्मत्त हो सर्वदा अतिशय प्रलाप करते थे एवं उन्माद जनित विकल-बुद्धि वश दीवार से मुख घर्षण होने से जिनके घावों से निरन्तर रक्तधारा निकल रही थी- वही श्रीगौरांगदेव हृदय में उदित हो मुझे प्रमत्त कर रहे हैं।”

इस दिन से श्रीस्वरूप का हृदय गम्भीरा भय से भर गया। वे सोचने लगे कि रात्रिकाल में गम्भीरा-निधि को गम्भीरा में एकाकी रखना निरापद नहीं एवं चिन्तन करने लगे कि प्रभु के संग किसी को रखना होगा। उन्होंने अपने मन की बात भक्तगणों के समक्ष रखी तो सभीने एक स्वर से उसका अनुमोदन किया। सभी ने विचार कर शंकर पण्डित को प्रभु के संग रखने की बात प्रभु के निकट निवेदन की। भक्तों के अनुरोध को प्रभु ने भी स्वीकार कर लिया। उस दिन से शंकर पण्डित के एक महासौभाग्य का उदय हुआ। श्रीचैतन्य-चरितामृत से—

सब भक्तगण मिलि प्रभूरे साधिल ।  
 शंकर पंडिते प्रभूर संगे शोयाइल ॥  
 प्रभूर पादतले शंकर करेन शयन ।  
 प्रभू तार ऊपरे करे पाद प्रसारण ॥  
 ‘प्रभु-पादोपधान’ वलि तार नाम हैल ।  
 पूर्वे विदूरे येन श्रीशुक वर्णिल ॥

तथाहि ( भा. 3/13/5 )

इति ब्रूवाणम् विदूरम् विनीतम्,  
 सहस्रशीर्षणश्चरणोपधानम् ।

प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायाम्,  
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण के पादोपधान-स्वरूप विदुर के विनीतभाव से ऐसा प्रश्न करने पर भगवत् कथा में प्रवर्तमान मैत्रेय मुनि पुलकितांग हो कहने लगे।” इस लीला में शंकर पण्डित ही वह विदुर है। श्रीशंकर पण्डित जिस भाव से प्रभु की श्रीचरण सेवा करते- वह दृश्य सत्य ही अति मनोरम है। श्रीगौरांग के श्रीचरणों में बैठकर वे श्रीचरण सम्वाहन करते और निद्रावेश के कारण उन्हें बार-बार नींद का झोंका लगता किन्तु वे पुनः-पुनः मस्तक सम्भाल कर पादसेवन करने लगते। इस प्रकार बहुत देर तक निद्रा से युद्ध किया किन्तु अन्त में उनका पराभव हुआ और देह विवश हो गई; प्रभु के चरणों के निकट ही वे धीरे-धीरे सो गए। विरही प्रभु के नयनों में निद्रा नहीं थी, वे समझ गए कि शंकर खुले शरीर ही सो गया है। तब वे उठे और अपना अंग-वस्त्र शंकर को ओढ़ा दिया। प्रभु के अंगवस्त्र के स्पर्श मात्र से ही शंकर उठ गए एवं अपराधी के समान अनुभव करते हुए प्रभु का अंगवस्त्र प्रभु को ही ओढ़ा दिया और पुनः पाद सम्वाहन करने लगे। श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

शंकर करेन प्रभूर पादसम्वाहन।  
घूमाइया पड़ेन तैछे करेन शयन॥  
उघाड़ अंगे पड़िया शंकर निद्रा याय।  
प्रभू उठि आपन कांथा ताहारे उढ़ाय॥  
निरन्तर घूमाय शंकर शीघ्रेचेतन।  
वसि पाद चापि करे रात्रि जागरण॥  
तार भये नारे प्रभू वाहिरे याइते।  
तार भये नारे भित्ते मूखाब्ज घषिते॥

श्रीचैतन्यचरितामृत की अन्त्यलीला के 19वें परिच्छेद में प्रभु की जो शेषलीला वर्णित है वह इस प्रकार है—एक बार वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि पर जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान पूर्णचन्द्र की शुभ्र किरणों से उद्भासित हो उठा था। विपुल कुसुम संभार से सुशोभित वृक्ष-वल्लरियाँ जैसे पुरी धाम में श्रीवृन्दावन की सुषमा फैला रहे थे। शुक-सारी और पिक भृंग के आलापन से उद्यान मुखरित था। कुसुमों की सुवास से चारों दिशाएँ आमोदित थी। मलय पवन लता-वल्लरी एवं वृक्ष शाखागण को नचा-नचा कर जैसे नृत्य

की शिक्षा दे रही थी। पूर्णचन्द्र की उज्ज्वल किरणों से स्नात हो तरु-लताएँ झिलमिला रहीं थीं। भक्तगणों के संग उद्यान की वासन्ती शोभा निहारते गौरांगदेव प्रभु के मन में “ललित लवंग लता” पद का स्मरण हुआ। प्रभु ने स्वरूप को पद-गान का आदेश दिया तो स्वरूप मधुकण्ठ से वह पद-गान करने लगे। पद इस प्रकार है—

ललितलवङ्गलता-परिशीलन-कोमल मलय-समीरे ।  
 मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-कूजित-कुंज-कुटिरे ॥  
 विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।  
 नृत्यति युवतीजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥  
 उन्मदमदन-मनोरथ पथिक-वधूजनजनितविलापे ।  
 अलिकुल-सङ्कुल-कुसुमसमूह-निराकुलवकुलकलापे ॥  
 मृगमद-सौरभ-रभस वशम्बद-नवदलमालतमाले ।  
 युवजन-हृदय-विदारण-मनसिज-नखरुचि-किंशुक-जाले ॥  
 मदन-महीपति-कनक-दंतरुचि-केशरकुसुमविकाशे ।  
 मिलित-शिलीमुख-पाटलपटलकृत-स्मर-तृण-विलासे ॥  
 विगलित-लज्जित-जगवदवलोकन-तरुणकरुणकृतहासे ।  
 विरहि-निकृन्तन-कुन्तमुखाकृति-केतकीदन्तरिताशे ॥  
 माधविका-परिमल-ललिते नवमालतिजातिसुगन्धौ ।  
 मुनि-मनसामपि-मोहनकारिणि तरुणाकारणवन्धौ ॥  
 स्फुरतिमुक्तलतापरिरम्भण-मुकुलित-पुलकिते चूते ।  
 वृन्दावन विपिने-परिसरपरिगत-यमुना-जलपूते ॥  
 श्रीजयदेव-भणितमिदमुदयति हरिचरण-स्मृतिसारम् ।  
 सरसवसन्त-समय-वन-वर्णनमनुगत-मदन-विकारम् ॥ 188 ॥

(गीतगोविन्दम्)

कोई सखी विरह-व्यथिता श्रीराधारानी के निकट अनुराग से भरकर वसन्त वन शोभा का वर्णन कर रही है- ‘हे सखि! वसन्त के आगमन से मलय-पवन, ललित लवंगलता के आलिंगन से कोमल हो गई है। मधुकर समूहों के मधुर गुंजन से एवं कोकिल-कुल के कूहू-कूहू कूजन से कुंज कुटीर मुखरित है। इस सरस वसन्त में श्रीहरि युवतीगणों के संग नृत्य कर रहे हैं; विरहीजनों के लिए यह वसन्त काल अति कष्टदायी है।

जिनके प्रणयी पथिकवेश में भ्रमण करते हैं, उन पथिकों की प्रियतमाएँ इस वसन्त में उत्कट मदन मनोरथ के प्रभाव से विलाप करती हैं। बकुल

विटपी समूह कुसुमों से आवृत है, उसके कुसुम समूह भ्रमरों द्वारा चुम्बित हैं। वसन्त के बकुल कलाप, (बकुल वृक्ष के पुष्प) जैसे व्याकुल हो गए हैं।

तमालदल नवपल्लवों से सुशोभित हैं एवं कस्तूरी के समान सौरभ से आमोदित हो रहे हैं। पलाश के फूल देख कर लगता है जैसे मदन युवाओं के हृदय विदारण के निमित्त नख प्रसारित कर विराज रहा है।

सखि! इस वसन्त में मदन ही महीपति है, विकसित केशर-कुसुम समूह जैसे उसका स्वर्ण छत्र है और भ्रमरों से आवृत पाटली पुष्प समूह जैसे उसका तरकश है।

इस वसन्त में जगत जैसे लज्जाहीन हो गया है यह देखकर तरुण-करुण वृक्ष जैसे पुष्प विकास के छल से हास्य कर रहे हैं। विरही-हृदय कतरने के लिए केतकी कुसुम वर्षा के फल के समान सर्वत्र ही फूट रहे हैं, देखकर ऐसा लगता है मानों सभी दिशाएँ जैसे मुस्कुराती विराज रही हैं।

यह समय माधवी कुसुम के परिमल से ललित है एवं नवमल्लिका कुसुम से सुगन्धित है। यह वसन्त मुनिजनों का भी मन मोहन है एवं तरुण-तरुणियों का निस्वार्थ बन्धु है!

आम के वृक्ष स्फूर्तिशालिनी वासन्तीलताओं के आलिंगन से पुलकित हो मुकुलों से सुशोभित हैं, (वसन्त के गुण से अचेतन उद्भिद में भी ऐसी कामचेष्टा प्रकाशित हो रही है) इससे वसन्त की सरसता और प्रबलता ध्वनित हो रही है। सखि! ऐसे वसन्त के समय में यमुना जल प्रवाह से सुशोभित वृन्दावन में श्रीहरि तुम्हें त्यागकर युवती गणों के संग विलास कर रहे हैं।

शृंगाररस उद्दीपक, वासन्ती वन वर्णन विशिष्ट, श्रीराधा के मदन विकारों की प्रकाशक एवं हरि चरण स्मृति सार से पूर्ण- श्रीजयदेव रचित यह कविता सत्य ही शोभामय है।

स्वरूप अपने मधु कण्ठ से श्रीजयदेव के वसन्त वर्णन पद का गायन करने लगे।

प्रभु निजगणों के संग नृत्य रंग में गायन रस आस्वादन के सहित उद्यान की वासन्ती शोभा दर्शन करते हुए भ्रमण करने लगे। पद समाप्त हुआ, झंकार थम गई। सहसा प्रभु ने अशोक वृक्ष के तल में श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त किए। श्रीकृष्ण के दर्शन करते ही प्रभु उनकी ओर दौड़ने लगे। अकस्मात् कृष्ण हंसते-हंसते अंतर्हित हो गए। श्रीकृष्ण के अदर्शन से प्रभु मूर्च्छित हो

गए। श्रीकृष्ण की अंग गंध से उद्यान परिपूर्ण हो गया। उस गंध से प्रभु की मूर्छा और भी गाढ़ होने लगी। कुछ समय बाद प्रभु की मूर्छा भंग हुई। कृष्ण की अंग गंध तब भी प्रभु के नासा रंध्रों में प्रविष्ट हो उन्हें उन्मत्त कर रही थी। श्रीकृष्ण की अंगगंध के प्रति लुब्धा श्रीराधारानी ने सखी के निकट जो बात कही थी, प्रभु उसी श्लोक का पाठ कर प्रलाप में उसका अर्थ आस्वादन करने लगे। श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित है—

एककाले वैशाखे पौर्णमासीदिने। रात्रिकाले महाप्रभु चलिला उद्याने ॥  
जगन्नाथवल्लभनाम उद्यान-प्रधाने। प्रवेश करिला प्रभु लैया भक्तगणे ॥  
प्रफुल्लित वृक्ष-वल्ली येन वृन्दावन। शुक शारी पिक भृङ्ग करे आलापन ॥  
पुष्पगन्ध लैया बहे मलयपवन। गुरु हैया तरुलताय शिखाय नर्तन ॥  
पूर्णचन्द्रचन्द्रिकाय परम उज्ज्वल। तरुलता ज्योत्स्नाय करे झलमल ॥  
छयतुगण याहाँ वसन्त प्रधान। देखि आनन्दित हैल गौर भगवान् ॥  
“ललित लवङ्गलता” पद गावाइया। नृत्य करि बुले प्रभु निजगण लैया ॥  
प्रति वृक्षवल्ली ऐछे भ्रमिते भ्रमिते। अशोकेर तले कृष्ण देखे आचम्बिते ॥  
कृष्ण देखि महाप्रभु धाइया चलिला। आगे देखि हासि कृष्ण अन्तर्द्धान कैला ॥  
आगे पाइल कृष्ण तारै पुनः हाराइया। भूमिते पड़िल प्रभु मूर्च्छित हइया ॥  
कृष्णोर श्रीअङ्गगन्धे भरियाछे उद्यान। सेइ गन्ध पाइला प्रभु हैला अचेतन ॥  
निरन्तर नासाय पैशे कृष्ण-परिमल। गन्ध आस्वादिते प्रभु हइला पागल ॥  
कृष्णगन्धलुब्ध राधा सखीके ये कहिला। सेइ श्लोक पढ़ि प्रभु अर्थ करिला ॥

कुब्रह्ममदजिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः

स्वकाङ्गनलिनाष्टके शशियुताब्जगन्धप्रथः ।

मदेन्दुवरचन्दनागुरुसुगन्धिचर्चार्चितः

स मे मदनमोहनः सखि तनोति नासास्पृहम् ॥ 189 ॥

(गोविन्दलीलामृतम्)

श्रीराधारानी ने कहा- “हे सखी! मृगमद विजयी श्रीअंग की परिमल तरंग द्वारा जो ब्रजांगनाओं को आकर्षित करते हैं, जो अपने अंग रूप अष्ट पद्म से (दो नेत्र, दो हस्त, दो पद, नाभि और मुख) कर्पूर युक्त पद्म की गंध का विस्तार करते हैं, जो मृगमद कर्पूर, वर चंदन और कृष्णा गुरु प्रभृति सुगन्धि द्रव्य द्वारा अपना श्रीअंग चर्चित करते हैं। वही मदनमोहन मेरी नासिका की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं। महाप्रभु का प्रलाप—

कस्तूरीलिप्त नीलोत्पल, तार येइ परिमल, ताहा जिनि कृष्ण-अङ्गगंध।

व्यापे चौहभूवने, करे सर्व्व-आकर्षणे, नारीगणेर आँखि करे अन्ध ॥

सखि हे! कृष्णगन्ध जगत माताय ।

नारीर नाशाय पैशे, सर्वकाल ताहाँ वैसे, कृष्णपाशे धरि लैया जाय ॥ध्रु॥  
 नेत्र नाभि वदन, करयुग चरण, एइ अष्टपद्म कृष्ण-अङ्गे ।  
 कर्पूरलिप्त कमल, तार यैछे परिमल, सेइ गन्ध अष्टपद्म-सङ्गे ॥  
 हेमकीलित चन्दन, ताहा करि घर्षण, ताहे अगुरु कुंकुम कस्तुरी ।  
 कर्पूर सने चर्चा अङ्गे, पूर्व अङ्गेर गन्ध सङ्गे, मिलि डाका कैल येन चुरि ॥  
 हरे नारीर तनु मन, नासा करे घूर्णन, खसाय नीवी छुटाय केशबन्ध ।  
 करि आगे वाउरी, नाचाय जगतनारी, हेन डाकाति कृष्ण-अङ्गगन्ध ॥  
 सेइ गन्धेर वश नासा, सदा करे गन्धेर आशा, कभू पाय कभू नाहि पाय ।  
 पाइले पिया पेट भरे, 'पिडो' पिंगो तभु करे, ना पाइले तृष्णाय मरि जाय ॥  
 मदनमोहन नाट, पसरि गन्धेर हाट, जगन्नारी ग्राहक लोभाय ।  
 विनिमूल्ये देय गन्ध, गन्ध दिया करे अन्ध, घर जाइते पथ नाहि पाय ॥  
 एइमत गौरहरि, गन्धे कैल मनचूरि, भृङ्ग प्राय इति उति धाय ।  
 याय वृक्षलता-पाशे, कृष्ण स्फुरे सेइ आशे, कृष्ण ना पाय गन्धमात्र पाय ॥ 190 ॥

अन्त्यलीला में महाप्रभु श्रीराधारानी की दिव्योन्माद दशा के अवलम्बन से श्रीकृष्ण माधुरी का आस्वादन करते हैं। श्रीकृष्ण के रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श किस प्रकार प्रभु के चक्षु, जिह्वा, नासिका, कर्ण और त्वक् को उन्मत्त कर स्वयं की ओर आकर्षित करते हैं, वह ही अन्त्यलीला के 15वें परिच्छेद से 19वें परिच्छेद तक वर्णित हुआ है। 15वें परिच्छेद में प्रभु के नेत्रों के प्रति श्रीकृष्ण के रूप का प्रभाव और त्वक् के प्रति स्पर्श गुण का प्रभाव प्रभु प्रलाप में व्यक्त करते हैं। 16वें परिच्छेद में श्रीकृष्ण के रस के लिए प्रभु की जिह्वा की स्पृहा एवं 17वें में उनके शब्द के लिए प्रभु के कर्णों की स्पृहा व्यक्त करते हुए प्रलाप करते हैं। इस समय 19वें परिच्छेद में गंध के प्रभाव की बात प्रलाप में व्यक्त कर रहे हैं।

प्रभु ने कहा, “सखि! नीलकमल के संग यदि कस्तूरी की गंध मिल जाए, उस सम्मिलित गंध को भी श्रीकृष्ण की अंगगंध पराभूत करती है। प्राकृत गंध वायु के माध्यम से कुछ दूर तक ही विस्तृत होती है। किन्तु अप्राकृत श्रीकृष्ण की अंगगंध चौदह लोकों में व्याप्त होती है एवं सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। विशेषभाव से नारीगण के नयनों को अन्धा कर देती है। सखि! श्रीकृष्ण की अंगगंध केवल जगत में व्याप्त होती है ऐसा नहीं है, यह जगत को उन्मत्त कर देती है। नारी के प्रति उसका सर्वाधिक



प्रभाव है, नारी की नासिका में प्रविष्ट हो सदा के लिए वहाँ वास करती है और उन्हें श्रीकृष्ण के निकट आकर्षण कर लिए जाती है।

सखि! श्रीकृष्ण के अंग में आठ कमल हैं- दो नयन, दो हस्त, दो पद, वदन और नाभि। कर्पूर लिप्त कमल की गंध इन अष्ट पद्मों में विराजती है। उसके पृथक् और भी कई सुगन्धि-द्रव्यों द्वारा श्रीकृष्ण अंग चर्चित होता है। हेमकीलित चंदन, अर्थात् स्वर्ण के ह्यतल (हथ्या) से युक्त चंदन बहुत ही शीतल वस्तु है सो घर्षण के समय उसे पकड़ने के लिए दोनों तरफ स्वर्ण का पतरा लगाकर मोड़ दिया जाता है- उसे हेमकीलित चंदन कहते हैं, को घर्षण कर उसमें अगुरु, कुमकुम और कस्तूरी मिलाकर कर्पूर के संग श्रीकृष्ण के अंगों पर चर्चित रहता है। पहले जो स्वाभाविक अष्ट पद्मों की गंध की बात कही है, इन अंगों पर चर्चित गंध के संग वह मिलकर डकैत की तरह दिन के प्रकाश में ही सब हरण कर लेती है! नारी के तन-मन का हरण करती है नासिका को घूर्णित करती है, नीवि-बंधन, केश बंधन का मोचन कर नारी को पागलीनी कर नृत्य कराती है- श्रीकृष्ण की अंगगंध ऐसी बड़ी डकैत है।

सखि! यदि कहो कि जब तुम समझती हो कि श्रीकृष्ण की अंग गंध डकैत की तरह है, तो वह नासिका में प्रवेश ही न करने पाए इस विषय में तुम सतर्क तो रह ही सकती हो? इसका उत्तर कहती हूँ- नासिका उस गंध के वशीभूत है, वह सर्वदा उसके पान की आकांक्षा करती है, कभी प्राप्त करती है कभी नहीं करती। पा जाने पर पेट भरकर उसका पान करती है परन्तु तब भी पिपासा शान्त नहीं होती, और पाने की आकांक्षा करती है न पाने से तृष्णा से मरी जाती है।

सखि! मदनमोहन और भी अद्भुत चातुरी जानता है, वह गंध की हाट लगाकर विश्व की रमणियों को प्रलुब्ध करता है। उस हाट से गंध लेने के लिए कोई मूल्य नहीं देना होता, वह बिना मूल्य के ही गंध देता है। और गंध देकर नारी को अन्धा कर देता है। नारी फिर घर जाने का पथ भी नहीं खोज पाती। अपनी देह मन प्राण सब मदनमोहन के चरणों में ही समर्पण करने को बाध्य हो जाती है। श्रीकृष्ण की अंगगंध ने प्रभु के मन को चोरी कर लिया। वे श्रीकृष्ण की स्फूर्ति की आशा में प्रत्येक वृक्ष-लता के निकट जाने लगे, किन्तु श्रीकृष्ण को न पाकर केवल मात्र अंगगंध को ही पाया।

स्वरूप रामानन्द गाय, प्रभु नाचे सुख पाय,  
 एड़ मते प्रातःकाल हैल ।  
 स्वरूप रामानन्द राय, करि नाना उपाय,  
 महाप्रभूर वाहयस्फूर्ति कैल ॥

श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्ण की अंगगंध से व्याकुल होकर कुसुम कानन में उन्मत्त की तरह भ्रमण करने लगे। मरीचिका दर्शन कर पिपासातुर मृग जैसे सामने सूर्य किरण को सुखद जल से भरपूर तटिनी की तरंग समझ कर उस ओर दौड़ता है, किन्तु जल के निकट नहीं पहुँच पाता; अंत में उसकी पिपासा शत गुणा वर्धित हो जाती है एवं वह छटपटाने लगता है; उसी प्रकार श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्ण की अंगगंध से व्याकुल होकर श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा में सारी रात उद्यान में ही परिभ्रमण करते रहे किन्तु स्फूर्ति प्राप्त कृष्ण के दर्शन प्राप्त नहीं कर पाए। प्रातःकाल श्रीपाद स्वरूप और रामराय ने बहुत प्रयत्न कर प्रभु को बाह्य-ज्ञान कराया।

इस तरह श्रीगौरांगदेव ने शेष द्वादश वर्ष गंभीरा में प्रेम की जो गम्भीर लीला प्रकाश की, उससे श्रीराधा के प्रेम की महिमा, श्रीकृष्ण-माधुर्य का आस्वादन एवं उस माधुर्य आस्वादन से श्रीराधा का सुखातिशय उनकी इन तीन वाञ्छाओं की पूर्ति हुई। यही प्रभु के अवतरण का अंतरंग उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त इस लीला से उन्होंने विश्व में प्रेमिक के संग श्रीकृष्ण का महामधुर सम्पर्क, भगवत्-माधुरी आस्वादन के लिए प्रेमिक की आकृति, व्याकुलता, उत्कण्ठा का चरम आदर्श प्रकटित किया है। यह लीला कभी मानवीय भाषा में व्यक्त नहीं हो सकती। श्रीमन्महाप्रभु की कृपा प्रेरणा से श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी पाद ने अपने श्रीचैतन्यचरितामृत में जो वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की तीन वाञ्छा पूर्ति निरूपण में हमने (चर्वित-चर्वण न्याय से उसी की ही यत्किंचित आस्वादनी भक्तगणों के समक्ष प्रस्तुत की है। इसमें हमारी स्वयं की कुछ भी दक्षता नहीं है।

**!! जय गौर हरि । जय श्रीराधे !!**